



हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन



# हिन्दी उपन्यास साहित्य का शास्त्रीय विवेचन

[ आगरा विश्व विद्यालय से पी० एच० डी० के लिए  
स्वीकृत शोध-प्रबन्ध ]

लेखक

डॉ० श्रीनारायण अग्निहोत्री

एम० ए पी० एच० डी०

प्राध्यापक

बी० एन० एस० डी० कॉलेज कानपुर

प्रकाशक

सरस्वती पुस्तक सदन • आगरा

प्रकाशक :  
प्रतापचन्द्र खैसवाल  
संपादक :  
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा

प्रथम संस्करण १९६१

विषय : सेसकापीन

मूल्य : आठ रुपये पचास नए पैसे

मुद्रक :  
श्रीनेत्र कुमार खैन  
जनता प्रेस मुबई मंसूर छाँ आगरा

## अनुक्रम

- |  |         |
|--|---------|
| विषय   | पृष्ठ   |
| भूमिका   | ७-१३    |
| १—विषय-प्रवेश  | २-३४    |
| हिन्दी शब्द के विभिन्न धर्म—उपन्यास शब्द की व्याख्या—साहित्य-शास्त्र—उपन्यास का आरम्भ—साधुनिक साहित्य में उपन्यास का महत्त्व—उपन्यास सबसे अधिक प्राणवशी साहित्यिक विधा—उपन्यास जीवन के धनुमन्त्र का नवनील—मन को रमने का विभाम-स्वप्न—समय के इतिहास का साहित्यिक संस्करण ।  |         |
| २—उपन्यास शब्द की व्याख्या सक्षर स्वरूप एवं प्राचुर्यार्थ ३६-११२   |         |
| उपन्यास कृति—स्यद्धिबोध और उपन्यास का भाविकार्थ—संघेभी प्रभाव—संघेभी में उपन्यास की प्रवृत्तारण का क्रम—चित्रण और नायक—शब्दगत धर्म—उपन्यास और छोटी कहानियाँ—उपन्यास और यथार्थ—उपन्यास और रोमांस—संघेभी का साधुनिक नायक—नायक शब्द की व्युत्पत्ति और परिभाषा—नायक शब्द का सुसु-बोधक धर्म—नायक शब्द का शाब्दिक धर्म—परिभाषा—हिन्दी में उपन्यास की परिभाषा सक्षर और स्वल्प—उपन्यास शब्द का प्रयोग—हिन्दी में उपन्यास की कृति का विकास—उपन्यास की तीर्थ यात्रा—हिन्दी उपन्यास क्या है—हिन्दी में उपन्यास की विभिन्न परिभाषाएँ । |         |
| ३—उपन्यास तथा साहित्य के अन्य अंग  | ११३-१२३ |
| साहित्य-बाह्य मय—साहित्य का सामकरण—साहित्य की व्याप्ति—साहित्य और प्रयोजन—साहित्य की व्याख्या और स्वरूप—साहित्य के अंग—साहित्य कला के रूप में—साहित्य के रूप—साहित्य का महत्त्व—साहित्य का ऐकान्तिक महत्त्व—साहित्येतर, उपन्यासेतर साहित्य एवं उपन्यास—उपन्यास की व्याप्ति—साहित्येतर बाह्य मय के प्रमुख स्वरूप और विचार—विज्ञान और उपन्यास—उपन्यास तथा उपन्यासेतर साहित्य ।   |         |

- ४—उपन्यास के प्रेरक-तत्व १५४-१८०  
उपन्यास का स्वस्व और उसके निर्देशक तत्व—उपन्यास के प्रेरक तत्व—कुतूहल—मनोरंजन—धर्म सिद्धि ।
- ५—उपन्यास के तत्व १८१-२१६  
कथावस्तु—चरित्र-चित्रण—रूपोपकरण—वातावरण—उद्देश्य—शैली-रस ।
- ६—उपन्यासकार और उपन्यास रचना २२०-२२७  
उपन्यासकार का उचित ऋण—उपन्यास का रचना कोषम
- ७—प्रेषणीयता की अनुमति और पाठक २२८-२६५  
पाठक और उपन्यासकार—उपन्यास और पाठक वर्ग की आवश्यकता—उपन्यास के पाठक का महत्व—पाठक और धारणा—माथी उपन्यास और पाठक ।
- ८—हिन्दी उपन्यासों का वर्गीकरण— २६६-३०६
- (i) बर्णन की दृष्टि से—तिमिस्मी पासूरी और साहसी—ऐतिहासिक कथानक—पौराणिक तथा धार्मिक कथानक—सामयिक प्रधान—सामाजिक—राजनीतिक कथानक ।
- (ii) कथा की दृष्टि से—कथा के रूप में—आत्मकथा या डायरी के रूप में—चिट्ठी पत्रों के रूप में
- (iii) कथावस्तु के स्वस्व और सत्य के अनुसार—घटनाईविषय प्रधान—धार्मिक सम्बन्ध प्रधान—वर्ण-प्रधान-प्रतिरूपिता प्रधान—संस्कृति प्रधान—सुधार प्रधान—रमणीयता प्रधान ।
- (iv) विन्यास की दृष्टि से—घटना प्रधान—चरित्र प्रधान—वातावरण प्रधान—भाव प्रधान ।
- (v) उपन्यास संघटन के अनुसार—घटना और चरित्र प्रधान—नाटकीयता प्रधान—इतिहासिक—सामयिक ।
- (vi) चरित्र चित्रण की दृष्टि से—चरित्रप्रधान और मनोवैज्ञानिक ।
- (vii) शैली की दृष्टि से—बर्णनात्मक विरलेपणात्मक पत्रमत्त—स्वगत ।
- (viii) उद्देश्य की दृष्टि से—मनोरंजनार्थ—हास्य—प्रायश्चित्त

यथार्थवाद—यथार्थवादी—समस्यामूलक—प्रयोगवादी अनुचित ।

(ix) बीजग के प्रति दृष्टिकोण के विचार से—रोमानी—यथार्थवादी रोमानी—यथार्थवादी—यथार्थवादी ।

(x) शीर्ष विस्तार तथा प्रभाव की तीव्रता के विचार से—गृह्य उपन्यास—लघु उपन्यास ।

(xi) साधारण जनदृष्टि से—सामाजिक—साम्यवादी—समोर्ध्व ज्ञानिक—स्थानीय विचार युक्त—अपराध विचार भावात्मकपूर्ण ।

(xii) ऐतिहासिक दृष्टि से—प्राबिकालीन—प्रेमचन्द के पूर्व—प्रेमचन्द के समय के—प्रेमचन्दोत्तर कासीन—प्रागुत्पन्न काल ।

(xiii) वर्णविषय के प्रति दृष्टिकोण के विचार से—सटना प्रदान करिष प्रदान नाटकीय दृष्टिकोण के सामयिक शैलिक एवं मनो-वैज्ञानिक समस्यात्मक एवं प्रचारात्मक शैली प्रदान

१—उपसंहार

१०७-११८

उपन्यास का भविष्य तथा हिन्दी उपन्यास की संभावनाएँ—विश्व उपन्यास का भावी स्वरूप—हिन्दी उपन्यास की संभावनाएँ—उपन्यास एक नवीन दृष्टि ।



## कृतशता प्रकाशन

इस प्रकार के विवेचन में समन्वयात्मक अध्ययन के लिए हिन्दी के कठिनपत्र भाषारसूत विविष्ट ग्रन्थों को धामप्रो का एक से अधिक बार उपयोग प्रस्तुत में किया गया है। स्वयं स्वयं पर इनका कलेक संचालन कर दिया गया है पर सेवक विविष्ट रूप से निम्नांकित ग्रन्थों के लेखकों एवं प्रकाशकों के प्रति धामार की स्वीकृति को अपना प्रमुख कर्तव्य मानता है।

| ग्रन्थ                             | लेखक                                    | प्रकाशक                             |
|------------------------------------|---|-------------------------------------|
| १ हिन्दी उपन्यास                   | श्रीशिवनारायण श्रीवास्तव                | सरस्वती-मंदिर कतनवर                 |
| २ हिन्दी उपन्यास साहित्य           | श्री जयरत्नदास                          | हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस          |
| ३ वैनेन्द्र और उनके उपन्यास        | श्री रघुनाथ सरल फ़ालीम                  | हिन्दी साहित्य कुटीर बनारस          |
| ४ काव्य के रूप                     | बानू गुसाबराय                           | प्रथमा प्रकाशन मंदिर दिल्ली         |
| ५ समीक्षा                          | श्री सीताराम चतुर्वेदी                  | असिम भारतीयविक्रम परिषद्, काशी।     |
| ६ साहित्य                          | श्री शंकरदेव शर्करे                     | श्री शंकर देव शर्करे काशी           |
| ७ हिन्दीसाहित्य का इतिहास          | श्री रामचन्द्र शुक्ल                    | नागरी प्रचारिणी सभा काशी            |
| ८ धातुनिक साहित्य                  | श्री लखदुलारे बाबुपेयी                  | भारती मंडार, प्रयाग                 |
| ९ धातुनिक साहित्य                  | श्री प्रतापनारायण टण्डन                 | विद्या मंदिर लखनऊ                   |
| १० हिन्दी उपन्यास में बर्ननाचना    | श्री प्रतापनारायण टण्डन                 | लखनऊ विश्व विद्यालय                 |
| ११ धातुनिक हिन्दी साहित्य          | श्री लक्ष्मी धामर बापुज्येय             | हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय |
| १२ धातुनिक हिन्दी साहित्य का विकास | श्री श्रीकृष्णलाल                       | हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्व विद्यालय |
| १३ आलोचना                          | उपन्यास ग्रंथ                           | राजकमल प्रकाशन दिल्ली               |
| १४ साहित्य श्रृंखला                | उपन्यास ग्रंथ एवं धातुनिक उपन्यास ग्रंथ | साहित्य रत्न मंडार प्रयाग           |

इस सेवक के ग्रन्थ ग्रन्थ 'उपन्यास तत्त्व एवं रूप विधान' के संक्षिप्त रूप को अपने ग्रन्थ में सम्मिलित करने की आज्ञा प्राप्ति के लिए स्वयं सेवक एवं उस पुस्तक के प्रकाशक 'भाषार्थ शुक्ल साधना मंदिर' को विशेष रूप से धामार प्रकट करते हैं।

प्रयाग

## भूमिका

उपन्यास में सिद्धे हुए जीवन के साथ ही साथ हम बिना सिद्धा हुआ जीवन भी पाते हैं। यह बीते जीवन का 'इडेम' बन जाता है और जाने जाने जीवन की भूमिका। उपन्यास का यह दोहरा-क्रम फलन और बीज का रूप होता है। जीवन में रहने हुए भी हम जीवन के अरावत पर ही खड़े रहते हैं पर उपन्यास में हम बुद्धि को मयाकर जीवन के भीतर पहुँचते हैं जहाँ पर जीवन का असली रूप मिलता है। जीवन में हमें प्रायः बीते जीवन का प्रभाव ही मिलता है पर उपन्यास में जीवन के प्रभाव के कारण मिलते हैं। इस प्रकार हमें हम जीवन-निर्माण की संभावना भी पाते हैं।

उपन्यास जीवन की सुखी हुई मठों को बाँधता है, पर्व उभारी हुई प्राचीन परंपराओं की फिर से नई पर्व सजाता है—मठों की संग्रहित (assembled) वस्तुओं को बिखरित (distrubute) कर फिर से संग्रहित (assembled) करता है। उपन्यास बिखरे जीवन को समेटता है।

विद्युत् उपन्यास सापना से प्रतिभासित सत्य 'रिपनाइज्ड ट्रुथ' की भाँति होता है। उसका धारम धनुमन्त्र के **विद्युत्** पर होता है। वह विचार एवं दर्शन की ऊँचाई पर से उतर कर जीवन की गहराइयों में से होता हुआ माया की सतह पर आता है। उसके पार्श्वों का व्यक्तित्व धारण-वर्ष' की भाँति होता है। मुझ किन्तु संभार। उसका कथानक सावक के स्वप्न की मलक के साथ-साथ बरती पर सेट कर बन्दबत् प्रणाम करता हुआ धावे बढ़ता है। उसके वर्णन समाधि के सुख की भाँति अक्षर्य होते हुए भी मानव के घाँटिक भावों के सकेतक होते हैं। उसका बलाबलण मक की तन्मयता एवं प्रभो की आत्मविभोरता से प्रणु पाता हुआ-सा रहता है। उसका उद्देश्य होता है जीवन के रहस्य का उद्घाटन धार्य चिन्तन के माध्यम से करना। यह सब कार्य उपन्यास में सम्पन्न होता है जीवन में साँस लेने के से अचिन्त्य एवं स्वाभाविक रूप से।

उपन्यास के सम्बन्ध में इसी क्रम से नये सिरे से विचार करने की प्रणाली का धीमण्ड करने की आवश्यकता ही प्रस्तुत निबन्ध की स्थापना है।

हिन्दी में यह का विकास भारत में धर्मोच्च राज्य की स्थापना एवं मुझ

शासनों के कार्य प्रारम्भ होने के साथ हुआ। ईसाई धर्म प्रचारकों एवं पत्रकारिता से सम्बन्धित व्यक्तियों द्वारा गद्य के प्रचार में बड़ी सहायता मिली पर हिन्दी गद्य विशेषतः लड़ी बोली के हिन्दी गद्य का प्रारम्भ विकास एवं प्रचार मुख्यतः कल्पनात्मक एवं भाष्यानात्मक साहित्य के प्रारम्भ विकास एवं प्रचार के समानान्तर पर चलता है। हिन्दी का उपन्यास-साहित्य इस कल्पनात्मक एवं भाष्यानात्मक साहित्य के तीन बीयाई से अधिक धंस का प्रतिनिधित्व करता है। बायरी पत्र भ्रमण बोधन चरित्र धात्मकता तथा सामाजिक शास्त्रों को प्रपनी परिधि में समेट देने के कारण उपन्यास का विकास प्रायः हिन्दी गद्य के विकास का पर्यायवाची बन गया है। हिन्दी गद्य में व्यक्तिव्यक्ति की जितनी विधाएँ हैं प्रायः उन सब का समाहार उपन्यास में होता है। इस दृष्टि से भी उपन्यास का विवेचन प्रपना विधेय महत्त्व रखता है। प्रस्तुत निबन्ध में हिन्दी गद्य के विकास में उपन्यास के विधाप बोधना की भी स्थापना की गई है।

उपन्यास के विकास एवं सङ्घिपयक विभिन्नदुर्गीत प्रकृतियों का विवेचन इस प्रबन्ध की आधारभूमि के रूप में दिया गया है।

हिन्दी में 'उपन्यास' शब्द कथा-साहित्य के बाधक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। जिस धर्म में कदला में 'उपन्यास' दुबाराही में 'नबसकथा', मराठी में 'काथंबरी' और उर्दू में 'नाबेस' शब्द का प्रयोग होता है उसी धर्म में हिन्दी में 'उपन्यास' शब्द के प्रयोग को लिया गया है। इस शब्द द्वारा उन सभी पुस्तकों की ओर संकेत है जो कथा-सिद्धान्तों के नियमों का अपूर्ण प्रपवा पूर्ण रूप से पालन करते हुए या नितान्तकथ से प्रबद्धमता करते हुए मनुष्य की धमर उत्पन्नता की शान्ति पात्रों तथा घटनाओं के कात्पनिक संयोजन के द्वारा करते हैं।

देवकीनन्दन धामी इत अन्नकान्ठा उपन्यास की पुठभूमि प्रस्तुत करती है। इसके पश्चात् सामाजिक चेतना के अनुशासित की निवासशासकृत 'परीखापुस्त' इस शोध की द्वितीय दृष्टि के रूप में आयी है। इनमें विचारों की गंभीरता के साथ-साथ एक उद्दस्पृष्टि का प्रयास परिलक्षित होता है। इसी काम में जन जीवन की कुतूहल श्रुति के मनोरंजनार्थ गहमरी की के जासूसी उपन्यासों में कोकप्रियता प्राप्त की। जिहोरीलाम बोस्वामी ने अपनी धीवम्यातिक रचनाओं में विषय की दृष्टि से विविधता को स्वीकार किया। उन्होंने सामाजिक एवं कल्पना प्रबल ऐतिहासिक उपन्यासों के साथ-साथ शुद्ध मनोरंजनपूर्ण उपन्यास मिले। उपन्यास का प्रारंभिक रूप प्रत्यन्त स्वल्प एवं साधारण-सा था। उसका विकसित एवं पुष्ट रूप प्रैमचन्द के सामाजिक राजनीतिक तथा चरित्र प्रपान

उपन्यासों में प्रस्तुत हुआ। कामाखर में धैर्य तथा विषय की विविधता की दृष्टि से उपन्यास-साहित्य उतरोत्तर विकसित होता गया गया। इन विकास की परंपरा के समझ धनी विराम-बिह्व नहीं लगा है। धैर्य तथा रूप की विविधता लिये हुए अनेकानेक महत्वपूर्ण कृतियाँ हिन्दी भारतों के संसार का समृद्ध बना रही हैं। अध्ययन की मुविधा की दृष्टि से इन सब कृतियों का वर्गीकरण इस प्रकार के विवेचन का विषय बनाया गया है।

प्रस्तुत विवेचन में हिन्दी के विगत प्रायः सत्तर वर्षों की रचनाएँ ली गई हैं। औपन्यासिक चिन्तनविधान की समीक्षा करते हुए किसी लेखक की समस्त कृतियों का प्रत्येक लेखक की कोई न कोई कृति से ही लेना मेरा उद्देश्य नहीं रहा है। परन्तु १९२० तक प्रकाशित हिन्दी के प्रमुख उपन्यासों की ही विचार का साधन बनाया गया है। साथ ही यदि उपन्यास-कला की दृष्टि से कोई बात समझ रूप से समी कृतियों में प्राप्त होती है और जो स्वाभाविक थी है, तो एक स्थान पर उनका विवेचन करते समय कृतियों का संवाचन संकेत कर दिया गया है।

हिन्दी उपन्यास रचना पर उर्दू का सीधा प्रभाव पड़ा है। बंगला एवं संघर्ष की मौलिक तथा अनुचित उपन्यासों ने भी हिन्दी-उपन्यास रचना-विधान पर अपनी स्पष्ट छाप संकेत की है। परन्तु, इस संघर्ष में हिन्दी उपन्यासों के साधारणतः बंगला उर्दू और संघर्षों उपन्यासों की परंपरा की भी लक्ष्य काव्यक प्रतीत हुई है। इस अध्ययन को पूर्ण बनाने के लिए संघर्ष और बंगला के सुखपूर्ण साहित्यिक उपन्यासों के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के विरम विमूढ उपन्यास भी उदाहरणरूप लिए गए हैं। पर इस विधा में अध्ययन की सीमा केवल उर्दू औपन्यासिक रचनाओं तक रही है जो देवनागरी लिपि में हिन्दी भाषा में प्रकाशित हुई हैं।

हिन्दी उपन्यास के अध्ययन के अन्तर्गत औपन्यासिक कथा पुराण शक्ति की कहानियाँ प्रायः भी विचार का विषय बनी हैं क्योंकि ये ही ने साधारणतः कृतियाँ हैं जिन्होंने उपन्यास की इतना महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। विभिन्न प्राचीन भाषाओं की औपन्यासिक रचनाएँ भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से हिन्दी उपन्यास के चिन्तनविधान पर अपना प्रभाव डालती रही हैं। परन्तु यथास्थान उनका विवेचन अथवा उल्लेख भी आवश्यक था गया है। हिन्दी उपन्यास का आरंभ उर्दू के विभिन्न उपन्यासों के अनुकरण पर तथा संघर्षों के सामाजिक उपन्यासों के सीधे अनुवाद तथा बंगला के माध्यम

से उसके जासूसी उपन्यासों के सीधे अनुवाद के रूप में हुआ। पुरानी परंपरा की धोर प्रारंभ में किसी का ध्यान नहीं गया पर सांख्यिकी की प्रकृति— 'काबूली' 'सचकुमार खरिब' तथा 'बहुलका मंत्रि' के रूप में तो थी ही। उसका अपना आधार वा मनोवैज्ञानिकता में विश्वास। योग एवं धर्मत्व देवत्व एवं मंत्रिधर और किन्नर तथा पुनर्जन्म की संभावनाओं से भी जीवनगाथा रोचक हो उठी थी। किसी भी साहित्यिक विधा के प्रारंभ में जब भाषा के विशिष्ट लेखकों का ध्यान तत्सम्बन्धी रचनाओं के प्रणयन की ओर नहीं जाता तो उस भाषा के साधारण लेखक उसी विधा के अन्तर्गत दूसरी भाषाओं में प्रस्तुत की गई कृतियों के अनुवाद में अपना-अपना ध्यान लगाते हैं। हिन्दी उपन्यास के प्रारंभ में उर्दू के तिलिस्मी उपन्यासों और बंगला तथा अरबी के जासूसी सामाजिक एवं ऐतिहासिक तथा विभिन्न भन्नापूर्व उपन्यासों के अनुवाद के रूप में यही हुआ। विशिष्ट लेखकों का ध्यान उपन्यास रचना की ओर जाते ही हिन्दी में भी उच्च कोटि की उपन्यासिक रचनाओं का भीषण हो गया।

इस अध्ययन में उन परिस्थितियों पर भी विचार करने का प्रयत्न किया गया है जो उपन्यास को सर्वप्रिय बनाने में सहायक हुई हैं। पर जन-जीवन के मनोवैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक पक्ष का अध्ययन उपन्यास-रचना की पृष्ठभूमि के रूप में ही किया जायगा।

इस अध्ययन में साहित्यिक विधाओं की उन कृतियों पर भी विचार किया गया है जो शैली के प्रकार के रूप में अथवा खरिब-खरिब के रूप में अथवा काव्यात्मक अनुकूलि के रूप में उपन्यासों के पहले या बाद में लिखी गई हैं।

उपन्यास के शास्त्रीय विवेचन में उपन्यास शब्द के व्युत्पत्तिनाम्य तथा कई अर्थ एवं साहित्य के संदर्भ में इस शब्द से अभिहित होने वाले काव्यात्मक निरूपण तो किया ही गया है, साथ ही उसके प्रकृतित रूपों का अध्ययन भी सांख्यिक एवं विकासक्रम की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास के सम्बन्ध में विचार की पूर्णता के लिये हमें जीवन के क्रम में उपन्यास का मान निर्धारण करते हुए अन्य काव्यात्मक एवं काव्येतर विषयों के साथ उसका स्वान तथा सम्बन्ध-विवेचन भी समीचीन प्रतीत होता है। स्वयं उपन्यास के अध्ययन की पूर्णता के लिये उपन्यासकार की मानसिक प्रकृति एवं पाठक की मनोवृत्ति का अध्ययन करने के लिये मानव-मनोविज्ञान का भी अध्ययन लेना पड़ा है। पूरक सामग्री के रूप में हम अध्ययन में अन्य भाषा के उपन्यासों के प्रभाव-क्रम की यथास्मान प्रासंगिक चर्चा की गई है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के शास्त्रीय विवेचन में उपन्यास के स्वरूप तथा औपन्यासिक कृति के निर्धारित करने के साधन-साधन प्रस्तुत उपन्यास साहित्य का क्रमिक अध्ययन भी अपेक्षित है। उसके साथ ही साथ उपन्यास पाठक और उपन्यास के भावी स्वल्प की चर्चा आवश्यक है। इस प्रकार में उपन्यास साहित्य के शास्त्रीय विवेचन में उपन्यासों के सम्यक् ज्ञान की उपलब्धि के साथ ही साथ उसके काम्य पक्ष पर बल देते हुए उसकी समीक्षा एक निश्चित क्रम से प्रस्तुत की गई है। इस सम्बन्ध में इस छिन्नाय की स्थापना की गई है कि शास्त्रीय विधि में किसी भी कृति को या सेवक को जो वह नहीं है वैसे सिद्ध करने में मायुक्तता को स्थान नहीं मिलता पर कृति तथा कृतिकार के धर्ममन में प्रवेश पाने के लिये सहृदयता की अपेक्षा रखनी है। इस प्रकार के अध्ययन में जहाँ एक ओर वैज्ञानिक की विषयगत निस्तृहता की आवश्यकता का निर्देश किया जाता आवश्यक समझा गया है नहीं समय के हृदय की बड़कन पहचानने की क्षमता की अनिवार्यता पर भी बल देना उचित माना गया है। इस संदर्भ में एक और स्थापना की गई है कि उपन्यास की आलोचना उपन्यास मिला कर ही प्रस्तुत की जा सकती है। इस प्रसंग में प्रमत्त का यह रूपन स्मरणीय है कि 'उपन्यासकार अपने समय का सब से बड़ा आलोचक होता है। वह सब से बड़ा आलोचक होता है यह तो नहीं कहा जा सकता पर कभी-कभी वह सीधे कुछ न कह कर जो कुछ अपने उपन्यास में प्रकट करता है उसी से धन्वी से धन्वी उक्ति का रूप देने में समर्थ होता है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य के शास्त्रीय विवेचन में हिन्दी उपन्यास के सभी ढंगों पर विचार करने का प्रयत्न किया गया है। हिन्दी उपन्यासों के प्राथमिक के बहुत समय परचाय उनके मूल्यांकन तथा अध्ययन की आवश्यकता का अनुभव करते हुए कुछ पुस्तकें लिखी गईं। विरहविद्यालयों में विप्र-मिश्र कासों की औपन्यासिक रचनाओं के अध्ययन भी प्रस्तुत किये गये। 'प्रमत्त' के उपन्यासों पर स्वतन्त्र रूप से कार्य किया जा चुका है। पर अभी तक हमने उपन्यास का शास्त्रीय विवेचन नहीं हुआ। प्रस्तुत निबन्ध उनी रूप से हिन्दी उपन्यास के रूप में है। इसमें उपन्यास के प्रमुख तत्वों तथा प्रारंभिक प्रयाण के रूप में है। इसमें उपन्यास के प्रमुख तत्वों विचारों के साथ हिन्दी उपन्यास के सम्बन्ध पर विचार प्रस्तुत किये गये हैं। उपन्यास से सम्बन्धित एक बड़े सामर्य (उपन्यास पाठक) की सामाजिक एकता के सिद्धि तथा उसकी मानसिक दशा का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए उप



## विषय-प्रवेश

### हिन्दी शब्द के विभिन्न अर्थ

भाषात्मिक काम में प्रयुक्त होने वाला हिन्दी शब्द अपनी विभिन्न ऐतिहासिक परम्पराओं को लिए हुए बन रहा है। वहाँ तक भारत को भाषाओं—संस्कृत प्राकृत अपभ्रंश का सम्बन्ध है, यह शब्द इनमें से किसी भी भाषा में प्रयुक्त नहीं हुआ है। 'कालकाचार्य की कथा' (जीन ग्रन्थ) में हिन्दु शब्द उपलब्ध होता है।<sup>१</sup> भारतीय फारसी विद्वानों ने हिन्दी अथवा हिन्दवी का प्रयोग हिन्द की भाषा के रूप में किया है। भारत की प्राचीनतम भाषाओं में हिन्दी शब्द का प्रयोग मने ही न हुआ हो पर इतना स्पष्ट है कि आठवीं शताब्दी तक आठ-आठ ईरानियों द्वारा शब्द का प्रयोग होने लगा था। ईरानियों की सबसे अधिक प्राचीन बर्तन पुस्तक 'घादेस्ता' है इसमें 'हिन्दु' 'हिन्दु' तथा 'हस्तहिन्दु' शब्द पाये जाते हैं। प्राचीन पहलवी में 'हिन्द' 'हिन्दुक' और 'हिन्दुस्' शब्द मिलते हैं। मध्यकालीन ईरानी काल में बिगण्ड प्रत्यय एक जोड़ कर 'हिन्द' + ईक = 'हिन्दीक' और 'हिन्दीम्' शब्द बना। बालास्तर में अन्तिम अक्षर का लोप हो गया और 'हिन्दी' शब्द 'हिन्द' क बिगण्ड के रूप में प्रचलित हो गया। इस प्रकार 'हिन्दो' शब्द का मूल रूप हिन्द है।<sup>२</sup> एसा प्रतीत होता है कि आठेतर देशों तथा मिस्र अरब सीरिया आदि में 'हिन्दी' अथवा हिन्दी शब्द ईरानी साहित्य के माध्यम से ही प्रविष्ट हुआ है। वहाँ पर हिन्दी शब्द का प्रयोग देश का अथवा देश की बनी हुई वस्तु का ज्ञान कराने के लिए होता रहता है। आज भी हिन्दी शब्द से भारतवर्ष (हिन्दुस्तान) में रहने वालों का बोध होता है यथा—'हिन्दी बमो आई-आई'।<sup>३</sup>

१ 'सूरिणा अण्डियम् रामालो बोल हिन्दुम् देशम् बबालो'

—जीन महाराष्ट्री बबबबी भाष ३४ पृ० २१९

२ 'हिन्दी साहित्य कोय पृष्ठ बबउ तस्करण सं० २ १३ बि०

३ 'हिन्दीकी कस को बालियाँ'—हिन्दी स्त्री आई आई

हिन्दी—अन्व तावर, तीसरा संस्करण पृ० ३८१३ द्वितीय स्तंभ



बौद्धिकी शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते हिन्दी शब्द द्वारा उस भाषा का बोल होने लगा जो भाषा पंजाब के पूर्वी भाग, राजस्थान उत्तर प्रदेश मध्य-प्रदेश तथा बिहार प्रायः के कुछ भागों में बोली जाती रही है। भाषा-बैज्ञानिकों ने इस हिन्दी के अन्तर्गत बांगरु ब्रज कन्नौजी कुम्हरी मगधी बजेली छत्तीस पड़ी मैवाड़ी जयपुरी मवाडी हाड़ीली कुमाठनी, मैवाडी गढ़वाली मैपिनी मगही भोजपुरी को उसकी उपभाषाओं के रूप में स्वीकार किया है।

उन्नीसवीं शताब्दी में गिम्काइस्ट महोदय ने हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग किया है। भाषा के क्षेत्र में हिन्दी हिन्दी हिन्दुस्तानी आदि प्रयोगों के चलते रहने पर धीरे-धीरे साहित्य के क्षेत्र में भी प्रकार की बातियाँ परिमलित हुईं। एक बहू जिसे उर्दू कहा जाता है और एक बहू जो हिन्दी के नाम से परिचित है। विद्वानों का एक बड़ा समुदाय उर्दू को एक स्वतन्त्र भाषा से रूप में स्वीकार करके उसे हिन्दी की एक ही भाषा मानता है।

धार्मिक काम में हिन्दी शब्द का प्रयोग उस विशिष्ट भाषा-रूप के लिए होता है जो भारतीय समाज की राजभाषा के रूप में स्वीकृत है, और जो राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है।<sup>१</sup> यहाँ पर यह कहना अप्रासंगिक न होना कि हिन्दी के रूप-निर्माण में उसका अपना ही पूर्ण स्वतंत्र प्रस्तित्व नहीं है, अपितु राजस्थानी पूर्वी पंजाबी ब्रज आदि भाषाओं बोलियों ने उसके रूप को संभाला है। यही कारण है कि हिन्दी साहित्य के ग्रन्थों में अपास्याम एवं पञ्जाबसर विभिन्न प्रांतीय भाषाओं एवं बोलियों के शब्द व्यवहृत होते हैं। हिन्दी एक ऐसी भाषा है जिसमें न तो संस्कृत तत्सम शब्दों का बाहुल्य होता है और न हिन्दुस्तानी<sup>२</sup> कही जाने वाली प्रिथिव कासीन सरकारी भाषा की तरह उसमें सरसी और सरसी शब्दों को भरमार होती है। सामारणतः 'हिन्दी' शब्द से हम उस भाषा का सम्बन्ध हैं<sup>३</sup> जिस भाषा के विभिन्न रूप हमें धार्मिक शब्द में मिलते हैं जिसका धारम्भ इत्यामस्ता<sup>४</sup> की बहानी और राजा भोज के सपने<sup>५</sup> में हुआ था जिस मुग्धी सदागुणमाल और मस्तुमी माल न पाठ्यक्रम में धाय बड़ाया था जिसके बिरारे हुए रूप में सर्वप्रथम वर्तन

१ भारतीय संविधान धारा ३४३ १।

२ प्रामाणिक हिन्दी शब्द पहला संस्करण, पृ० ११६३

३ हिन्दी-शब्दसागर, छायाजी चण्ड तीसरा पृ० ३७ २०५.

बन्धकान्ता' में होते हैं, जिसे भारतेन्दु ने सब प्रकार से सँभारा और जिस महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रथक प्रयास ने पुष्ट करके साहित्योत्पयोगी रूप प्रदान किया।

### उपन्यास शब्द की व्याख्या

'उपन्यास' शब्द में 'धस्' बाहु है। 'नि' उपसर्ग में मिस कर 'न्यास' शब्द बनता है।<sup>१</sup> 'न्यास' का धर्म है परोहर।<sup>२</sup> उपन्यास शब्द दो शब्दों—उपन्यास से बना है। 'उप' प्रथिक समीपवाची उपसर्ग है। संस्कृत के व्याकरण-सिद्ध शब्दों—'न्यास' एवं 'उपन्यास' का पारिभाषिक धर्म कृत्त और ही होता है। एक विशेष प्रकार की टीका पद्धति को 'न्यास' कहते थे।<sup>३</sup> इसी प्रकार उपन्यास शब्द बचन (वाक्य) के साथ प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार परविशेष को सदर्भ क्रम में रखने को 'परन्यास' कहते हैं उसी प्रकार बचन के अपने धर्म व्यक्त करने के प्रयोग को बचनोपन्यास कहते हैं।<sup>४</sup> हिन्दी में उपन्यास<sup>५</sup> शब्द कथा साहित्य के रूप में प्रस्तुत हुआ है। जिस धर्म में बंगला में 'उपन्यास'<sup>६</sup> बुजराती में 'नकम कथा', मराठी में काहम्बरी और उर्दू में 'नाबैस' शब्द का प्रयोग होता है उसी धर्म में हिन्दी में उपन्यास शब्द का प्रयोग होता है। यहाँ उपन्यास से उन सभी धर्मों की धीरे संज्ञित है जो कथा सिद्धांतों के नियमों का अधूर्ण प्रथमा पूर्ण रूप से पालन करते हुए या उनको नितास्त प्रकल्पना

१ न्यास = नि + धस् घाटे

२ परोहर "अभ्यस्तुञ्जकरं सर्वं कुञ्जं न्यासस्य रक्षणम्।

नीतिबचन

३ धनुस्तुत्र परन्यासा सृष्टि सन्निबन्धना। शब्दविद्येयज्ञो मोर्ति राज भौत्त्रिरपत्न्या।

४ "निर्यातः धर्मचरणीक बचनोपन्यासमालीजनः।" अमरकशातक " २३  
'उपन्यास (संज्ञा बुक्तिग-संस्कृत) (१) वाक्य का उपक्रम। बयान। बात की लपेट। बात का लपटा।"—हिन्दी-शब्दसागर (सम् १९२९ ई०)  
पृष्ठ ३४६

५ उपन्यास = २ (संज्ञा बुक्तिग-सं०) कल्पित आख्यायिका, कथा, नाबैस हिन्दी-शब्दसागर पृष्ठ ३४६ प्रथम स्तम्भ

६ उपन्यास = २ उप + नि + धस् + धम्। वाक्य वा श्रोतार मनोरञ्जनाय कल्पित गद्य, उपकथा।

करते हुए मानव की सतत-संगिनी कुवृत्त-वृत्ति को पाशों तथा बटमारों के कास्पनिक संयोजन द्वारा शांत करते हैं।

### साहित्य

'साहित्य' से प्रायः रचनात्मक एवं काव्यात्मक कृति का ही बोध होता है। यद्यपि साहित्य मूलार्थ में लक्षण शास्त्र का भी पर्याय है<sup>१</sup> पर बाद में यह शब्द काव्य के पर्याय के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है।<sup>२</sup> अतः उपर्यास साहित्य में

१ साहित्यपर्यायनिधि मन्वन्तोर्त्थं काव्यामत रञ्जत हे कश्चिच्छाः।

मतस्य ईरया इव सुष्ठुनाय काव्यार्थं शीरः प्रयुसीमवन्ति। वि० ख०  
सर्वे १

—श्रीर भी 'सञ्चार में कोई विद्या, कोई उपविद्या ऐसी नहीं है जिसे साहित्य अपने आभोग में न ला सके। यहाँ तक कि वह अपना भी निरोक्षण करता है। उसमें काव्य ही नहीं होता काव्य की उपजा ही नहीं रहती शास्त्र की प्रज्ञा भी रहती है। इसलिए 'साहित्य' में काव्य और उसके शास्त्र का साहित्य भी है। पार्ष्वय के लिए काव्य की काव्य और उसके शास्त्र को साहित्य' संज्ञा हो गई। फिर वह इतना प्रचलित हो गया कि ब्राह्मण्य (बाह्य के बाह्य प्रस्तुतित रूप का आत्मजन) के पर्याय-रूप में भी प्रचलित हो गया जो अद्युनातन स्थिति है।

—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (शंकरदेव धर्मतरे के 'साहित्य' (शास्त्रीय समाधान) की स्थापना काशी विश्वविद्यालय प्रथम संस्करण १९०५ १७।

२ काव्य प्रकाश साहित्य वर्णल :

साहित्य—सं पु० (स) (१). एकत्र होना (निलना, मिसन)

(२) वाच्य में पदों का एक प्रकार का सम्बन्ध जिसमें वे परस्पर अपेक्षित होते हैं और उनका एक ही क्रिया से सम्बन्ध होता है।

(३) किसी एक स्थान पर एकत्र किये हुए उपदेश परामर्श या विचार आदि। निषिद्ध विचार या ज्ञान।

(४) यद्यपि और यद्यपि प्रकार के उन वर्णों का समूह जिसमें सार्वजनीन हित सम्बन्धी विचार रक्षित रहते हैं। वे सपस्त पुस्तकें जिसमें नैतिक सत्य और मानवभाव बुद्धिमत्ता तथा व्यापकता से प्रकट किये गये हों। ब्राह्मण्य। इस अर्थ में यह शब्द बहुत व्यापक हो जाता है जैसे—समस्त

घपने निर्देशन के महत्त्व के कारण उन रचनाओं को भी सम्मिलित कर लिया गया है जिनमें उपन्यासों की व्याख्या प्रथम उपन्यासों के मूलांगों की रचना की गई है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में हमारा अनिश्चित हिस्सा में साहित्यिक व्यक्तियों द्वारा लिखी गई औपन्यासिक रचनाओं में है और उनके साथ ही साथ उन प्राचीन-वनात्मक साहित्य से भी है जो उपन्यास के विषय में लिखा गया है। इस प्रकार के साहित्य के अध्ययन में मनोविज्ञान स्वप्नविज्ञान अर्थशास्त्र राजनीति समाजशास्त्र आदि सामाजिक विज्ञानों एवं माध्यामिक विज्ञान के सम्पर्क का भी अनुशीलन सम्मिलित है जिसका सीधा प्रभाव वीण प्रभाव हिन्दी के कथा-साहित्य पर पड़ा है।

### शास्त्र

शास्त्र शब्द 'घाप्' वातु से 'ट्टन्' प्रत्यय लगा कर बना है।<sup>१</sup> जो अनुशासन करे प्रथम भावनाईस्य का विधान करे उसे शास्त्र कहते हैं।<sup>२</sup> ज्ञान

संहार का साहित्य) और देश काल भाषा या विषय आदि के विचार से परिमित रूप में भी। (जैसे—हिन्दी साहित्य ब्रह्मण्डिक साहित्य बिहारी का साहित्य आदि।)

—हिन्दी— शब्द शास्त्र, लोचन संस्करण (१९२६) छात्रों का, पृष्ठ २२६, द्वितीय स्तम्भ।

१ (घाप् + ट्टन् शिष्यते अनेन) घाप्ते

घाप् वातु शासन करना—अवस्थित अर्थशास्त्र स्थापित करना।

२ (१) ऐन घाईर, कमांड, 'कल' प्रिसेप्ट (२) 'ए सेकंड प्रिसेप्ट आर कल' 'इति शुद्धतम शास्त्र' भव १५। २०, घाप्तेषु पञ्चमिष्ठा बुद्धि रथ० १।१६,

शास्त्र—(१) सं पु० (सं ) हिन्दुओं के अनुसार ऋषियों और मुनियों के बनाये हुए वे प्राचीन ग्रन्थ जिनमें लोगों के हित के लिए अनेक प्रकार के कल ध्य बतलाये गये हैं और अनुचित कृत्यों का निषेध किया गया है। वे पारिविक ग्रन्थ जो लोगों के हित और अनुशासन के लिए बनाये गये हैं।

के किसी भी विषय को शास्त्र की संज्ञा दी जा सकती है<sup>१</sup>। किसी भी विषय पर जितना जो कुछ भी कहा जा चुका है उस सबका वैज्ञानिक अध्ययन 'शास्त्रीय' बन जाता है<sup>२</sup>।

शास्त्र अनुशासित ज्ञान की संज्ञा है। किसी भी विषय के पूर्वापर पक्ष को ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन का विषय बना कर उसे अध्येता के लिए सरल-बिचार-सरणि का रूप दे देना शास्त्र का उद्देश्य होता है। जो ज्ञान है और जो आवश्यक है उसके बीच में अनुमान की रेखा खींचना शास्त्र का कर्तव्य होता है और इस अनुमान कार्य की रेखा खींचने की प्रणाली में शास्त्र की विधि निहित रहती है। शास्त्रीय विधि 'वैज्ञानिक प्रणाली' की पर्याय होती है यदि हम उसे व्यवस्थित ज्ञान (Systematized knowledge) के अर्थ में लें हैं। 'विज्ञान' शब्द इस अर्थ में मया है। शास्त्रीय शब्द ही प्रारम्भ में वैज्ञानिक का अर्थ होता था। किसी भी वस्तु के शास्त्रीय अध्ययन में हमें यह तो बताना ही होता है कि वह वस्तु क्या है, जिसका हम शास्त्रीय ढंग से अनुशीलन करते हैं और फिर वस्तु-विशेष के अभिधान को अर्थगत सीमा एवं विषयगत विस्तार का निर्धारण भी करना पड़ता है। शास्त्रीय दृष्टी हमें वस्तु की धारणा को समझने में और अतीत की पुच्छूमि पर वर्तमान में उसकी विधाओं के परिचय करने में सहायक होती है। वस्तु से जितना लाभ प्राप्त हो सकता है और उस की अनुभूति हो सकती है उस सब की सम्यक् प्राप्ति के लाभ एवं मार्ग का निदर्शन शास्त्रीय पद्धति द्वारा ही उपलब्ध होता है।

विश्लेषण<sup>३</sup> का अर्थ होता है किसी भी विद्या की अभिधा को स्पष्ट-रूप से

१ अप्ताइड क्लेविडवली दु बि होल बायी प्राक शीचिय ज्ञान ए सबजेक्ट केवैत शास्त्र ... अमकार शास्त्र । 'ए ड्रीटिड ए बर्क' ।

(२) किसी विशिष्ट विषय या पदार्थ-समूह के सम्बन्ध का वह लक्ष्य ज्ञान जो ठीक क्रम से संग्रह करके रखा गया हो। विज्ञान=असे—  
प्राक्शास्त्र—अर्थशास्त्र—अनुशासितशास्त्र ।

—हिन्दी शब्द सागर-सीसरा संस्करण (१९२६), पृ० ११०६, द्वितीय शतक—छटा शब्द

२ (शास्त्रीय विहित) (१) सिद्धान्त—(२) 'साइंटिफिक' शास्त्रीय—  
बि० (सं०) शास्त्र सम्बन्धी । (शास्त्र का) ।

३ विश्लेषण—१ विश्लेषणविज्ञान २—विश्लेषण-कन्वीडरेसन एण्ड सैटलमेंट विज्ञान शास्त्र ।

प्रस्तुत कर उसके निम्न-लिख स्वतंत्रों का तात्त्विक आचार लेने हुए उस विद्या का सर्वांगीण सम्मेलन प्रस्तुत करता। शास्त्रीय विवेचन में हम उस विद्या में सम्बन्धित स्वरूपों का वैज्ञानिक और मतावैज्ञानिक आचार लेते हुए उन्हें एक विकासक्रम प्रथमा प्रसार क्रम में प्रतिष्ठित करने की प्रयत्न करते हैं। शास्त्रीय विवेचन में पुण्य-शेष की धार ही इच्छि न होकर-विधानन स्वरूप क्या है इस पर भी ध्यान दिया जाता है। वेदम सम्बन्धी और कुराई की धार विवेचन करना तो तत्त्वमन्वी आलोचना का काम होता है।<sup>१</sup>

विवेचन के द्वारा जहाँ हम किसी विषय को स्वयं हृदयंगम करते हैं वहाँ उसके द्वारा हम उसे दूसरों के सम्मेलन के सिद्धे नगसतम डंभ से प्रस्तुत भी करते हैं। विवेचन स्वयं समझ कर दूसरों को समझाने की क्रिया का सब कासो में विस्तार है।

शास्त्रीय विवेचन में प्रस्तुत के सर्वांगीण वैज्ञानिक सम्मेलन की ध्येक्षा रहती है। शास्त्रीय विवेचन के दो पक्ष होते हैं। एक में धारोप्य वस्तु की पूर्व निर्दिष्ट साहित्य शास्त्रीय सिद्धान्तों प्रथमा धारोप्य प्रणामी द्वारा विवेचना होती है। दूसरे में धारोप्य वस्तुगत तत्त्वों के विवेचन तथा परीक्षण के माध्यम से विवेचना का क्रम भाग बढ़ता है। किसी भी साहित्यिक विद्या प्रथमा साहित्यिक इच्छि की विवेचना करते समय हमें पूर्व निर्दिष्ट सिद्धान्तों को ध्यान में रखने हुए प्रस्तुत वस्तु की निम्नी विवेचन पर भी विचार करना है। हिन्दी उपन्यास के शास्त्रीय विवेचन में हमें काव्य की सत्य प्रविष्टि करने में महत्त्व सिद्धान्तों का विवेचन संस्कृत में साहित्यशास्त्र के अनुसार करने के साथ ही साथ इन नवोपेक्षित काव्यों के मुख्य को ध्येयत-कालन तथा बहुमत विवेचनार्थों के विकसित विज्ञान तथा समुद्र मनोविज्ञान के प्रचार में धारना होगा।

विवेचन—सता २० (सं०) (१) किसी वस्तु की धनीर्वाति परीक्षा करना। (बाँबना) (२) यह वैद्यक कि कौन सी बात ठीक है और कौन नहीं (निर्लेप) (३) ध्यायता (तक बितकें) (४) धनुतबान (५) परीक्षा (६) तत् प्रतत् का विचार। (७) धीमाता। हिन्दी-शास्त्रावर-तीतरा तत्करण (१९२९) एका खण्ड पृष्ठ ३९३८।

१ आलोचना—सता १३० (सं०) किसी वस्तु के पुण्य-शेष का विचार पुण्य-शेष-निष्पत्त। हिन्दी-शास्त्रावर-तीतरा तत्करण (१९२९) प्रथम खण्ड पृ० २६६

उपन्यास साहित्य के शास्त्रीय विवेचन में उपन्यास साहित्य की भाषोचना की आवश्यकता होती है। केवल रूचि-परिष्कार के लिये नहीं बल्कि इस विवेचन में उपन्यासकार के लिये भी कर्तव्य कर्म का निर्देश रहता है। उपन्यास साहित्य के इतिहास का क्रम स्थिर करना एवं उसका वर्गीकरण भी कर देना उसका एक उदात्त उद्देश्य है। उपन्यास साहित्य के शास्त्रीय अध्ययन की सहायता से सबसे बड़ी बात होती है उपन्यासों के नायिक अध्ययन की परिपाटी का योग्योद्योग। शास्त्रीय अध्ययन अपने में वैज्ञानिक विद्या के अनुशीलन तथा प्रतिष्ठित विचार-क्रम के प्रवृत्त से किसी भी विवेचन-व्यापार में पूर्वाग्रहों को स्थान नहीं देता। जो बात वैसी है उसको उसी ढंग से प्रस्तुत करना शास्त्रीय विवेचन की पहली शर्त होती है। हिन्दी उपन्यास की समीक्षा निष्पक्षता मुश्किल एवं सम्भावना के आधार पर होनी चाहिये। जो अपने में नहीं है उसका आरोप करने की चेष्टा व्यर्थ है। हाँ उसे अपने में माने का उत्साह अवश्य होना चाहिये। और जो अपने में है उसे उसके समार्थक्य में ही प्रस्तुत करने का सोचा उपक्रम वाञ्छनीय है। इस कार्य में परिचित व्यक्तित्व को भी धीपचारिकता के बाधावरण में रक्त कर ही उसका मूल्यांकन करना है। अपनी अंतरपदा का नाथ तन्मत्त प्रशंसियों को खोजने में सहायता क रूप में भले ही समझ में।

### उपन्यास का प्रारम्भ

जब उक्ति में धर्म को छिपाने का उपक्रम होता है तब वह साहित्य की संज्ञा प्राप्त कर लेती है और जब कथन में 'इच्छा' को छिपाने का प्रयास निहित होता है तो वह राजनीति की सीमा में भिर जाता है पर उक्ति का सहज रूप और कथन की साधारणता से ही स्वार्थों पर मिलती है—धर्म और उपन्यास में और इसलिये प्रारम्भ में इन दोनों का ही प्रभाव नहीं के समान रहता है।

उपन्यास का प्रारम्भ उसी समय से हो गया था जब एक व्यक्ति ने दूसरे व्यक्ति के साथ अपनी ही भावना से विचार-विनियम किया था। स्वयं दोनों निश्च—या एक आड़ा उम सजीव उपन्यास के प्रभाव-पात्र रहे थे। जब दो व्यक्ति मिलते हैं तभी उपन्यास की जन्मभूता या अस्तित्व होता है। जब एक कहता है कि मैं आज स्टेशन को चला—क्यों चला? —याही बैठे—याही क्यों बैठे? —तब सब नायक-कारणों की चर्चा के साथ वह अपने दैनिक कार्यों से निवृत्त होने की चर्चा भी कर देता है और पहली चर्चा में और निवृत्त होने की चर्चा में कोई अन्तर नहीं होता। उपन्यास

में निबल होने की प्रिया का उत्पन्न नहीं होता पर धीरे धरे महज रूप में आता है। भग्न लोगों ने इनका सम्मान भी नहीं किया। उनका ध्यान ब्रूमरी महत्त्वपूर्ण बातों ने ले लिया।

उपन्यास की वृत्ति का आरम्भ मानव की चेतना की उत्पुष्टता से होता है। प्रथम अध्याय का दर्शन—जीवन का जो चमत्कार या वह कवि का चर्म विषय बना। उदाहरण के लिए—रूप की प्राप्ति प्रेम की प्राप्ति। पर यह सब साधारण रूप में ही सम्पादित हुआ इस पर कवि मौन रहा। इस साधारण व्यापार को घामने रखने का—ब्रूमरी शब्दा में जीवन को जीवन के रूप में रखने का ही उपन्यासकार को है।

‘उपन्यास’ शब्द की पारिभाषिक सन्धावली के अनुसार गद्य की सीरी का एक प्रकार है पर वास्तव में उपन्यास गद्य प्रवृत्ति के बन्धन से मुक्त एक कथन-वृत्ति का नाम करता है जिसका पहला प्रमाण हमें अथर्ववेद के उपन्यास के अग्रदूत कवि वासुदेव की केंटरवरी लेखन में मिलता है। हिन्दी में इसका स्पष्टरूप से उल्लेख प्रमाण हमें मूर और तुलसी की टीसो के तुलनात्मक अध्ययन में उपलब्ध होता है। यदि हम मूर के काव्य को ‘मन’ का प्रतीक हैं तो तुलसी का रामचरितमानस ‘जीवन’ का एक रूप कर उपन्यास वृत्ति का सर्वोत्तम उदाहरण सिद्ध होता है। ‘मन’ की वृत्तियों के समान बड़े विस्तार में भी रम कर मूर एक ही ठौर पर ‘छो से लड़े रह जाते हैं और तुलसी जीवन की विविधता से होड़ मन वाले कट्टु एवं मधुर प्रसंगों को साव माव आरम्भ से आन तक लेकर चलते हुए घाय ही बड़ने पड़े हैं। उपन्यास वृत्ति में जीवन जन्म से पूर्व भी और मृत्यु के उपरान्त भी मतिशील है, ऐसा आभास मिलता है। तुलसी आरम्भ से ही कथा की कुरहता अपनी अग्रमता—किर राम-नाम की महिमा से कथा के आरम्भ पर पाते हैं—धीरे वह आरम्भ होता है सजी-मरण के बृत्त से—बिनावा अवसान होता है संकर-पार्वती विवाह से। प्रत्येक बार तुलसी एक मधुर प्रसंग की अवधारणा के लिए एक कट्टु प्रसंग की पहले साते हैं, यथा अनुपमय का प्रसंग पहले राजाओं का मान भंग कर जनक को जानकी को तथा अन्यान्य स्वयंकों को विद्या की मिति में दासता है और फिर राम हाथ अनुपमय मधुर भाव की सृष्टि करता है। इसी प्रसंग में परशुराम का आगमन कट्टु मिति की अवधारणा करता है, तपस्या सीता का विवाह सम प्रसंग का पर्यवसान मधुरता में करता है। यदि कवि आत्मीक न ऐसा नहीं किया है क्योंकि उनमें औपन्यासिक वृत्ति



नहीं थी। औपन्यासिक रचना-विधान में चरित्र के उत्तार-अड्डाव का निरर्थक होता है पर काव्य में नहीं। वही चरित्र का उत्तरोत्तर विकास दिखाना ही कवि का लक्ष्य होता है। उदाहरण के लिए हम भारविष्ठ संस्कृत के एक काव्यग्रन्थ 'किण्टाकु'नीय' को लेते हैं। यही प्रारम्भ में एक पात्र का चार्ित्रिक विकास इतनी उत्तमता दिखाया गया है कि पाठक साधारणतः यही विचार करता है कि इससे अधिक चरित्र का उत्कर्ष और क्या हो सकता है पर सिद्ध कवि की देखनी प्राये प्राये वाले पात्रों का चरित्र भी उत्तरोत्तर विकास करती हुई जीवन की विविधता में आदर्श के सर्वोत्तम रूप का चित्रण करती है। तुलसी की धैर्यी इससे विपरीत है। हिन्दी-काव्य में उपन्यास-श्रुति सर्व प्रथम हम उन्हीं में पाते हैं। पात्रों का उदात्तीकरण, सामयिक समस्वाधों का निराकरण बर्णन का स्वाभाविक सौन्दर्य जीवन में उद्देश्य की महत्ता मनो-विकारों की निस्पृह धानाचना जीवन-दर्शन सभी कुछ तो उन्होंने अपने अंग से—हिन्दी के उस उत्कर्षकाल में प्रस्तुत किया था।

अनेकानेक प्रारम्भिक लेखकों द्वारा निष्प्रयोजन एवं सप्रयोजन कही-सुनी कथाओं के रूप में उपन्यास की प्रकृति को विकास प्राप्त हुआ। इनमें लेखकों की सम्पन्न प्रतिभा एवं पांडित्य का परिचय नहीं प्राप्त होता। ही मनोरंजन की दृष्टि से इन रचनाओं की उपयोगिता ध्वस्त रही है। उपन्यास श्रुति से कुछ रचनाएँ प्रारम्भ में समारहत नहीं हुईं। वे प्रायः सांस्कृतिक एवं परिष्कृत जन-रुचि के लिए असुल्य साहित्य के रूप में ही रहीं। यथान्वियों के अन्तर पर जब 'बुरे के भी भाग फिरने' के क्रम से बीसवीं सदी के प्रारम्भ में उपन्यास-श्रुति का साहित्यिक संस्कार हुआ तब उपन्यास की एक दूसरी ही दिशा की ओर प्रवृत्ति हुई। उपन्यास श्रुति को मोहस्य ही बना कर सम्पूर्ण न होने वाली प्रकृति ने उसे अस्पष्ट और बुरह बना कर कविता एवं वर्णन की शक्ति कठिनता से पचन वाला मानसिक भोजन बना दिया जिसे पढ़ कर या तो पाठक का संस्कृत की उपन्यास-श्रुति को काव्यत्व का जाया धारण करने का भाव की श्रुति 'कादम्बरी' का ध्यान होता या अथवा साधारण व्यक्ति की यह प्रतिश्रिता होनी थी कि यदि काव्य और दर्शन ही पढ़ना है तो नीचे काव्य और हमन कथा का पारागण ही क्यों न किया जाय ?

मान्य में बात और ही है।

समार के रंगमंच पर अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। राजनीतिक क्षेत्र में राज्य एवं सामन्ती-प्रथा के बीमर के दिन समाप्त होकर मजदूरों का राज्य

स्थापित हो गया है। जनसाधारण का महत्व बढ़ गया है। जन्म एवं मरण के स्थान पर प्रतिभा का सम्मान होने लगा है। पर उसकी उचित प्रतिबिम्बा साहित्य में नहीं होने पाई। साहित्य में बिचिष्टता की पूजा परंपरा के कठबरे में अब भी होनी जाती है। जो समझ में न आये अब भी उसे 'क्लामिक' का सम्मान मिलता है। पर इसे बदलना होना—साधारण जीवन की भाषा साधारण जीवन की भाषा में साधारण समझने वाले व्यक्तियों के लिए प्रस्तुत करनी होनी। इसी स्थिति में उपन्यास के महान रूप की प्रतिष्ठा होनी।

कभी-कभी इतिहास उपन्यास का स्थान लेना का हीससा लिए धाये बढ़ सकता है, पर इतिहास की अपनी एक सीमा है। वह मृत का है। जा हो चुका है उसी को वह बता सकता है। उपन्यास में तो जो हो सकता है उसका आशय और प्रेरक शक्ति दोनों ही रहती हैं। आज का संसार—उसके प्रभु बम बाबुयाल बायरलेम—सभी तो एच० जी० वेल्स ऐसे उपन्यास कृति के बनी मिलकों की मूक में प्रकट होता है। मूक की पीछे कविता में कल्पना के देव से किताबी ही क्यों न बढ़ाई आज पर छद्म-बन्धन उन्हें न तो आकाश छूने देता है और न अधिक समय तक पृथ्वी के ही निकट रहने देता है। इतिहास में मूक बहुरों के घबेर झड़-झड़ में ही रास्ता टटोलती रहती है पर उपन्यास कृति में मूक का विस्तार पृथ्वी पर सिद्धि के विस्तार में होइ भटा हुआ बहुरों को आत्मसात् कर लेने का हीससा रखता है।

उपन्यास का प्रारम्भ मनुष्य की चेतना के प्रारम्भ से हुआ। शास्त्र मत्स्य की भाँति उपन्यास-कृति सब कामों में प्रभुषण रही—अने ही बाण की आणाल कन्या की भाँति उसके ऊपरी या अचूरे जाल द्वारा उसके प्रथम प्रवर्तण के समय लोगों ने उसका उचित मूल्यांकन न कर पाया हो पर इतने समय के अन्तर पर उपन्यास का महान सौन्दर्य अपने वास्तविक मौरव के साथ जन-साधारण पर प्रकट हो चुका है और उसका विस्तार तथा महत्व जीवन के विस्तार तथा उसके महत्व के साथ मिल गया है। इस के साहित्य के अल्पत्र तुल्य अस्पृश्यस्वरूप ने आज के अधिक बर्ष की अविज्ञातवर्गीय स्थिति प्राप्त कर ली है।

एक बात और भी है।

समाज में सबको अपनी स्थिति का सम्मान प्राप्त हो चुका है। विज्ञान रूप में पूर्ण एवं व्यावहारिक रूप में अतः आज का हरिजन मन्दिर प्रवेश

का अधिकारी है—उसे योग्यतानुसार उच्च पर प्राप्ति का संरक्षण भी प्राप्त है पर साहित्य में अभी वह कृति पूर्णतया नहीं पा पाई है। हाँ प्राबुद्धिकतम कठिनपम साहित्यिक कृतियों में वह उपेक्षणीय अवश्य नहीं रह सका है। वर्णगत महत्त्व के स्थान पर व्यक्तित्व के महत्त्व का मूल्यांकन किया जाता प्रारम्भ हो गया है। इसी प्रकार उपम्यास न बड़ी उपेक्षा सहन की है। प्रायः सभी छावर लोगों का मनोबिभोव करते हुए भी हरिजन के कार्य की भांति उनके कार्य को भी उच्च साहित्य (घमौर साहित्य) में रचि रचन बाधों में नीच ही समझ है। कर्मकाण्डी साहित्यिक के लिए उपम्यास तो आत्मात्मना का जीवन-पुखें सौम्यमं सिद्ध हा रहा है। वह तो मान भी उसे उपेक्षणीय समझता है। जन-साधारण मनो बुद्धिसे उससे अनित्य रूप की अपनी समिताया की पहुँच से परे समझ कर उनकी घोर घाँब उठा कर भी नहीं देख सकता। मार्ग पर चलती हुई भीड़ में कोई ता चिट्ठीक कर कोई कुछ बाँधों तक एक कर घौर कोई बिना बके ही उसकी घोर देखता रह पाता है। फिर भी वह अपनी बड़ती पबानी के उम्यास मं मरत अपने आकर्षण की परिधि को निरन्तर विस्तृत करता जा रहा है। प्रायः यह देखा जाता है कि उसके इस नैमक-विनास को साहित्यशास्त्र के पंडित प्रत्यक्षत उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, पर परोक्षरूप में वह मराकदा उनके भी अनुसंभन की वस्तु बनता है।

प्रारंभ में पाश्चात्य साहित्यशास्त्रियों की भी उपम्यास के प्रति हेम दृष्टि रही है। अमेरिकन शिद्यकों द्वारा यह विचार सर्वसाधारण के मस्तिष्कों में जमा दिया गया था कि उपम्यासेतर रचनाओं का पढ़ना शिद्यानुल एवं स्थाप नीय है घौर कथाओं का पढ़ना हानिकारक है। अधिक से अधिक उसके पथ में मही कहा जा सकता है कि वह अपने को पुनारे में डाल कर बहुमान का साधन मान है। ऐसा करने में उन्हें अर्नस्ट एवं मार्सेल ऐम प्रगिद्ध धातोबके वा प्रच्छन्न समर्थन भी प्राप्त था।<sup>1</sup>

1 "The lingering American popular view disseminated by pedagogues that the reading of non-fiction was instructive and meritorious that of fiction harmful or at best self-indulgent was not without implicit backing in the attitude toward the novel of representative critics like Lowell and Arnold."

बोसे हेनरिएट डॉमेटर की पुस्तकपत्र प्रकाश में बाधण के हुए कहता है—'इस राजकुमारी का चरित्र प्रशंसनीय है क्योंकि इनमें उन्हीं लोगों के कर्तव्यों के विषय में पढ़ा जा किन्के चरित्र इतिहास का निर्माण करते हैं। उसे 'रोमांस' तथा उनमें बर्णित नायकों में कुछ भी बाधण एवं सुशुद्धिपूर्ण बात नहीं मिलती थी। उसका कथ्य का बाधण इतना प्रबल था कि वह निर्यम एवं प्रयासक कथा-कृतियों को बुरा की दृष्टि में देखती थी।'

यह एक विचित्र मयोज है कि इनकी तथा अगरी बला ही माहिरियों में उपन्यास का धारम्य माहिर्य की प्रत्याप्य विधाओं के चरमोत्कर्ष के पश्चात् ही हुआ। पुनः में रोमान का धारम्य एलेक्जेंडर दुय के ह्रास के पश्चात् हुआ और एनिज्जोस-कालीन इंग्लैंड में दुय के नीरव स्वकार लेखकों द्वारा उपन्यास शिरस्तुत हुआ। यदि वही सालों लेखकियर अथवा डेक्टर न उपन्यास लिखे होते तो ब्रिज्य में इन्वीज में भी दोस्तोमकी तथा टामस्ट्राय के सवाक महाप्राण उपन्यास लेखकों की बाधा की जा सकती थी और अगरी उपन्यास भी क्यो उपन्यास को परिवर्धकत्वा प्राप्त कर सका होता। यही कारण है कि अगरी माहिर्य के स्वर्गपुम में कोई भी उपन्यास ऐसा महत्वपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त कर सका जैसा अकमपियर के नाटक 'दक्वर्थ' अथवा 'किनतिवर्' को प्राप्त हुआ।'

1 "Our admirable princess studied the duties of those whose lives make-up history—there she insensibly lost the taste for romances and for their insipid heroes and excess to form herself upon truth, she despised those cold and dangerous fictions.

—ROBERT LIDDEL. *A Treatise on the Novel* p. 13

2. Strangely enough, both in Greek and English literature the beginnings of the novel belong to the aftermath of greatness in Greece the romance appeared only in the Alexandrine Period of decline in Elizabethan England it was slighted by those writers who are the glory of the age. Had Marlowe, Shakespeare or Webster written novels, it is likely they would have anticipated Dostoevsky and the English novel would have matured as the Russian did. As it is, we have no novel of equal power and significance to set beside Shakespeare's 'Macbeth' and 'King Lear'—S. DIANA NELL. *A Short History of English Novel*, pp. 13-14

कमलि इसके उदाहरण हैं। कसो वास्तेयर बोर्की आदि उपन्यासकारों की रचनाओं का ही यह परिष्कार था।

उपन्यासों का मानव-जीवन से बहुत निकट सम्बन्ध है। जीवन की उत्तमता का मयार्थ विवक्ष्य करना ही प्राकृतिक उपन्यासकारों का उद्देश्य रहता है। प्रत्येक व्यक्ति की वधि अपनी जीवन-सम्बन्धी घटनाओं के प्रति विधायक रूप से रहती है। प्रत्येक यह स्वाभाविक है कि उपन्यासों का महत्त्व उनकी दृष्टि में बहुत अधिक हो।

## १. वही पृष्ठ ८८

(i) कसो-वास्तेयर—कास की राज्य कमलि की घाय कुलबाने बाला (ही फण्ड दि फायर घाय फण्ड रिबोस्मूशन) "ईस्वरवाहिता ईताई घाघार नृ कला परंपरा की अत्यन्त कठिनाई प्राकृतिक कानून आदि की घाघार घिना हिल गई जब वास्तेयर ने अपने लेखों और व्यंग्य कविताओं, पद्य तथा पद्य रचनाओं प्राकृतिक कानून पर कविता तथा कसो ने अपने विचारों (१७५०-१७५३) और 'एमिल' (१७६२) द्वारा लब्ध घाघार किया। दोनों ने अपनी कृतियों में अपने नये विचारों एवं घाघारों की घिना रखी।"

—भयवत्प्रवेश उपन्यास विवक्ष्य-साहित्य की रूप रेखा वृ० १७६-१८७

(ii) बोर्की—कसो कमलि पत का सफल पुरोहित। 'दि मोस्टर घाघार स्टैंगिय रिबोस्मूशन घाय रघन लोबियट लिटरेचर ए कसोडेरे कुल पोर्शन घाय हूब बर्क विलोम्स दु दि लोबियट पीरियड (बोर्की आइड इन १८३६) जेड एन एक्सेप्योनली जेड रोल इन दि फार्मेशन घाय लोबियट लिटरेचर।

(—वृ० ए० ए० घार० रेकन्सबुक पृष्ठ २३२)

1. 'बोर्की के प्रथम उपन्यास 'कोमा गोरडेपेब' में ऐसे चरित्रों का विवक्ष्य है जो धार्मिक व्यवस्था के कारण कुचल दिये गये थे किन्तु उनमें स्वतन्त्रता की भावना जागृत थी। "प्रगतिशील कसो समाज में लोग बोर्की को कानि का सम्बन्ध बाहक समझने लगे थे। गोर्की मोन्ट्रेविको के निकट घाघार और १८०३ ई० की कानि में उतने सक्रिय योग दिया।" उसके उपन्यास 'मा' (१८०६) में कल के धर्मिकों के प्रारोक्षण पर घण्टा प्रकाश डाला। इसमें धार्मिक धर्म को अक्षय विवक्ष्य में पूर्ण विवक्ष्य व्यक्त किया गया है। मा' उपन्यास में एक पात्र कहता है—"जब

उपन्यास वर्तमान काल की सबसे बड़ी साहित्यिक रचना है। 'वर्तमान उपन्यास में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। सामान्य जो रूप पकड़ रहा है, उसके विभिन्न किशोरों में जो प्रकृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं उपन्यास उनका विम्बूत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते चाकरपकतानुसार उनके टुकड़े विम्बूत मुधार धपका निराकरण की प्रकृति भी उत्पन्न कर सकते हैं।'

उपन्यास मात्र न युग में साधारण जन जीवन का जीवित वास्तव है। उमका पठनरूपन साहित्य की प्रत्यास्य विधाओं के माप हो गया है। उन सब के मह्योप में उपन्यास सब में तो कल्पना का त्रिजीनामान कहा जा सकता है और न निष्ठाने लोगों के मिय समय बितात का एक हस्तका साधन। इस समय उपन्यास धपन पाठका न लिये मोजन और चार के साथ-साथ विमापों के लिये विचार भी प्राप्त होत हैं। उसके द्वारा मनोरंजन के साथ ही साथ मलिक नीमा में सिमित घाई है और उपन्यास का साधारण पाठक भी संसार की किडरमार्टन की पाठ्याला का विद्यार्थी बन गया है।

साहित्य-कर्म जीवन का मह्यत अंग है। अपने समय की सभी प्रकार की विन्माधीनता पर विचार किए बिना कोई भी जीवन की पूर्णता प्राप्त करने का रूप नहीं कर सकता। जिस प्रकार एक वैज्ञानिक न लिये धात्र का विज्ञान धनीत के विज्ञान से बड़ा बड़ कर है और जिस प्रकार अपने समय की राजनीति का मह्य एक राजनीतिज्ञ के लिये होते हुए समय की राजनीति न बही बड़ कर ता है, उधे प्रकार धात्र के विज्ञान का भी धपन समय के साहित्य का मह्य अममता धाकरपक हो गया है। सच तो यह है कि साहित्य और जीवन के

संसार का सबसे स्पष्ट और निश्चित अंतर्गत होया।" उसकी मरियव बाणो साथ हो कर हो रही।

—विमोद चकर ब्यास 'यूरोपीय उपन्यास साहित्य' पृ १०१६

तामचक्र पुस्तक—हिंदी साहित्य का इतिहास—पृ १३६

"Literary activity is a vital part of life—no man can live fully without taking every kind of contemporary activity into account. Just as contemporary science matters more to the scientist than the science of the previous ages, and contemporary politics is of more interest to the politician than the policy of Walpole or the ideas of elder Pitt, so contemporary literature should be of primary importance to the men of letters."—DAVID DICKES *Via Literary Values* P 14

सम्बन्ध को समझ लेने के पश्चात् साहित्य का महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाता है। प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली द्वारा पारचात्य देशों—विशेषकर फ्रांस और जर्मनी में एक ऐसा वातावरण निर्मित हुआ जिससे वहाँ उपन्यास-रचना को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। काम क्रमानुसार इस साहित्य का प्रभाव भारत पर भी पड़ा।

प्रजातन्त्रात्मक शासन-विधान क्षेत्रव्यापी शिक्षा-प्रसार का सर्वाधिक महत्व प्रदान करता है। फ्रांस के तीसरे प्रजातन्त्र ने इसके महत्व को समझा। वहाँ राज्य ने शिक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। सर्वत्र पाठ-शालाएँ स्थापित की गईं और शिक्षा को निःशुल्क कर दिया गया।<sup>1</sup> धर्म निरपेक्ष वातावरण में समस्त फ्रन्सीसी जनता ने अपने को पूर्ण-सिद्धि करना तथा अपने पास-पास एक स्वस्थ बौद्धिक वातावरण को सृष्टि करना अपना पुरीत कर्तव्य समझा। इस प्रकार बौद्धिक क्षेत्र में वास्तविक प्रगति की स्थापना हुई।

बौद्धिक वातावरण में साहित्यिक एक वैज्ञानिक की भाँति प्रयोगात्मक विधि को अपनाता है। जो अपने पास-पास है उसी से साहित्य के उपादानों का संग्रह करता है। फ्रान्स और बौद्धिक स्वतन्त्रता के इस ध्यानासन का विश्वव्यापी प्रभाव पड़ा जो साहित्य में सबसे अधिक उपन्यास के क्षेत्र में परिलक्षित हुआ। उपन्यासकार सर्वत्र मानव भाँति का वैज्ञानिक पर्यवेक्षक बन गया।<sup>2</sup> प्रसिद्ध उपन्यास लेखक पुसाइयर जो एक डाक्टर का सड़का था अपने को पुस्तक एवं सिनेमों की मनोमाधनाओं का व्यवच्छेद विज्ञानी समझता था।<sup>3</sup>

1 "The French language and French Literature were given place of pride in the system all French children had to be taught proper French; all had access to books; all that could pass the necessary examinations could go on with their studies, through the universities and into careers without having to pay anything 'True democracy' was installed in the intellectual domain

—DENIS SAURAT *Modern French Literature* P 1

2 The Novelist became the scientific observer of human beings

3 *Ibid.*, p. 30

इस प्रकार उपन्यास ने अपने को श्रेष्ठ साहित्यिक विधाया में बढ़ कर सिद्ध किया।

रोमांटिक युग में कविता प्रमुख थी। भरता का स्वांग मरने वाला सोया का बाघ में उपन्यास को दृष्टान्तपर समझ जाता था। स्वयं फ्रांस में मा यूजेन स्मू एवं बाल्जाक जैसे उपन्यासकारों को प्रेस एवं प्रालोचका शानों में ही कका मोर्चा मना पड़ा पर वे अपनी प्रकृत प्रतिभा एवं रचना क प्रकृत परिमाण क बस पर उपन्यास को साहित्यिक रूप देने में सफल हुए। इस क्षेत्र में एलेक्जेंडर ड्यूमा की भी विशेष क्वालि है। वह वा उपन्यासों के उत्पादन के लिए नियमित रूप से एक कारखाना का संचालन करता था जिसमें उसने लेखक मौकर रख छोड़े थे जो कि ड्यूमा के नाम पर ड्यूमा के आदेशानुसार उपन्यास लिखते रहते थे।<sup>१</sup> इस प्रकार धीरे-धीरे उपन्यास सर्वप्रिय बना और उसे साहित्यिक पौरव भी प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात् फ्रांसेपर न उपन्यास के क्षेत्र में प्रवेश किया। उपन्यास को श्रेष्ठ कानों के साहित्य की श्रुती में बिठाने का समय इन्हें प्राप्त है। इनकी रचना-श्रणासी की विशेषता यह थी कि वे वाक्यों के मठन एवं उनके प्रयोग पर अत्यधिक ध्यान देने थे।<sup>२</sup>

इस समय पश्चिम में एक प्रकार से साहित्यिक सजातिकाम चल रहा था। गोट-फ्राय जो रोमांटिक युग की एक विशेष शैली था अब अत्यधिक समहावायस्या में 'टूटे गड-रू' बेहूरी वह बस पया पकाम' की साक्षात् की चरितार्थ कर रहा था। नाटक भी स्वाइक ऐसे कृत्यत यन्त्रियों के हाथ में पड़ कर ऐसा पशु हो गया कि वह साहित्य क क्षेत्र से ही बाहर हा गया उसकी पणना बनाबटी एवं लड़क-मड़क बाने प्रदर्शनों में होने लगी और वह पैरिय क उन उद्योग का घम मात्र बन कर रह गया जो अब भी घड़ले से चल रहा है। कतिपय सम्मानित उपन्यासों (जिनका सम्मानित रूप में—उपचार से अधिक

1 ".....With his sheer genius and enormous quantity he was successful in establishing the novel as literature. *Ibid*, p. 29

2 " ...Who ran a regular factory in which he has employees working to order under his signature." *Ibid* p. 29

3 Datta Saurat *Modern French Literature* p. 29



नहीं) के अतिरिक्त नाटक तो नहीं रह गया और अब भी नहीं है।<sup>1</sup> ऐसी परिस्थिति में उपन्यास-रचना के समझ भी एक अद्वितीय समस्या थी। पर अस्तित्व के लिये संघर्ष करता हुआ यह किसी प्रकार अपना रखा करने में समर्थ हो सका और तब विज्ञान का प्रवेश हुआ।

पाश्चात्य देशों का प्रारम्भिक साहित्यिक इतिहास इस बात का साक्ष्य है कि वहाँ व्यक्ति को धर्म और साहित्य के आचार पर ही प्रविष्टा प्राप्त होती थी। किन्तु १७वीं शताब्दी के अन्तिम एवं १८ वीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरणों में विज्ञान का वेग बढ़ा। वैज्ञानिक विकास ने जन-जीवन में नवीन चेतना का संचार किया। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक महत्वाकांक्षी विचारक साहित्य के साथ-साथ विज्ञान पर भी कार्य करता था। जहाँ-तहाँ सुप्रसिद्ध साहित्यिक नामों के वैज्ञानिक विषयों पर कार्य करने में विशेष परिश्रम मिलता था। इसके द्वारा विस्मयपूर्ण वैज्ञानिक खोजों पर किया गया कार्य विस्मृत नहीं किया जा सकता। धीरे-धीरे स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि विज्ञान की संज्ञा उसी साहित्यिक-व्यक्ति को प्राप्त होती थी जो वैज्ञानिक विषयों पर भी कार्य करता था। ऐसी परिस्थिति में विपुल साहित्यिक के समझ एक अद्वितीय समस्या थी। वैज्ञानिक विकास-क्रम के प्रत्यक्ष प्रचार एवं प्रसार का परिणाम यह हुआ कि नीति-काव्य एवं नाटक साहित्य की वही शीर्ष स्थायी विधा अपना महत्व खोने लगी। उस समय उपन्यास ही विज्ञान से होकर निकल सका। जिन नवीन उपन्यासकारों को विज्ञान न खत्म किया उन सभी को उपन्यास ने भात्मसात् किया। वैज्ञानिक प्रभाव से सामाजिक चेतना के जो जो रूप निर्मित हुए उन सब की विभूति उपन्यास-साहित्य द्वारा सम्भव हो सकी। इस तथ्य के प्रमाण-स्वरूप प्रसिद्ध उपन्यासकार एमिल जेम्स जेम्स को उपस्थित किया जा सकता है।

1 "The drama sank to such decrepitude with highly skilled technicians like Scribe that it really fell out of literature and entered into the category of meretricious show; part of a certain Persian industry which is still flourishing in spite of certain honourable exceptions (no more than honourable —no more than exceptions) the drama stayed in that domain for good and all and is still in it." *Ibid*, p. 29

इसी बीच में आगस्त कान्ते ने समाजशास्त्र का आधिकार किया। उपन्यास-सामाजिक ज्ञान एवं वैज्ञानिक प्रसाधनों का पूर्ण उपयोग करते हुए पहले से प्रतिष्ठित सभी साहित्यिक विधाओं पर हावी हो गया।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि यदि फ्रान्स की राज्य क्रांति ने जन जीवन के बीच प्रबुद्धाधिक प्रसारित होने की रक्ति को जागृत न किया होता तो कथावित् उपन्यास पाठकों को सुख्या के समान में विशेष उन्नति न कर पाता। राज्य क्रांति के पाठकों की वृद्धि ही प्रकल्प कर ही पर के पाठक प्रायः साधारण भाटि के थे। उनमें सांस्कृतिक चेतना की प्रायः स्थूतता थी। प्रत्येक उस काम में कविता या नाटक-रचना की पति में विकास सम्भव नहीं हो सका। साहित्य की इन दोनों विधाओं के लिये एक विशिष्ट प्रकार की मन-स्विति तथा वातावरण की आवश्यकता होती है। पर उपन्यास का पठन-पाठन अवेलाहृत कुछ भिन्नता रखता है। उसे समझे-छिठे अथवा साधारण रूप से अपने कामों को पूरा करते हुए भी पढ़ सकते हैं। किन्तु कविता या नाटक के सम्बन्ध में ऐसा सम्भव नहीं है।

सुधीन चेतना के परिष्कार स्वल्प साक्षरता ही बड़ी पर गम्भीर अध्ययन के प्रति साधारण जनता की रक्ति न थी। वह किसी विशाल प्रधान साहित्यिक रूप को अपनाते में असमर्थ थी। जनता की इस मनोदशा ने भी उपन्यास को बड़ा बल प्रदान किया। विरल साहित्य में उपन्यास के महत्त्व की प्रतिष्ठित सर्वत्र इसी क्रम से हुई है। इसके द्वारा सर्व साधारण का मनोरञ्जन हुआ। साथ ही सामान्य जीवन के लिये हमके रूप में कुछ विचार भी प्राप्त हुए।

प्रायः पञ्चीस वर्ष पूर्व तक उपन्यास का पठन-पाठन समान में प्रतिष्ठा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था और उपन्यास लेखक को किस्सा-कहानी लिखने वाला मानकर कोई विशेष सम्मान नहीं प्राप्त होता था। इस स्थिति पर यदि हम यत्किंचित् सम्मोचनापूर्वक विचार करें तो इसका एक मनोवैज्ञानिक कारण है। सुबकों के मस्तिष्क प्रायः अल्पविकसित होते हैं। उपन्यास साहित्य की कल्पनिकता उनके पर्याय जीवन में नहीं विद्विष्टि का संचार न कर दे इनी भावना से उपन्यास का अध्ययन अत्रिष्ट किया गया। चैम्पेरी के कल्पित प्रसिद्ध विद्वान् इस साहित्यिक विधा के जन-प्रिय होने के कारण विरोधी थे। बोफर्डमिय (दि विचार भाक बैरुप्रीन्ड का लेखक) उपन्यास

को किसी लड़के के हाथ में न पड़ने देने के सिरे माता-पिता को बेठावनी देता है क्योंकि वह इसे समय और कल्पनाशक्ति का बिनाश करने वाला तथा नवयुवकों को भ्रुसावे में डालने वाला समझता था<sup>1</sup>। मेरी बार्ने मास्टेग उसमें पाठकों की हुई ही हानि देखती थी। उनके अनुसार उपन्यास के पढ़ने में समय और मन दोनों का अप्रभय होता था<sup>2</sup>।

किन्तु अब स्थिति पूर्णतः परिवर्तित हो गई है। अब तो उपन्यास साहित्य की मान्यता प्राप्त जिबा ही नहीं है, बल्कि कल्पना में मटकती हुई कविता और रंजमंज में उससे हुए पाठक को पीछे छोड़कर वह सर्व-माधारण का प्रतिनिधि साहित्य बन गया है।

उपन्यास प्राकृतिक सम्पत्ता की रेश है। बाह्य जीवन की आवश्यकताओं को समग्ररूप में चित्रित करने वाला यह ऐसा एक साहित्य-रूप है जो धन पूर्व की कई साहित्यिक परम्पराओं को धातुसाय करके हुए भी अभिनव आकर्षण के साथ प्रकट हुआ। उसने मनुष्य के क्रिया-कलाप को चित्रित करते समय यह भी दिखाया कि किसी चरित्र के जीवन में घटित होने वाले कार्य-व्यापारों

- 1 Above all things never let your son touch a novel of romance. How destructive are those pictures of consummate bliss! They teach the youthful to sigh after beauty and happiness that never existed; to despise the little good that fortune has mixed in our cup by expecting more than she ever gave and in general—take the word of a man who has seen the world and studied it more by experience than by precept, take my word for it. I say that such books teach us very little of the world.

—GOLDSMITH *Dictionery of English Thought*

- 2 Writers of novels and romance in general bring a double loss on their readers—they rob them both of their time and money—representing men manners, and things, that never have been nor are likely to be—either confounding or perverting history and truth inflating the mind, or committing violence upon the understanding

—LADY WORTLEY MONTAGUE *Ibid*

को रोषकता प्रदान करने वाला वह जीवनांतरण है जिसने लिवे मानव भी रहा है और मर रहा है ।

उपन्यास मात्र के युग में साहित्य का सर्वप्रिय रूप है । उसमें कथा अपने पूरे मौल्य के साथ आती है जिसमें विचार का पूरा-पूरा बल तथा जीवन वर्तन के साथ ही साथ अलुच्छा-शुद्ध एवं मनोरंजन का समाधान भी रहता है, ये सब कार्य एक साथ होते हैं पर कोई यह नहीं सकता कि लेखक का आत्मरस्य अपना आग्रह धनुक मनु की ओर अधिक है । विद्वानों की समा में बैठकर मनुष्य अपने और समकाली व्यक्तियों को लेकर भी बात का नाम चलाता है कुछ इसी प्रकार का काम उपन्यास की रचना में होता है उपन्यास को हम एक अत्यन्त कुशल समा चतुर की बात का साहित्यिक लिखित रूप समझ सकते हैं ।

इस प्रकार उपन्यास नये युग की नयी परिस्थिति का नया रूप है । साहित्य के रूपों के अनुभव के सम्बन्ध में यह एक अलग बात है कि वे व्यक्ति और युग के सादर और सांख्यिक समाधान का परिणाम होते हैं । विश्व में कथा-कहानी की परम्परा उतनी ही पुरानी है जिसका स्वयं मनुष्य है । प्राणि के प्रत्येक नये चरण के नया युग दिया । उसने नया मानव बना जिसकी परिस्थिति के नये रूप बने हुए । कथा-कहानी की मौलिक प्रकृति हो सबहकी घटाएकी घटाएकी (हिन्दी साहित्य में तो बड़ी देर के बाद उन्नीसवीं घटाएकी) में उपन्यास के रूप में प्रस्तुत हुई ।

प्राकृतिक युग से पूर्व का युग 'मृत्त-निर्भर-युग' का जिससे व्यक्तित्व और उसका इतिहास बहुत सीमित था और प्रकृति के चरणे था । प्राकृतिक युग में इतिहास की प्रधानता हुई । पहले युग में एक यथोक्त स्वीयता और स्थिरता थी जो मनुष्य को मनीषता से बिरह करती थी और परम्परा का अनुभव बनाती था—मनुष्य के वर्णव्य के विषय में यह बड़िया विमनुष्य बन गई और यह नृपतया को महत्त्व देने लगा । स्थायित्व और स्थिरकण से उसे बिरह होने लगी । एक नृपत कृष्टि के लिए भारतमा उनमें उड़ी—सपस्त बिरह घनी घनी उनमें अनुकूलित हो उठा । उपन्यास ही इसी नृपतया को प्रतिबुद्धि है और इसीलिए अखिरी में इसे ही 'साधन' कहा जाता है ।

युग की आत्मन्तरता और नवता के प्रयोग के सबसे पहला नाम था यह

क्या कि वहाँ कथा-कहानी के व्यक्ति को कल्पना-जगत से हटा कर बर्बाद  
 पित का प्रसूरी बनाया वहाँ उसने मानव-मन ने म्याप्त बीबी प्रकोप तथा  
 प्रेतादि के घातक-वक्र का भी उद्भव कर दिया । उसमें उत्पान और पतन  
 उत्ख समाविष्ट हुए । मानवीय दुर्बलताएँ और मानवीय सबलताएँ सभी  
 गई । पर सबसे अधिक इस प्रयोग में जो उत्तम प्रयत्न हुआ था वह सीधे  
 ज्ञानिक दुग की प्रकृति की रेत या—मानव का अनुसंधान । प्रकृति के नये  
 आविष्कारों के नये परिणाम सामने आ रहे थे । मनुष्य को भी इस वैज्ञानिक  
 रीत्याण का विषय बनाया गया जिससे नृविज्ञान मनोविज्ञान शरीर-विज्ञान  
 आदि अनेकानेक विज्ञान खड़े हुए । ये सब मनुष्य के भौतिक पक्ष के अध्ययन  
 परन्तु इस अध्ययन से मानव कुक्ष का कुक्ष रूप ग्रहण कर रहा था वह  
 अर्थ अपनी ही दृष्टि में कुक्ष और होने लगा था—और तब उसके सामाजिक  
 पक्ष पर भी अनुसंधानात्मक दृष्टि पड़ी । वैज्ञानिक और आस्थीय दृष्टि से ही  
 न खेचों का अनुसंधान किया गया । इस अनुसंधान से मानव के भौतिक एवं  
 सामाजिक तत्त्वों का जो पता चला पर स्वर्ब सजीव मानव लुप्त हो गया ।  
 इसे बड़ी आश्चर्यकता इसी मानव को समझने उसे पहिचानने उसकी शक्तियों  
 को ठीकने उसकी प्रकृति बुद्धि और कर्म के यथार्थ अनुसंधान की भी और ऐसे  
 अनुसंधान की आवश्यकता थी कि जिसमें मानव खो न जाय । यह काम  
 सम्पन्न ही कर सकता था यद्यपि उसका माध्यम मद्य था, जो अपने स्वरूप  
 पर अभिप्राय से व्यवसायारमभ तथा वैज्ञानिक प्रकृति वाला है । तब ही  
 मका आधार कथा-कहानी थी जो वैज्ञानिक अनुभव प्रतीक-योजना तथा  
 ऐश्वर्य-मेवा के अनुकूल थी । यज्ञित में जो काम बीजमणित करता है वही  
 म मानव-जगत में उपन्यास करता है ।

उपन्यास की प्रक्रिया वैज्ञानिक है अतएव पर इसमें न तो वैज्ञानिकता का  
 रोप रहता है और न उसकी या गुणता । उनके द्वारा मानव का अध्ययन  
 न मानवीय सम्बन्धों की अतिरि परित्यक्तियों की परत में से यथार्थ-भूमि  
 किया जाता है । इसी हेतु यह अत्यधिक रोचक तथा आरणा के समान  
 गवारी भी मिय हुआ है ।

उपन्यास धन निर्माण-तत्त्वों के आधार पर राज-विद्यय के नूतनों से अनुक  
 ता है । स्वभावन ही इसमें वाध्य तत्त्वों का अत्यन्त सामान्य तत्व ध्यात  
 ता है । फलत उपन्यास दम नये दुग का सबसे अधिक लभावनाओं से युक्त

रूप है—जिसमें प्राबुलिक साहित्य समुद्र हुआ घोर हो रहा<sup>१</sup> है। मानव की समस्या की घोर उत्सुक मध्य-महाकाव्य उपन्यास ने बीमबी शताब्दी तक पहुँचकर एक स्वर्ण-युग की प्रतिष्ठा की है। सुखोत्तर विरह उपन्यास की क्रमिका इसकी प्रत्यक्ष माली है। विरह-साहित्य में उपन्यास का स्वर्ण-युग उपरीषवी शताब्दी के पूर्व भाग में ही होता है। हमने कभी फर्मीनी जर्मनी धनपीकन तथा चंपकी साहित्य के बोध दिया। इन विद्या में बंगाली हिन्दी मराठी उत्कल पुत्ररानी उर्दू का भी महान समान रूप में उन्नेवनीय है।<sup>२</sup> इसी युग में उपन्यास के विरहध्यापी साहित्यिक महान की पूर्ण रूप में प्रतिष्ठा हुई। इमीतिम की वास्तर एतन का भी यही कथन है कि काल्पनिक रचनाओं का महाने अधिक महत्वपूर्ण माध्यम उपन्यास ही है।<sup>३</sup>

### उपन्यास सबसे अधिक प्रासबतों साहित्यिक-विधा

प्राबुलिक रूप में उपन्यास सब से अधिक प्रासबतों साहित्यिक स्वकम निर्र हो रहा है। जो भी प्रतिगतममन लेखक कल्पनात्मक साहित्य की घोर मुक्तता है वह धन विरवाग घोर भावनाधा को व्यक्त करन के लिये अपने धनुमन

१ डा० सत्येन्द्र, एम० ए०—साहित्य सबसे प्राबुलिक उपन्यास र्क,  
—पृष्ठ ३, ६, १२।

२ विभिन्न भाषाओं के प्रसिद्ध उपन्यासकार निम्नांकित हैं —

कनो—सुपमैव डालस्टाय दोस्तोवकी चेखव ।

ईताली—मार्गंत मूक घात्र विव रोमारोता पलावेपर बाल्झाक ।

जर्मनी—डालतयेन पावरमान ।

धनपीकन—माक ट्वेन हेनरो जेन्स, हेरियट स्तो ।

घाटेकी—डिकेन्स, हाडी, बंकरे, समुएल बटलर ।

बंगाली—बंकिम घोष ।

मराठी—हरिभारमयल घोष ।

हिन्दी—प्रबन्ध ।

उत्कल—कनीरबोहन सैतवति

पुत्ररानी—रजलताल बतलताल देवाई ।

पञ्ज—घणुम हतीव ।

3 It is the novel which is the most important vehicle of imaginative writing of our time.

को उचित रूप से काम में लाने के लिये अथवा दूसरे के अनुभव को प्रभावपूर्ण रूप में प्रस्तुत करने के लिये इतने स्वाभाविक तथा अनिवार्य रूप से उपन्यास रचना की ओर उन्मुख होता है कि जिस स्वाभाविकता एवं अनिवार्यता से वह साँस लेता है। किसी भी देश के निवासियों की मूलभावना जिसकी गटक छोड़ कविता में नहीं आ पाती उससे कहीं अधिक उसके उपन्यासों में उद्घाटित होये हैं<sup>1</sup>। जैसे-जैसे समय बदलता है लोगों की प्रवृत्तियाँ बदलती हैं और एक समय में भी अचानक-भेद से जैसे लोगों की रुचि का परिवर्तन और परिष्कार होता रहता है उसी प्रकार एक समय की रचनाएँ अथवा एक ही लेखक की निम्न निम्न कर्षों के लिए लिखी गई रचनाएँ भी बदलती रहती हैं। जो साहित्यिक विचारों आधुनिक-युग से प्रथम सर्व-प्रिय की वे धार के संसार में सर्व-प्रिय न रह सकीं। फलतः जो कल तक उत्तम कोटि का अन्तिम प्रयास-सा (विधा विधेय की चरम सिद्ध भासा रूप) माना जाता था आज उसके आगे विज्ञान मनोविज्ञान तथा ज्ञान के अन्य धर्मों को समेट कर अत्यन्त कठोर हुआ अतः जीवन की पूर्णता को निष्कट से दिखाता हुआ उपन्यास सर्व-प्रिय एवं सबसे अधिक प्राणवान् साहित्यिक-विधा का सम्मान प्राप्त कर रहा है संसार में बन्धु बन्धन क्रिदोराबस्या तस्मात् अयेइयत् एवं बुद्धाबस्या उत्पान-मत्त एवं विषाद आदि के रूप में जीवन की विविधता के दर्शन उपलब्ध होते हैं। बहुर्वी जीवन की प्रमुख घटनाएँ एवं वृत्तियाँ अपने महत्त्व के अनुसार इतिहास के पृष्ठों पर अंकित होती रहनी हैं। साधारणतः सामान्य-जीवन तब पर निम्न-निम्न वेग-रूपाओं के लिये बड़ी रूप की पढ़कन बड़ी मुकुमार माननाएँ बही

- 1 "The novel to-day is the most vigorous of all literary forms. It obviously takes precedence over all others.—The novel is the form in which our culture has most often sought expression, it is the only form that seems able to express our experience and there is nowhere any sign that its power or will is slackening. In no country whose culture seeks expression in literature is there any sign of decadence. Every where to-day the novel comes so close to being the whole imaginative literature that distinction in any other form is so frequent as to cause surprise.

सामाजिक विन्दुस्था बही नारीत्व की पूजा रमणीत्व का विस्तार और उन सबके पीछे सबने दूर मुग़ुहस में धारम्भ होकर बह्यज्जान तक की ऊँचाई पर पहुँचा हुआ धाम्प्यात्म ब्यापकसर परिलक्षित होगा रहता है। जीवन की गति मयता का यह विस्तार अणु-परमाणु में सर्वत्र किसी न किसी रूप में व्याप्त अवस्थ है। पर इतिहास इस विन्दुस्थ ब्यापार को अपनी प्रथम में बाँधने का प्रयत्न नहीं करता। वह तो केवल जीवन की महत्वपूर्ण कल्पनाओं का ही आकर्मन करता है।

उपस्थास जीवन की उपासना है। हममें हम जीवन के मातृ तादात्म्य स्थापित करते हैं। जीवन का सम्पूर्ण रूप अपनी वासना की वास के बिना इसमें पूजा-स्नान की भी पवित्रता रहता है। जीवन न जीव और परमेश्वर को ही तो होने हैं, पर उपस्थास में जीवन-जीव और जीवनेश्वर परमात्मा तीनों ही देव काल (श्रीगङ्गादेवता) की मातृ में रहते हैं। उपस्थासकार कल्पना के राज्य का स्रष्टा होता है। उसकी लेखनी से प्रसूत जीवन-तथ्य अनुभूति की मोह म पसते हैं। त्रिष प्रकार उपानमा का क्रम हमें भवमान् तक पहुँचाने का साधन सिद्ध हो सकता है, हमें 'ब्रह्म की छाँह में बड़े हुए भवमान् के रूप की अक्षरी रिखा सकता है उसी प्रकार उपस्थास हमें जीवन तक पहुँचाता है और मानव के स्वल्प के मौल्य का रक्षण करता है।

जो प्रत्यक्ष है बही तो जीवन है—और या अप्रत्यक्ष है वह भी जीवन का अमित्र घब है—एक के लिये जीवन शीघ्र है और दूसरे के लिये रहस्य का मन्थार। सत्य शोनों में है। स्वयं नग्य कितन सापेक्षिक प्रबों में प्रबुद्ध होता है। उपस्थास केवल जीवन के प्रत्यक्ष को ही लेकर नहीं चलता पर जो रिखाई भी नहीं बड़ता उसकी जी पत्नी-शायरियों और स्वगत तथा अरिष-विशेष के मनोबैज्ञानिक प्रप्यदन के रूप में बाँधता हुआ-सा चलता है। यदि हम बिपट्ट की प्रीजा से सही के हावों पर रख हुए एक समय के निकले हुए सब उपस्थासों को एक-मात्र पड़ लकें तो हम जीवन के सबाँनीयता के अमित्रीय का परिचय तुल्य या ज्ञान पर प्रायः हम पड़ दिने-दिनन जयस को भूम पाते हैं और किसी घन मुग्ध को ही अंयस का प्रतिनिधि नहीं अंयस ही मान बैठते हैं।

जीवन की व्यर्थता के प्रति अक्षिक ईशव्य समझान में जाकर होता है। तब हम किसी न किसी को छोड़कर अपनी सुत केतना को अकर्मरने



का प्रबन्धन पाते हैं। उपन्यास में हमारी सुप्त चेतना झकझोरें जाती है पर किसी को सोकर नहीं। कल्पना में वास्तविकता को पुट मिला कर पाठक को कुछ समय के लिये घान्तरिक रूप से सजग कर जाती है और वह संसार से घनज्ञान, पर घन्तर में सक्रिय भासमान होते हुए कुछ आतम्य तथ्यों को हृदयंगम करने का प्रबन्धन पाता है। उपन्यास समाप्त करके मानों वह चेतना के आवरण से बाहर हो जाता है। पर जब तक उपन्यास के भीतर रहता है तो वह—“कूर्मोदयाना मीवसर्बधः की भक्ति घन्तमुंशी वृत्ति से जीवन व्यापार को उगी में बैठ कर घषिक निवृत्त से बेसता है, अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व के सहारे समझता है और अपने सीमित साधनों के प्रयास से सुधारने की चेष्टा भी करता है। यह सब कुछ करते हुए भी वह अपना कुछ सोता नहीं। पर यदि उपन्यास किसी को घराब के लगे की भाँति केवल अपने में गुत्ता भर सेता है—और घन्तिम पृष्ठ तक पहुँचते-पहुँचते घतरे लगे की-सी लुभारी का-सा अनुभव कराता है तो वह पाठक के घमूख ममम और बन के घपव्यय का कारण बनता है। तथ्य ता यह है कि एक सफल उपन्यास जीवन का भाष्य रूप होता है।

स्वयं मानव होने के लाले हम मानव स्वभाव के घध्मयन में बिरोध रचि लाले हैं। पर साधारण जीवन-क्रम में बहुत कम लोगों के लाले हमारा घन्तरंघ ररिचय होता है—घषवा उनके साधारण की पूर्ण रूप से समझने की बात तो बड़ी दूर रहीं। बस्तुतः हम स्वयं अपने की घषार्थ रूप में बिरसे ही घबसरार समझ पाते हैं। कथा साहित्य हमें यह प्रबन्धन देता है कि जितना हम वास्तविक जीवन से घग्य मानव प्राणियों के बिषय में नहीं जान पाते उनसे लही घषिक घन्तरयता के लाले हम मानव प्राणियों में प्रतिनिधि रूपों के ररिचय प्राप्त करते हैं और यह ररिचय घान्धीयता का बीसा ही पूर्ण ररिचय होता है बीसा कि बीयलिक-जीवन में घान वाले घारमीय जनों ल। उपन्यास मानव-मन के घलारण्य में प्रवेश करने की लालमा का र्ण करने में सहायक होता है। इन घर्मंग में हमें जार्ज बर्नार्डिंग के एक लाल का स्मरण हो रहा है। सन् १८८० के घाह-घाम घारघाल्य रैषों में पाठक की हमोस्मृती प्रवृत्तियाँ बिरोध सज्ज हो उठी थी। उनल जीवन के बकासेम्मुख बर्षन का प्रायः घभाव हो गया बा। पर साहित्य क्षेत्र में लाल (१८२८-१९०१) के प्रवेश में नाट्य साहित्य की पत्रन के बर्ण-बर्ण

में दिख से बचा लिया। उनमें उनमें जीवन-सुखारक्षी शक्ति का समावेश किया। उसके इस दृष्टिकोण की प्रशंसा करने हुए बर्नार्ड्स ने कहा था—कि 'इसका न ग्राहकों द्वारा जीवन पर पड़ने वाला प्रभाव समझने का मैं प्रयास हुआ है'। उपन्यास रचना-विधान के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी ही बातें हैं। प्राथमिक उपन्यास रोमांच के क्षेत्र में परिचरित करने लगे प्रतीति-विधान के विधान में ही अपना दृष्टिकोण व्यक्त करे। एक कहानी मात्र उपस्थित करना उनका उद्देश्य था। पर नव-जाति-विधान न उपन्यास द्वारा प्रेरणा-प्रदायक जीवन को व्याख्या प्रस्तुत की।

साहित्यिक काल के प्रथम श्रेणी के प्रतीति-विधान में दिखी जात वाली एतिहासिक बोधने ने उपन्यास के उद्देश्य को प्रकट करते हुए कहा है—

“यह सामान्यतः सत्य का अकारणिक बलम्ब होता है लेकिन कहानी का कथानक” अपने में ही अकारणिक बलम्ब है। वे किसी भी काल-सुखमय रूप की बात नहीं कर सकते। जिस क्षण में उसकी प्रतिबन्धना प्रयत्न एक मात्र सामान्यता परिलक्षित होना लगती है, उसी क्षण में उसे 'संसार के सारे काल के लिये विद्यमान हो जाना पड़ता है। "सामान्यतः सत्य का उद्देश्य यह है कि हमका कोई भी वर्तमान चरित्र नहीं हो सकता। कथानक इतिहास के समान अनुभव की दृष्टि को भी अतिरिक्त करता है। जैसा एतिहासिक बोधने में कहा है—“कथानक साधा की लिया और लिया की साधा है।” उपन्यासकार हमारे सामने बटनाओं का अनुवाद प्रस्तुत करता है स्वयं प्रतीति की नहीं और सत्य के धारण इस अनुवाद का प्रस्तुत करने समय वह हमें उसकी अनुभूति भी प्रकट करता है। उपन्यास के रूप विधान में ही यह आवश्यकता निहित है कि बाह्य जगत के सामने एक विरहास पोष्य वर्तमान प्रस्तुत कर दिया जाय और साथ ही यह भी कि हममें पड़ने वाली प्रतिबन्धित में कुछ ऐसा धर्म अथवा जाय जो बाह्य जगत में नहीं है।<sup>१</sup> मुझे मैंकनीस ने कहना की परिभाषा करने का किया है कि यह जाय के प्रति अनुभव की प्रतिबन्धित को निपट-बुझ करने का बहुत बारीकी में काम करना वाला दण्ड है। उपन्यास भी काल की एक शक्ति है। यह कथानक एक चरित्र के काल में उन शक्तियों की प्रतिबन्धित है जो जीवन-साधारण के सम्बन्ध में उपन्यासकार की जाय रूप होने हैं।<sup>२</sup> एक

1 WALTER ALLEN *Reading a Novel* P 13-14

२ सातोबना (उपन्यास शैली) पृ० २३२

प्रकृता उपन्यास उपन्यासकार की अपनी स्वयं की सोच का दिव्य प्रकाशित रूप होता है ।<sup>१</sup>

### उपन्यास जीवन के अनुभव का नवनीत

उपन्यास जीवन के अनुभव का नवनीत प्रस्तुत करता है। प्रसिद्ध विद्वान बर्नार्ड डे वोटो के शब्दों में उपन्यास मानव के अनुभव की परिधि को बढ़ाता है। वह बाहु के क्षेत्र की तरह जीवन के परत पर परत उभेड़ कर हमारे सामने रखता है ।<sup>२</sup> यथार्थ जीवन की प्रकृता उपन्यास में चित्रित जीवन कही प्रसिद्ध मुस्पट एवं प्रमाबोत्पादक होता है ।

1 A good novel is always the revelation of the novelist's own self discovery — WALTER ALLEN *Reading a Novel* P 21-22

2 "Novels increase the circumference of our experience. They telescope life times into reading time and so open more lives to us than the span of our days...Part of what we know about man and his estate come to us through the gate that fiction opens. For a moment there has been a heightening the flame has burned hotter and given more light. Whether it shines on life's horror its mediocrity or its fortitude, something has been added to us. We have learned much when we have looked at a page and found people caught up in circumstance

"The magic operation goes further. Not only psychiatry strips away successive layers. To the shock of recognising a real thing and finding meaning in it arts adds another shock for it brings us to the mist that lies beyond. If the substance of fiction is so refined that we can coast the whole shoreline of life in a few hours, and explore the wildness inland from the coast, it leads on to strangeness. If the miniatures of fiction concentrate what is to be learned in the land distant to Henry Thoreau, it concentrates the mystery all travellers came to know...levels of significance lie in strata, one below another. Life has not only been revealed it has been criticised and appraised under a strong light.

—BERNARD DE VOTO. *The World of Fiction* P 150-151

उपन्यास मस्तिष्क क्षेत्र में सेते हुए अनुभव क्षणों से समय पर विकसित होने वाला जीवन-विस्तार का काम होता है। हम देखते हैं कि कुछ चीजें उपन्यास ही मस्तिष्क में घर कर लेती हैं। उनकी परत की परत संतो रसी रहती है। और जब फिर कल्पना के प्रवाह में पुर घाता है तब भावना का ऐसा धपने को पूरा बुझा लेता है और फिर पुर का पानी बटव ही मस्तिष्क की उर्बाय शक्ति भी बड़ जाती है। पुरान पुष्ट जीव उपयुक्त क्षेत्र पाकर जीवन के परिचय में जीन कर फैल जाते हैं। कम एक पूरा उपन्यास बन जाता है।

उपन्यास अपूर्ण को पूर्णता देने का प्रयास है। उपन्यास का अपूर्ण भी असंतुष्टता को पूर्णता का ही मायदान देता है। उपन्यास जीवन क क्लेशपन को भरता है। वह धरीत क गड्डों को भी पाटता है। उपन्यास ईश्वर को सृष्टि के समकक्ष प्रतिभा की सम्मोहनात्मक सृष्टि होनी है।

उपन्यास सामकता का अतिरिक्त बर है। बा मनुष्य के सिय करलीय है वही उपन्यास में बतलाया जाता है। करलीय एव अकरलीय बानों ही के उल्लेख क हाथ जा मनुष्य का धरीत है वह उपन्यास में संवार जाता है, भविष्य का उसमें संकेत होता है और वर्तमान तो मानो उसक पृष्ठों पर उपाही सा रहता है।

उपन्यास किस प्रकार जीवन की गहराई का चारों ओर से समेट कर घामे बढ़ता है इसका प्रामास हमें प्रान्सिड बेनट हाथ की गई एच० जो बस्य क "टेलोसिगी" नामक रचना की प्रशामा में मिलता है। वह उपन्यास का एक पूरे पुन और समाज का शार्शनिक चित्र कहता है। उन चित्र की विरोधता हापी है उसके रंमों की तीव्र गहराई और अकक तथा मूस पदायों स समानता।<sup>१</sup> उपन्यास में जीवन की विविधता तथा उनका समन्वय दाना ही रहत है। किसी भी उपन्यासकार ने उपन्यास के दौरान की इतनी आरदार हिमायत नहीं की है जितना एच० जी० बेन्स न १९१८ ई में "दि कन्टेम्पाररी नाबेल" नामक लेख में की थी। वह उपन्यास का सामाजिक विचारों का मध्यस्थ धारमपरी धरा का साधन रीतिरों के मदन का कार्यालय नियमा संस्थापो सामाजिक

1 "A philosophical picture of a whole epoch and society brilliant and honest" (Arnold Bennett)

—Lowett and Hoeh *The History of Novel in England*, P 399

कर्मों एवं विचारों की प्रामोदना का स्वल्प मात्रता है। विज्ञान सेलक उपन्यास का श्रेष्ठ बंध से प्रथम किंव हुए पापों की स्वीकृति ब्रह्मण के रूप में ही नहीं शक्ति ज्ञान का भीमलेश और प्रथम परिष्कारवाही धात्मनिष्ठन एवं धात्मनिष्ठन्य में हृता भावि प्रुणों से शुक भी मात्रता है।<sup>1</sup>

### उपन्यास मन को रमाने का विराम-स्वप्न

उपन्यास में हम जीवन पढ़ते हैं और उसी प्रकार वास्तविक जीवन में हम सखा उपन्यास पढ़ सकते हैं। इस सख उपन्यास के पात्र अपनी अपनी प्राकृति श्रेष्ठियों कृषिर्वा एवं प्रकट भावनाओं के द्वारा अपने अन्तर तक का परिचय देते हैं जिनमें प्रवेश पाता स्वयं सेलक की भावनाओं की तीव्रता पर निर्भर रहता है। एक प्रवेश या जाम तो 'ऐमिस इन बंडरलैण्ड'<sup>2</sup> की भाँति ऐसे विशिष्ट भावना-जगत में स्थिति हो जाती है कि मिथने वासा निहास हो जाता है और पाठक को तो परिवर्तों के मोक म पहुँचने का-सा अनुभव हो जाता है।

उपन्यास में प्रवेश पाता होता है। वहाँ हम अपने कौतूहल को बद्ध हुआ पाते हैं। आश्चर्य धान्द और तुष्टि की शिबेणी में मन प्रबयाहन करता है। जीवन के पथ पर मिले हुए मित्रों की भाँति हम उपन्यास के बीच में भी

1 "This capacity for variety and synthesis commended the novel to Wells as a vehicle for his purpose. No novelist has ever made larger claims for the novel form. In an article on the contemporary Novel in 1914 he sets them forth 'You see the scope of the claims I am making for the novel it is to be the social mediator the vehicle of understanding, the instrument of self-examination the parade of morals and exchange of manners, the factory of customs, the criticism of laws and institutions and of social dogmas and ideas. It is to be home-confessional the initiator of knowledge the seed of fruitful self-questioning... the novelist is going to be the most potent of artists because he is going to present conduct, devise beautiful conduct, discuss point out, plead and display

*Ibid* P 400

1 Alice in Wonderland—by Lewis Carroll published in 1865

बुद्ध परिचित पाव पाते हैं जिसमें से कुछ धरम जीवन-साथी बन जाते हैं। जीवन में हम अथवा सब स्वार्थों में करते हैं पर रहते हैं एक ही स्थान पर। इस प्रकार उन्म्याम में भी मन रमान का विधान स्थप मिल जाता है।

उन्म्याम होकर ही जीवन का पकड़ता है। बन् 'मिलनटायाण' का मति हमारे सामने आता है। ऐसी स्थिति में उन्म्याम मन जीवन का देखन साथी साथ बन जाता है और उसका समय ही बहकन मुक्त तथा मुक्त की समता प्राप्त हो जाती है।

परिचय का साहित्य जीवन की इस माया का नकर इस जीवन क परिणाम में दर्शन बनाता है। पूर का साहित्य जीवन क पहले धोर बाध की मन्दी सरणि का नकर बहकन जीवन के परिमाण एवं परमम क बरम पर साहित्य की नीच स्थिति कक बनना दर्शन बनाता है। राम हमारी उदात्त मानता के उदकन मन के प्रतीक हैं धन के मुक्त हैं धारकन हैं। वे उन जीवन को धारकन की परिधि म रमने की समता रखते हैं। उन्म्याम के बच-बिन क जगत में हमी प्रकार साधारण के राम की प्रविष्टा का गई है। उन्म्याम के साधारण मानकन में मन-मन का रमान की वस्तु सफलता प्राप्त हुई है।

मातवीय कृति के माय ह माय उन्म्याम की भी मृति है। मनुष्य मन का साथी है और उन्म्याम मन का बाध। मनुष्य धरम मन म ही श्रुत का बाध कर सकता है और मन उन्म्याम म श्रुत का बाधता है। मनुष्य का मन मनुष्य एक विक्रित हुआ रहता है और मन की मीच उन्म्याम म साथी गनीने की बरमनी रहता है। मनुष्य धरम मन का इष्टकन है और उन्म्याम मनुष्य के मन का इष्टकन। मन की परिवर्तनशीलता के माय ही माय उन्म्याम का भी मन परिवर्तित होता रहता है। उन्म्याम बाहर का भी स्वयं बाधक रिकाना है और धरम का धनितय भी प्रस्तुत करता है। धरम धनितय प्रस्तुत करना तो बडा कठिन होता है। धरम बाहर क स्वयं को नकर ही धरम का विरम फन होता है। धरम का धनितय प्रस्तुत करन बाधा उन्म्यामका मन्वीकनित होन के माय ही माय कवि भी होता है। धन उमम पाठक क मन का पकन की धरमन धरमना होती है।

उन्म्याम के जग में हम उन मन्दी पुस्तका को ले सकते हैं जिसमें मानव धरमी बन्मता को धरम पर धरम करवा कर जिस-जिस दिशा में धरमी हो रहती समय क कर्तव्य में रहता बरमना है। धरमी-धरमी बह समय का भी धर

कर जाता है और तब उसकी कहानी धनन्त की कहानी बन जाती है। पद्य और पद्य उसकी सीमा नहीं बनाता—हाँ यह ध्येय है कि समय के घट्टर पर पद्य के प्रचलित रूप के साहित्य में रुढ़ि की सीमा के अन्तर्गत या जाने से ध्येयन्त सरल पद्य मात्र ही उपन्यास का माध्यम रह गया।

प्रारंभ में उपन्यास में विषय की भी कुछ सीमा नहीं थी। पर धब या यथार्थ कहा जाता है, प्रायः वही उपन्यास का विषय बनता है। उपन्यास धब मानव का चिन्तन क्षेत्र बन गया है। पहले धीर धब भी इसके रूप में उपन्यास धापस की बाधनी की रूप का मिलित रूप मात्र होता है। पर वहाँ उपन्यास का साहित्यिक का बाना धारण कर लेता है वहाँ बहु उपन्यास को मानवता के चिन्तन स्वर में मिसा देता है। उपन्यास में मानव मानो धपनी समस्याओं को सबके समझ रखता है। उसकी समस्या संबंधित बर्ष की तो विचारणीय समस्या होती ही है, पर निरपेक्ष पाठक के लिये बहु एक रोचक साधन्य होने के साथ-साथ कल्पना के परदे पर रंगीनी लिये हुए पाठक का पूरा चलता-फिरता सबाक चित्र बन जाता है।

उपन्यास हमारे लिये कैमरा स्कॉप का काम करता है। उसके माध्यम से हमें जीवन में देखी हुई वस्तुओं के दूसरे रूप भी सीख जाते हैं। जीवन की नहराई का अनुमान उपन्यास में मिलता है और यदि हमारी कल्पना की मुर्द ठीक हुई तो उपन्यास बासता हुआ चिन्ता हो जाता है जो वास्तविक न होते हुए भी वास्तविकता का धाम कराता है। पर यह बुद्धि रखनी धावश्यक है कि हम काम के बाव चिन्ता देखें धबवा चिन्ता देख कर काम में कुट जायें।

### उपन्यास समय के इतिहास का साहित्यिक संस्करण

उपन्यास धटनाओं का पद्य घोट होता है। समय कातावरण की कबिता होती है। कल्पना उपन्यास में सम्भावनाधा के गान धाती हुई यथार्थ का रूप संबाखी है। मनोचिन्तन की प्रयोगसासा के रूप में उपन्यास का कनेवर विचारों का नवीनता के बस्त्रों में परित्रन रहता है।

उपन्यास समय के इतिहास का साहित्यिक संस्करण है। बहु हमें धपने परिचित एवं अनुभूत बातावरण के बीच से न बाकर उन सम्भावनाधों के छोरों पर छोड़ देता है जो वास्तविक जीवन में पटित न होने हुए भी तप्य का सत्य

1 "The novel is the most important gift of bourgeois, or capitalist, civilization to the world's imaginative culture. The novel in its great adventure, its discovery of man."

बन जात है। उपन्यास वास्तव के विस्तार के काव्य का संक्षिप्त और संभावनाओं के महाकाव्य का संकेत रूप होता है। अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उपन्यास ही आज़ की सबसे अधिक प्राग्बली साहित्यिक विधा है। किसी भी साहित्य में कितना जीवन है यह उसके द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली समस्याओं पर अवलम्बित रहता है<sup>१</sup>। आज़ के साहित्य में उपन्यास ही बाह-विबाद के मियं तथा परस्पर विरोधी शक्तों के मियं सबसे अधिक समस्याएँ प्रस्तुत करता है।



1 "That in our days a literature is alive is shown by its submitting problems to debate." (G. BRANDER)  
 —H. B. RUTH (Guiding quotation on the front page of) *An Enquiry into Present Difficulties and Future Prospects*



# उपन्यास शब्द का इतिहास

## विकास-क्रम एवं परिभाषा

उपन्यास के प्रारंभिक पक्षों का विवेचन करते समय यह प्रश्न सहाज ही उठता है कि उपन्यास कब मही था ? जब से मनुष्य ने एक दूसरे के पास बैठना सीखा तभी से उपन्यास का जन्म हुआ । जब मानव के ज्ञान की सहायिता प्रकृति के कौमार्य के पार्श्व में डालने समी तब उपन्यास की चेतना ने धारें छोसी थी जब मानव समाज ने अपनी संघबाधस्था को पार किया था तभी उत्सुकता के साथ उपन्यास की सगाई हुई थी और जब मनुष्य के व्यवसाय ने धँवड़ाई सी थी तभी उपन्यास कृति का गठनव्यत जनरल के साथ हुआ था । जन-रक्षि का सुहाय घपने में प्रलय है । अत उपन्यास की कृति भी धमर है ।

उपन्यास की कृति का आरम्भ मनुष्य की बुतूहस-कृति क धारम के साथ होता है । उपन्यास का स्वरूप भाषा क गद्य के स्वरूप की स्थिरता के साथ होता है । संस्कृत में हम इसका प्रमाण 'कादम्बरी और बघकुमारचरित' के प्रणयन म पाते हैं । फन्व स्पेन क्स इटली तथा अंग्रजी साहित्य के 'रोमांत और नावेसा' इसी गद्य पर विजय के शारी है । धाधुनिक साहित्य में जन साधारण के महत्त्व का भीगणोद्य धाधुनिक उपन्यास की प्राण प्रतिष्ठ करता है । गद्य के स्वरूप क स्थिर होते ही हिन्दी उपन्यासकार घपनी प्रारंभिक व्यवस्था में साधारण बुतूहस कृति और मन की मीत्र के बीच में पनपा (इथा—'रानी बेगमी की कहानी') । उस समय धनुकरण की कृति प्रमाण थी । देवकीनन्दन ने उतू-धरणी रुधारीमान गोस्वामी ने बंयला और भी निवासबाध ने अंग्रजी की धौपन्यासिक कृतियां के धनुकरण द्वारा हिन्दी में उपन्यास साहित्य सिक्ता प्रारम्भ किया । धाधुनिक काल में हिन्दी-उपन्यास ने धनुकरण को छोड़ कर भारतीयता की साधार-भूमि में स्वानुभूति का बीजारोपण किया । प्रेमचन्द के उपन्यासों में स्वदेश के प्रति प्रयास मयाव एव स्वतंत्र चिन्तन की जायस्क भावना प्रतिपद परिलसित हाठी है । वर्तमान काल में हिन्दी उपन्यास साहित्य पर्वत विकसित व्यवस्था में है । यह सब विरव

साहित्य के माप कर्म के कच्चा निरा कर साहित्यिक विद्याना एक अन्य विधियों की महत्त्वता के साथे बन रहा है ।

उपन्यास का सामान्य साधारण कर्ते माने जाने लगेका के द्वारा साधारण पाठकों के लिए हुआ था । लोगों का कहनी के सामान्य के सम्य कता और श्रेष्ठ-कर्म में जैसे कहनों की शान एक व्यवहार की बातें बताई गयी है । अनुभव मन का सामान्य कथना जाता है—इस प्रकार पाठकों को जीवन का पाठ पढ़ना और इस प्रकार कर्तनी हृदि का प्राथमिक बना कर बन प्राप्त करना उपन्यास लेखक का मुख्य धर्म है । जैसी और मन्त्रा का मंत्रालया तो बाद की बातें हैं । जो कथे उपन्यास की बातों में जीवन का महत्त्व नहीं समझ सकत थे उनको जनसामान्य के जीवन के रहस्योद्घाटन तक ल जाता भी इन लोगों का काम रहा है ।

साहित्य में जब इस प्रकारकी सामान्य को धरनाया अब इसके प्रभाव के कारण धरने विस्तार में इसको मददा एक हृदयियों को मणि इसे इसके सब दुःख-सोचों के अहित कहुँ किया । पर उपन्यास को कुछ नाप कर्तना बनना चाहते हैं । यह कार्य बीना ही है बीना 'हरिजन' का उसका काम हुआ कर मठा बनता । ही यदि उपन्यास में स्वयं कुछ है तो वह करने धार धरना स्वयं पाठक की शक्ति से तथा पूर्व-कथे से कुछ धरनीबना के मन में साहित्य के साथ में स्थिर कर लेता । पर उपन्यास का धरना प्राथमिक करनी नहीं छोड़ता है । यदि ऐसा होगा तो उपन्यास ऐसा ही बन कर रहे धरना बीना कि एक उच्च शक्ति देना बनने की बाह में मनु हृदय में लेकर हरिजन का

1 Quoting from Robert Louis Stevenson's letter to Edmond Gosse Walter Allen writes—"I do write for money a nobler duty ————WALTER ALLEN *Reading a Novel* P 7

"We know too, what the novelist sets out to do when he writes a novel. — He is making, it might be said, a working model of life as he sees and feels it, his conclusions about it being expressed in the characters he invents, the situations in which he places them, and in the very words he chooses for those purposes."

काम जोड़े समय के लिये करवा हुआ नेता का स्वामि-सा बन कर रह जाता है। हाँ, यदि किसी स्वान विधेय के जीवन को समग्रतः पकड़ने वाला कोई कमालक प्रतिभा-सम्पन्न ध्यक्ति के द्वारा अपने स्वामाधिक रूप में प्रस्तुत किया जायगा तो भाषा-परम्परा-चरित्र एवं वर्णों की दृष्टि से विमुक्त स्थानीय होते हुए भी वह समाज के अलक्ष्य-जीवन का अपरिहार्य अंग बन कर जीवन की महत्तम उपसम्पत्तियों का-सा सम्मान पायगा। उदाहरणार्थ फणीन्द्रनाथ रेणु की 'पत्नी परिक्रमा' ऐसी ही कृति है। इसमें नेत्रक उपन्यासत्व की पूरी रखा करते हुए जो कुछ कहना चाहता है वह सभी कुछ कह गया है।

पुत्र अपने शैशवकाल में माता-पिता के आश्रित होता है। उस पर एक-मात्र उसके माता-पिता का ही अधिकार होता है। पर बुबाबसा धले-धाले उसकी जीवन-परिधि का विस्तार बढ़ जाता है और कोई बिरसा ही 'बबलुमारा' रूप पुत्र अपने माता-पिता का ही होकर रहता है। साधारणतः वह प्रायः समस्त-अपेक्ष अपनी प्राथमिक प्रिया-प्रियी भयवा प्रास-प्रिया पत्नी का हो जाता है। बुबाकाश में उसकी अपनी स्वतंत्र सत्ता ही जाती है और उसके परिवार का विस्तार होने लगता है। इसी प्रकार अतीत समय-काल से वर्तमान का जनक है। जो अतीत में होता है वही सामयिक परिस्थितियों के मार्ग में पोषित होकर वर्तमान के रूप में जन्म लेता है। साहित्य का म भी यही वर्तमान का उपन्यास है। यह हिन्दी में अपनी वास्तविकता में है पर बाहर से इस पर बहो के काय-कर्ताप का प्रभाव पड़ा है। शैशवावस्था में अनुकरण की प्रकृति क्रमिक-विधास में सहायक होती है। अपास-वहूँ एवं अर्ध-जी की रचनाओं में हिन्दी उपन्यास को असुली पकड़ कर घासे बढ़ाया। पर अब तो वह वास्तविकता को पार कर चुका है। और उस पर माता-पिता के प्रभाव के समान संस्कृति एवं हिन्दुत्व के प्रभाव के सखण तो ही ही, पर साब ही उभे जमाने की हवा सम रही है। मात्र के निघोर के जमाने वह बच्ची (7) उमर में ही जीवन-निर्माण के रहस्यों में अवनत होने लगा है। उसने अघकचरे रूप में ही जीवनवाद का प्रवेश हो गया है। प्रारम्भ में तो किसी की भी उमसी पकड़ कर चलना ठीक पर धीरे-धीरे होने पर भी धीरे धीरे कर किसी के पीछे चलना अधिक ही बड़ा आयगा। इस विचार से हिन्दी उपन्यासों की प्रकृति विगत दो दशकों में कुछ सन्तोषजनक नहीं रही। बाहर से प्रभाव प्रभाव इन्ने बिदेसी बना है तो वह

टीक नहीं। हाँ बाह्य प्रभाव के प्रोत्साहक रूप भी हाथ हैं। यदि बाह्य प्रभाव हम में हमारा व्यक्तित्व मागे बढ़ावे-उठे पुष्ट करने में हमारी सहायता करें तो वह उचित ही नहीं स्नाय्य भी है। उपन्यासों ने कुछ फ्रेंच कृतियों ने घोर घनेक प्रोत्साही भाषा के उपन्यासों ने हिन्दी उपन्यास के लिये 'मार्ग' प्रस्तुत किये हैं। हमारे करछीय कर्म को स्पष्ट किया है। बगधा भाषा की उत्पत्ता ने हम में उन्माह का सञ्चार किया है और यह उन्माह उपन्यास क्षेत्र में प्रोत्साहक महत्त्वपूर्ण मन्त्रावापों की सृष्टि करने में मर्मर्ष होगा ऐसा हमारा विश्वास है।

हमारा जीवन घाम बन्ता है। कुछ तो बाहर से घाकर पड़ने वाले प्रभावों को घलमसाद करने से घोर कुछ घपने में ही उठ हुए विचारों को बाहर से कार्य का रूप देने में। साहित्य के प्रकार भी हमी भाति कुछ तो पूर्वापर सम्बन्ध घषवा घषानुपति के अनुसार घाय बढ़ते हैं घषवा परिवर्तित होने उठे हैं घोर कुछ कृतियों में घषवा सैकक में बाहर में घाकर पड़ने वाले प्रभावों से पोषित एवं पस्ववित होते हैं। घान्तरिक प्रेरणा एवं बिस्वपयुत को स्वाभाविक रूप से विकारत में सहायक होत हैं पर बाहर से घाकर पड़ने वाले प्रभाव सहायक भी हा सक्य हैं घोर बाधक भी। जब बाहरी प्रभाव कर्तव्य का ढँचा घार्स हमारे घामन रखते हैं तो वह नये उठे हुए साहित्य के प्रकार को बल देते हैं, उमे ढँचा उठाने हैं। घैसा कि प्रेमचन्द के पहत बयता घषवी फ्रेंच तथा कमी उपन्यासों के प्रभाव द्वारा हिन्दी उपन्यास सप्तसठापूर्वक उभति पय पर घघर हो सका। पर अब बाहरी प्रभाव घनिविध भाव-भूमि पर उठ कर घपने घर्से स्वीकृत घषवा प्राय घाम्बोहत रूप में घम्य देतोय घषवा घन्य स्वा नीय कलाकारों को प्रभावित करते वा उपहम करते हैं। इन बाह्य प्रभावों को

- 1 Russian Novels—Tolstoy—War and Peace (Anna Karenina) Dostoevsky—Crime and Punishment—Gorky 'Mother'
- 2 French Novels—Madame Bovary 'Les Miserables (Victor Hugo) (Flaubert) Alexander Dumas 'Count of Montecristo Romain Rolland—Jean Cristophe
- 3 English Novels—Dickens—'David Copperfield Thackeray 'Vanity Fair', Hardy 'Tess of the d Urbervilles James Joyce,—'Ulysses

ग्रहण करने वाला व्यक्ति अपने को मनु मुसलमान, की सी स्थिति में पाता है। वह न अपनी भरती का पूत रह पाता है और न बाहर ही पूर्ण रूप में किसी का बन कर रह सकता है। 'माकर्सबाब' 'योनबाब' आदि के सिद्धान्तों की प्रारम्भिक कल्पना भी उनका मन-माने ढंग से प्रयोग करने वाले मनीष उपन्यास लेखकों की कुछ ऐसी ही स्थिति है। इसाचन्द जोशी जेनेरनाथ धरु' यक्षपास और किसी धर्म तक जैनेन्द्र तथा 'धर्मय' प्राय इसी कोटि के लेखकों में आते हैं। बाह्य प्रभाव जीवन प्रवृत्ति साहित्य के लिए मनीष अप्राप्त ही नहीं होता है। यदि वह प्रभाव सत् के प्रति प्रेरणा प्रदान करता है प्रवृत्ति सत् का पापण करता है तो वह सर्वतोभावेन इसाच्य है बनेच्य है। प्रेमचन्द भगवती-चरण वर्मा मुन्दावनलाल वर्मा ज्ञाना मित्रा 'कौशिक' आदि में भी पारंपरिक उपन्यास साहित्य एवं भाव-वाचनों को कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में एक प्रकार से ग्रहण प्रवृत्ति किया है। पर वह ग्रहण उनकी भावोक्तता के विरुद्ध नहीं भी नहीं जाता है। एक प्रकार से इन लेखकों ने प्रत्येक बाह्य वस्तु का भारतीयकरण कर लिया है। उनकी कोई भी विचारधारा भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों के प्रतिकूल नहीं जाती है।

उपन्यास धार्मिकरूप से सम्पन्न नहीं हो गया। इसकी भी अपनी एक परम्परा है जिसका प्रारम्भ एक बड़ी नदी के उद्गम के समान नहीं मनीष विभिन्न धाराओं के रूप में प्राचीन साहित्य के बीच में छिदा है। पर संस्कृत पामी श्री श्री सैटिन की धार्मिक कृति और इन्द्र कथा की परम्परा तथा महात्मा पुरुष का जीवन की चमत्कार पूर्ण बटनाएँ एवं भक्त जनता के प्रार्थना पूर्ण करिते और ग्राह्यपूर्ण धर्मियों के भ्रमण के वर्णन तथा नये देसों की ग्लोब के कृतान्त नव मिल कर एक साथ सोलहवीं शताब्दी में अंग्रेजी में जिन उपन्यास रूप का बीज बोत है वही रूप और प्रायः उहीं मनीष महत्वपूर्ण विषयों को लेकर १९ वीं शताब्दी के अन्त में और २० वीं शताब्दी के प्रारम्भिक अर्ध में हिन्दी उपन्यास साहित्य में दृष्टिगत हुआ। बाद में अंग्रेजी के माध्यम से इन विचार साहित्य के प्रभाव को भी ग्रहण किया और उत्तरार्धक इम पर स्थानीय रंग भी चला।

'उपन्यास' शब्द तथा है पर धार्मिक कृति नहीं। उपन्यास शब्द विभिन्न धर्मों में विभिन्न भाषाओं में प्रयुक्त होता रहा है। अतएव ही उक्त आदि भाषाओं में 'उपन्यास' शब्दों के अर्थ में इसका प्रयोग हुआ है। ये साहित्यिक प्रयोग उत्तर भारतीय प्रयोग की ओर प्राचीन संस्कृत-साहित्य की

प्रयोग परस्पर में अधिक सम्बद्ध है। प्रसिद्ध के प्रसिद्ध स्मोक 'निर्यातः प्रसक्तं रमीकवचनोपस्थानपात्रीजनं' में 'उपस्थान मध्य बहुत कुछ हमी धर्म म व्यक्तित्व हुआ है। बहिरा की उक्त भाषाया म धर्मकी भावना' मध्य के लिये उमी के अनुकूल एक संस्कृत शब्द लक्ष्मण'यः' दिया गया है जो बहुत उपस्थान की प्रकृतितम सर्वोत्तम विमलता का परिचायक है। उपस्थान ( उप-निवृत्त न्याय-गन्ता ) का प्रयोग कदा प्राक्यायिका को छोड़ कर महावी मन्त्र की मूक में धर्म के पाठक के अधिक निवृत्त न प्राया। मन्त्र की बीजनी धीर मध्यकात्रीय रोमानों में विवर्तित हुआ कर मात्र का उपस्थान बना है। इसके एक धार इत्यथा है तो हमरी धीर धानुनिवृत्त पदधारिता।

मानव की चेतना का इतिहास ही उपस्थान की प्रकृति का इतिहास है। स्मो-म्यों मानव मन्त्रता एवं मन्त्रिता की दृष्टि में विकसित करता गया तथा-या उपस्थान का रूप भी निररता गया।

उपस्थान की कृति में अने उपस्थान के रूप को प्राप्त करने के लिये मत्री प्रचलित विचारों की धानुधारा म नीर कर इतनी दूर की यात्रा पूरी की है। त्रिन प्रकार हमने की बात धामल-मुक्त की धानुधारा एक लक्ष्मणयक उत्कृष्टता कथा-गाथा महाकाव्य भाटक म पाई जाती है उमी प्रकार यह बहुतही कृति उपस्थान माहित्य में भी उपलब्ध होती है। उपदेवात्मकता की-मूक-मान्ति चरित्र-विचारा धानुधारा का चित्रण यह उपस्थान की प्रकृतियों की प्रमति के ठीके रहे हैं। चरित्र-विचारा के माय उपस्थान में रचना बीजान के संस्कार पर भी धारण रहा है। मेलक की अनुकृति न बालु का सूत्रन दिया है धीर उनके धाम्याय में रचना-बीजान एवं मीनी को संभारा है।

संस्कृत भाषा में उपस्थान थी है धीर धीपस्थानिक कलि भी। रामां का रूप हमें काश्मिरी में मिलता है। धानुधारा का धामधिर के मध्य की धानुधारा की भांति यहाँ की चिन्ता की उन्नत की विरोधता रही है। वहाँ की कल्पना उक्त का स्वयं एक पट्टी है—यस जमा का लीन मन ही पट्टी है धीर स्वर्न की मात्रा मदेह तो न जान विजने बार की है यद्यपि धानुधारा केला करने समय बीच में ही लटक कर रहे गई धपका शरीर की धामध्य न मात्रा में हिम में गल गई पर कोई भी स्थान धपका बाल इन कल्पना

के छेरे से बचा नहीं—पृथ्वी की परिष्कृता और नाम तो उनके लिये महान सम्भाव्य रहा ।

उपन्यास के धार्मिक रूप का संस्वान-सा रघुशुमार चरित्त बेणी-संहार और मुन्दकटिक दूसरे जग-जीवन को विचित्र करके वाले काव्य-गत प्राचीन प्रवास हैं । वास्तविकता संस्कृत साहित्य में धारकन की कल्पना को भी मात देता है । धारक हम जितना दुरबीन और कुर्वीम समा कर नहीं देख पाते उससे अधिक और स्पष्टतरुष्य में हम बिना कल्पने की धारों से देखते थे । मनोविज्ञान का स्वात घण्टदृष्टि ने न सिया था और दिव्य-दृष्टि तथा भविष्य दर्शन उस समय के समय और दूरी को एक में बाँधने के सफल प्रयास थे । संस्कृति कामीन उपन्यास-रम रचनाओं में कल्पना के विस्तार में समय का सच्चा इतिहास लिखा गया है ।

उपन्यास का अन्वयार मुखती के सौन्दर्य की भाति वास्तव्य भाव से मोसेपन की उत्सुकता से धारन हो बय-सन्धि क अन्वयण से होता हुआ मुग्धा और प्रमत्ता की स्थिति पार करता हुआ अब तो कसब में बैठकर विज्ञ के लेख क पोस्टमार्टम' की बात करने वाली अनुभवी महिमा के स्वप्नों का विस्तेपण और वास्तविकता का नाटकीकरण हो रहा है ।

उपन्यास की वृत्ति बड़ी पुरानी है । इसका प्रारंभिक आभास पद्य के रूपाँ में ही मिलता है । पाया काव्य में विशेष रूप से यह प्रवृत्ति पाई जाती है । संस्कृत युवागी कमाने साहित्य में रोमांस अपने मित्र-मित्र रूप में इतिहास धर्म दर्शन जीवन-चरित्र सभी में तो रोमांस साहित्य का समावेश पाया जाता है । और फिर अब पद्य का उद्भव विकास और विस्तार हुआ तब तो उपन्यास और पद्य का जोसी-शामन का-सा नाच हान में उपन्यास का भी वर्तमान रूप में उद्भव विकास और विस्तार हुआ । उपन्यास सम्बन्धी कहानी में धारण हुआ था और अब जीवन की व्याख्या के रूप में साहित्य के सब धर्मों में बढ़ कर जीवन के समीप है ।

उपन्यास की प्रवृत्ति गण्यबाजी में प्रारम्भ होकर धारक जीवन-दर्शन की समकनता प्राप्ति में होती जा सकती है । मनोरंजन पहलू में ही गण्यबाजी का बिना माने ही उद्देश्य बन गया था और मनोरंजन ही धारक भी प्रत्येक बुद्धिमत्तापूर्ण उपन्यास का उद्देश्य मानना ही पड़गा । पर मनोरंजन विषय हमने को ही धारणों में नहीं होता बर घ्यान में गटना चाहिए । एक गणितज्ञ का मनोरंजन संस्थापना के प्रस क जादू में भी ही मनना है । उपन्यास में मनोरंजन

के कई प्रकार होते हैं। प्रायः भी मने की तर्ज से लेकर पहाड़ पर बड़ाई करने तक के सब प्रकार के मनोरंजन उपन्यास म पाये जाते हैं।

प्राचार्य शुक्ल जी के अनुसार 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रभाव भापा तथा टीनी और साहित्य दोनों पर बड़ा गहरा पड़ा। 'भापा का निष्कार हुआ भिष्ट सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया और उसे व चिह्नित समता के साहचर्य में लाये'। पादशास्य संस्कृति एवं सम्मता का भारत में सबसे प्रथम बंगाल में प्रभाव पड़ा। बंगाल के गान्ध साहित्य एक उपन्यास साहित्य में नवीनता का ममानेस होना नितान्त स्वामाधिक था। हिन्दी साहित्य अभी अपने प्राचीनता के ही प्रथम म पड़ा हुआ था। सर्व प्रथम भारतेन्दु न हो हिन्दी साहित्य का जन-जीवन क नवीन दृष्टिकोस से परिचित कराया और वे ही हिन्दी साहित्य की धारा का जन-जीवन के निरार भी लाए। भारतेन्दु के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे एक ओर तो प्राचीनता के प्रथम को पकड़े हुए हैं और दूसरी धार उनकी सगनी नवीन स्पन्दों में अनुप्राणित होती हुई देस म जन-जीवन नई-जाण्टि एवं नवीन चतना का संचार करने में समर्थ हुई। भारतन्दु के प्रयाम में ही हिन्दी मय को सक्ति प्राप्त हुई। हिन्दी मय के रूप क संवर्ण ही नेसक उपन्यास-साहित्य की ओर धारण हुए प्रारम्भ में लोगों का ध्यान अनुबाह की ओर गया और दूसरी भाषाओं के अद्विष्ट उपन्यास जन-रवि का अनुकरण करने रहे "इन अनुबाहों से बड़ा भाटी काम यह हुआ कि मने डंप के सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों के डब का धरुण परिचय हो गया और उपन्यास निरुने की प्रवृत्ति और योग्यता उत्पन्न हो गई।"

अजरालदास जी के मतानुसार<sup>१</sup> भी धाबुनिरु पिष्ट हिन्दी साहित्य के रूप का अन्तिम निरचय बीमबी सरी के पुर्बाई के त्रितीय भाग में हुआ और इसके प्रवर्तक थे—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। भारतेन्दु जी न सभी मय टीसियों का सम्मयन कर तथा उनक दोषा एवं कुटियों का निराकरण कर भापा को धायन मपुर स्वच्छ तथा मनीष रूप दिया और समयानुसूत मने-मने विषयों

१ रामचन्द्र शुक्ल— 'हिन्दी साहित्य का इतिहास'—सं० २० c विजयीय वृत् ४४६।

२ प्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल "हिन्दी साहित्य का इतिहास"—पृ ४२६।

३ अजरालदास— हिन्दी उपन्यास-साहित्य पृ० १२२।



की ओर उसकी साहित्य धारा को अपनी रचनाओं द्वारा मोड़कर उसे प्रगतिशील बना दिया। साहित्य के अनेक भव जैसे नाटक निबन्ध उपन्यास आदि मिलके मिले गए की ही अपेक्षा को इस निम्न ही भाषा को पाकर पमपने बने। भारतेन्दु ने अपने ही मौखिक मौखिक रचनाओं द्वारा भी हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि न की हो पर उपन्यास रचना का मार्ग प्रशस्त करने का योग्य तो उनका मिसना ही चाहिये। वे तथा उनके मंडस के अन्य सदस्यों ने हिन्दी पद्य के रूप का विकास करके उपन्यास-रचना को विशेष शक्ति एवं महयोग प्रदान किया। इस प्रसंग में वे इसी दृष्टि से विशेष स्मरणीय हैं। स्वर्गीय रामाङ्गणदास जी लिखते हैं कि— 'उपन्यासों की ओर इन (भारतेन्दु) का ध्यान कम था। इनके अनुरोध तथा उत्साह से पहले-पहले 'कादम्बरी' और 'दुर्लभमंदिनी' का अनुवाद हुआ। — 'राधारानी' 'स्वर्णलता' आदि उन्हीं के अनुरोध से अनुवाद किये गये। 'अग्रप्रभा' और 'पुरुषप्रकाश' को अनुवाद कराने स्वयं शुरु किया था'। 'पद्या राजसिंह' का अनुवाद भारतेन्दु स्वयं करना चाहते थे। अनुवाद पुरा भी हो गया था प्रथम परिच्छेद उन्होंने स्वयं गवीन रूप में लिखा और आगे कुछ कुछ भी किया था। गवीन उपन्यास 'हमीर हठ' बड़ी धूमधाम से प्रारम्भ किया था परन्तु धरमन्त बर की बात है कि प्रथम परिच्छेद ही लिखकर वे चल बसे। 'यदि भारतेन्दु जी कुछ दिनों और जीवित रहते तो उपन्यासों से भाषा के भार का भर बेते क्योंकि पद्य इनकी शक्ति इस ओर किये थी।'

की दिवनाचरण श्रीबाम्बब अपन हिन्दी उपन्यास" नामक ग्रन्थ में उपन्यास का आरम्भ उन भारतीय कहानी परम्परा से मानते हैं जो तीन कोटिया में विभाजित की जा सकती है—पहली कौमुदू कथाएँ दूसरी रपट नीति कथाएँ और तीसरी गाथाएँ। भारतोम उपन्यासों के प्रकृ उन्हींने भारत की प्राचीनतम भारती में ही मिलने हुए बताया है। उनका कहना है कि भारत की तो बात ही क्या पाश्चात्य उपन्यासों का मूल-मूल भी हमारी धरम वाली में

१ 'कादम्बरी' और 'दुर्लभमंदिनी' का अनुवाद डा० नवापरसिंह द्वारा 'राधारानी (सम् १८८३ ई०) 'अग्रप्रभा'—'पुरुष प्रकाश' का अनुवाद श्रीमती मस्किदा देवी—'अग्रिका' द्वारा 'स्वर्णलता' का अनुवाद श्री रामाङ्गणदास द्वारा।

२ अक्षरलक्षित—'हिन्दी उपन्यास-साहित्य' पृ० १२५-१२६।

ही रचित है<sup>१</sup>। श्रीवास्तव जी के अनुसार कहानी को उपर्युक्त परम्परा ने ही पारम्पर्य और भारतीय कथा साहित्य को जन्म दिया। उनकी स्थापना है कि हिन्दी उपन्यासों के नामकाल में 'तथा यथा' के नाम-पञ्चमी 'विद्यालय-वर्तनी' यात्रि कहानियाँ कुछ इन संस्कृत कहानियों के अनुसार मात्र हैं और कुछ पूर्ण रूप से इन्हीं पर प्रयत्नवित हैं। परन्तु इन प्राचीन कहानियाँ में उपन्यासों का बीज मात्र मिलता है। श्रीवास्तव जी संस्कृत की साहित्यिक धारणाधिकारों में कथा-कहानी का निष्कार हुआ रूप पाते हैं। उनके अनुसार उपन्यासों एवं संस्कृत की इन साहित्यिक धारणाधिकारों की प्रेरक शक्ति एक ही ठहरती है। वे दोनों में एक ही प्राप्ता के दर्शन करते हैं जिनमें समय के कारण रूप-भेद ही क्या है। श्रीवास्तव जी उन लोगों के कहने को प्रामाण्य बताते हैं जो उपन्यास का पुरोप ही देन कहते हैं। वे यह मानते हैं कि कि उपन्यासों का साहित्यिक बीज प्रथम पश्चिम में प्राया है, परन्तु उनके साथ ही उनकी यह स्थापना भी है कि अपन भारतीय रूप में हमारे यहाँ उपन्यास पहले से ही वर्तमान थे। वे साथ ही यह बात भी मानते हैं कि हिन्दी उपन्यासों का प्रारम्भकाल बहुत कुछ प्रथम पुराता परम्परा ही लेकर बना था किन्तु बाद में एक विस्फुल ही नवीन बीज स्वीकृत किया गया जो सम्पूर्ण रूप से भारतीय है।<sup>२</sup> बाबू ब्रजमन्दाय की भाँति श्रीवास्तव जी ने भी हिन्दी कथा में कथा-कहानियों का मार्ग प्रगल्भ हो जाने पर उन्-धारनों से भी हिन्दी में कहानियों के माने की बात स्वीकार की है। प्रारम्भ के कतिपय हिन्दी उपन्यास सेनका (दिपोटिनास गम्बानी तथा देवकीमन्थन लकी) ने इन्हीं के अनुकरण पर शिमसोरेय्यारो उपन्यास लिप।<sup>३</sup>

अपने दृष्टिकोण में मूलतः राष्ट्रियता की भावना से प्रेरित होकर ही कुछ समीक्षकों ने साहित्यिक उपन्यास को बस्तुतः साहित्य की नवीन विधा न मानकर उसे संस्कृत साहित्य में 'कारम्बरी' 'दिघरुमार करित' यात्रि कथा साहित्य में प्रथम विचलित संस्कृत-कथा-साहित्य की परम्परा का ही विधान प्राप्त रूप

१ शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास', पृ० ११।

२ शिवनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास' (तृतीय संस्करण)

कं० पृ००७ विद्ययोध पृ० ११।

३ वही पृ० ११।

माना<sup>१</sup>। इस प्रकार की स्थापना करना पूर्वोक्त से प्राकान्त होने का प्रमाण ही सिद्ध होना। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत अधिक संतुलित एवं स्पष्ट है। संस्कृत साहित्य की उपयुक्त मनोरम कृतियों को द्विवेदी जी ने उपन्यास आतीय कथा-काव्य के नाम से अभिहित किया है। उसी पर साथ ही यह उष्म भी स्पष्ट कर दिया है कि उन्हें उपन्यास नहीं कहा जा सकता है।<sup>२</sup>

इसी सम्बन्ध का प्रभावशाली अंश से अधिक समग्र कर नतिनबिनोबन घर्मा ने विचारार्थ प्रस्तुत किया है। उन्होंने स्पष्ट ही कहा है— "हिन्दी उपन्यास की स्थिति हिन्दी काव्य से सर्वथा भिन्न है। संस्कृत के प्राचीनतम काव्य से लेकर प्रापुनिकतम हिन्दी काव्य की परंपरा अविच्छिन्न है, किन्तु हिन्दी का उपन्यास साहित्य वह पीषा था जिसे अमर सीधे पश्चिम से नहीं लाया गया हो तो उसका बंगला कमल तो लिया ही गया था न कि मुबन्धु, बंदी और बाण की सुप्त परंपरा पुनरुज्जीवित की गई।" डा० लक्ष्मीदास बाप्लोय भी उपन्यास को हिन्दी में एक नई सृष्टि मानते हैं। जो विद्वान हिन्दी उपन्यास रचना का सम्बन्ध प्राचीन संस्कृत कथा साहित्य से स्थापित करते हैं, उनसे असहमति प्रकट करते हुए वे स्पष्ट कहते हैं कि— 'उपन्यास का सम्बन्ध संस्कृत की प्राचीन औपन्यासिक परंपरा और पौराणिक कथाओं से जोड़ना विच्यवना मान है।'<sup>३</sup>

पहले ही बताया जा चुका है कि हिन्दी उपन्यास के प्रादुर्भाव पर अंग्रेजी साहित्य का सीधा प्रभाव अधिक नहीं पड़ा। अंग्रेज सर्वप्रथम समुद्र-तट भर स्थित प्रांता में आकर अंग्रेज। इस प्रकार राजनीतिक संपर्क के साथ अंग्रेज भारतीय प्रदेशों की सुसजा में बंगाल अंग्रेजी शासन के माध्यम से अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क में बहुत पहले आ गया था। वहाँ सिलकों पर अंग्रेजी उपन्यास का प्रभाव पड़ चुका था। बंकिम के माध्यम से उज्जा तथा उनके सम-कालीन उपन्यासकारों का हिन्दी की उठती हुई उपन्यास विधा पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। सांस्कृतिक पश्चिमी उपन्यास का अमना पर प्रभुत्व प्रभाव या इस

१ 'श्याम सुन्दरदास—साहित्यालोचन'।

२ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी "हिन्दी साहित्य" पृ० ४९९।

३ नतिनबिनोबन घर्मा—'आलोचना' अथ ९ खंड १।

४ लक्ष्मीदास बाप्लोय "प्रापुनिक हिन्दी साहित्य" पृ० २१-२४।

कारण धार्मिक काम में हिन्दी पर पश्चिमी उपन्यास की छाया प्रत्यक्ष न पड़ कर बसन्ता के माध्यम से आई-सद्यपि दो-तीन-बसकों के बाद अनेक पश्चिमी उपन्यासकारों के अनुवाद हिन्दी में उपलब्ध होने के कारण हिन्दी उपन्यास पर पश्चिमी उपन्यास की अनेक प्रवृत्तियों का सीधा प्रभाव भी पड़ा। 'दुर्घोषानंदिनी' (सन् १८८२) और 'राजाधरणी' (सन् १८८३ ई०) के नाम से बकिम बाबूदत्त कृमच ऐतिहासिक एवं प्रेमाख्यात्मक उपन्यासों का अनुवाद हिन्दी में पहल पहल हुआ<sup>१</sup>।

अतः हमें प्राबुद्धिक उपन्यास के धार्मिक रूप को बसन्ता के माध्यम से अंग्रेजी में जोड़ना पड़ेगा।

बसन्ताहिन्दे उपन्यासेर धारा के विज्ञान ललक भीरुमार बान्धोपाध्म के मतानुसार ऐसी बात नहीं थी कि बसन्ता में उपन्यास एक बारही कही से आ गया हो उनके अनुसार प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसका अतीत संकेत खोजने से अवश्य पाया जाता है। काव्य में बर्म-ग्रन्थ म ध्यङ्ग-चिरूप की कविता में भास्वामिका में और नाटक में अहाँ कही भी लेखक के द्वारा अत अवका अज्ञात समाज का एक वास्तविक चित्र प्रतिकृत हुआ अथवा अहाँ कही भी इस चित्रांकन को खेपटा भी देखी प<sup>२</sup> अथवा सामाजिक मनुष्य का सम्पर्क अथवा संवाद प्रस्तुटित हुआ वहीं पर उपन्यास का छायापात हुआ गया। उपन्यास के जन्म होने के पूर्व ही उसके अनेक धीर उपादान साहित्य में विपरीत भाव से बिखरे पड़े थे। तत्परचाणु यथासमय किसी प्रतिभावान ललक न इन समय विपरीत एवं बिखरे उपादानों का एकत्र कर सुसम्बद्ध तथा सुनिश्चित कर उन्हें एक भास्वामिका में ग्रूथ दिया। उसन एक प्रकार के नूतन साहित्य को जन्म दिया और चिर-प्रवाहमान साहित्य-वात को एक नवीन प्रशान्ती में लंघारित किया।<sup>३</sup>

१ एतुनायभारण भ्यातानी बंवेष्ट धीर उनक उपन्यास —पृ० ४३-४४

२ - - प्राचीन साहित्येर मध्ये० इहार अतीत संकेत धो मुहुर इक्ति कृत्रिया वायोधा बाय । काव्ये-बर्म-ग्रन्थे-व्यंगचिरूपेर कविताय-भास्वामि काय (नरैटिब पोमट्टी) धो नाटके अजातैइ लेखकेर अज्ञातारे वा अज्ञातसारे समाजेर एकटि वास्तव चित्र प्रतिकृतित होय अजातैइ चित्रांकनेर खेपटा खेपटा बाय वा सामाजिक मनुष्येर सम्पर्क वा संघात कृत्रिया उठे सिक्कानई उपन्यासेर भाओ धायापात होइया वा के । उपन्यासेर जन्म हइवार पूर्वइ



व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करना उसकी आकांक्षा का प्रधान विषय हो गया है। इस व्यक्तित्व बोध के साथ ही साम उपन्यास का आविर्भाव हुआ। दूसरी बात यह है कि मानव के व्यक्तित्व विकास के साथ साथ समाज में सब से नीचे के स्तर के लोगों के मन में भी जो एक धाम्यमर्दावा का बोध जागृत हो गया और जिसे समाज की धम्य व्यक्तियों के साथ जोड़ना से प्रथम बिलम्ब से स्वीकार करने को बाध्य हुए। निम्न वर्ग में धाम्य मर्दावा के जागृत हो जाने का बोध उपन्यास साहित्य का एक प्रधान उपादान है। उपन्यास के द्वारा पण्डित्य का प्रभाव यहाँ भी अत्यन्त विकाम प्राप्त रूप में है। प्राचीन साहित्य का वर्ण्य विषय प्रधान रूप धृति मानव यथवा उच्चशैली के मनुष्यों का कीर्तिकथापन हुआ करता था। इसमें माधुर्य लोगों की गति नहीं होती थी। प्राचीन साहित्य में यहाँ नहीं भी साधारण मनुष्य नमक पर पर या उच्च पद पर है वहाँ पर बहु मानवत्व की विराट्दाओं के कारण नहीं प्रसूत देवताया (स्वामी) के अनुग्रह के रूप में है। दूसरी धार धृति सामान्य लोगों के दैनिक जीवन की निव्व कर धीरे वहाँ से उठ कर ऊपर आकर जीवन के सम्बन्ध की बद्ध साधारण एवं व्यापक पारलार्थ स्फुरित करना उपन्यास का प्रधान कार्य है। इस कारण से किन जेगों में इस प्रकार की भंगोचिन एवं परिवर्तित धवस्वा नहीं है, वहाँ उपन्यास का आविर्भाव सम्भव नहीं। इन्हीं कारणों ने उपन्यास का प्रागुनिवत्त्व वर्तमान युग के पूर्व—पण्डित्य के विकास जन्म के पूर्व यहाँ पर सम्भव नहीं पा'।

- २ 'इ देवीर साहित्ये प्रभावे आमादेर देवे से सब नूनन बारखर साहित्य लोडिया उडिया से ताहार मध्ये उपन्यासई प्रयान्तकन। एइ उपन्यासेर धनुकर कौन बस्तु आमादेर पुरातन साहित्ये कुडिया पाओया जायना। --- उपन्यासेर प्रयान बिदेपत्वइ एइजे इहा सम्पूर्ण प्रागुनिक सामग्री। पुरातन युगेर आकाश वातावेर नम्य इहार जन्म सम्भव पर नीप। प्रागुनिक युगर सामाजिक बर्तितवेर सने इहार एके बारे धनियत धमतरंग सनकं। सर्व भे लीर साहित्ये मध्ये उपन्यासई सबविजा गलतत्र सम्बकं सर्व भ लीर साहित्ये मध्ये उपन्यासइ सबविजायलतत्रे प्रभावे प्रभावाम्बित। एइ गलतत्रे मूलनितरगुपरेइ इहार प्रतिप्या। उपन्यास से समाजेर मध्ये जन्म पहल करे ताहा धनीतवानेर समाज --- धनैकपुतो गुलतर विषय विविग्रहोयोया जाइ। प्रबन्धन नम्ययुगेर साधा-

### अंग्रेजी प्रभाव

अंग्रेजी साहित्य के परिषय से बंग समाज और साहित्य में नई सम्यता के अनुकरण की प्रवृत्ति आई। उपन्यास में हमारे अपने समाज और बंग परिवार से उपादान की खोज आरम्भ की।

अपने प्रथम सम्पर्क में अंग्रेजी सम्यता देशवासियों के लिए विषेय रूप से आकर्षण की वस्तु थी। अंग्रेजी सम्यता के सहित बंग समाज एवं तन्मन्त्र बिसोम ही नये उपन्यास का उपादान बना। अंग्रेजी सम्यता की तीव्र मरिदा से नम्य बंगाल समाज में उत्कट उन्माद जमाया वा। बहुत दिनों की अड़ठा के पश्चात् नये बंग समाज की मूठन जीवन के स्पन्दन के प्रमुख हुए। नये सामाजिक आदर्श की खोज में तथाकथित विविध तथा अंग्रेजी सम्यता द्वारा प्रभावित बर्ग बिना अधिक शीघ्र-समये आये बढ़ा। इस समय सनातन बन्धन

जिक शू प्रान हो इते मानुषेर मुक्ति साम ओ व्यक्ति स्वार्थवयेर उद्बोधन उपन्यास साहित्येरे एकटि अपरिहार्य अय। एह अंग्रेजी बिसोरे मध्ये आत्म बिसोय व्यक्तित्व-विकासेरे पक्षे सम्पूर्ण प्रतिशुल ओ उपन्यासेरे आबिर्भाव पक्षे एकटिप्रधान अन्तराय। किन्तु आधुनिक युगर मानव आपना के एकटी अंग्रेजीर मध्ये सम्पूर्ण अये उबाइया राक्षिते आपना समुदाय सामाजिक शू अस्त हो इते मुक्ति नाम कोरिया निजेर व्यक्तित्व फुटाइया तोला ताहार एकटि प्रधान आनन्दार विषय होइया छे। एह व्यक्तित्व बोधर सय संयइ उपन्यासेरे आबिर्भाव द्वितीयतः व्यक्तित्व विकासेरे संये सय निम्नतम अंग्रेजीर मानुषेर अनेओजे एगटा अस्तमयाबा पोष आवि आ छे ओ बाहातमाअर अन्त्याय अंग्रेजीर लोक धीअइ हउक ना बिलम्बइ हउक स्वोकार कोरितेबाध्य होय ताहाओ उपन्यास साहित्येरे एकटि प्रधान उपादान। उपन्यासेरे अपर अस्तमय प्रभाव एवानेओ सुपरिस्फुट। आधीन साहित्येरे विषय प्रधानत अतिमानुष वा उच्चम अंग्रेजीर मानुषेर कीर्ति-कलाप इहा साधारण लोकैर बिसोपचार पारे ना। "पश्चात्तरे अपि सामान्य लोकैर ईनिक कीजन लिपिकरुकरा ओ अहा होइते जीवन संबंध कटक मुक्ति साधारण-व्यापक पारला फुटाइया तोलाई उपन्यासेरे प्रधानकाय। अर्तमान युगेरपूर्व-मल्लतग्र अम्य विकासेरे पूर्व इहार आबिर्भाव संभव दितो ना"—श्री कुमार अन्तो वाप्याय बंग साहित्येरे उपन्यासेरे धारा ५०१ २ (प्रथम संस्करण)

विभक्त हो गये थे। नैतिक एवं सामाजिक विधि-विधेय (टिकुड) निर्ममता से लोड़े जा रहे थे। परिवार परिवार में इस विद्रोह की भावना की उत्कट अभिव्यक्ति हुई। घुस्सल तथा अभिभावक श्रेणी के लोग विस्मय-विभूत हो हठ बुद्धि भाव से पुराण तथा धर्म-शास्त्र-वर्णित म्लेच्छ-युग के आन का अनुभव कर रहे थे। परिणामतः प्रतिक्रिया का भाव उठा। नये उद्वेग के वशीभूत होकर सभी विजातीय वस्तुओं का बहिष्कार हुआ। बर-बर में वस्त्र-रत्न के विद्रोह के प्रहकार में विप्लव की तुमुल घडान्ति आरूढ कर दी।

बमला में उपन्यास के आदिर्भाव के समय यही विप्लव का चरित्र उम का प्रथम उपादान बना। प्रथम युग के बगला उपन्यास का बर्ष विषय यही विद्या की भावना थी। कतिपय विद्रोही युवका ने बुद्ध-बीमता का बरण करके साहित्य-सेवा का बत लिया।

धर्मजी सम्पदा के उत्सर्ग ने हमारे सामाजिक और पारिवारिक जीवन में त्रिभ्रम आशान्ति एवं विभ्रूलक्षता के भाव को ला दिया था जमन उस समय के जीवन के बटना-बैचिष्य के प्रभाव को पूर्ण किया। उसने धौपन्थायिक का प्यान भी आकर्षित किया। ला भी इसन प्रकट रूप में प्रभावित नहीं हुए उनके बीच में पारिवारिक वैषम्य का गम्भीरतर करके उन्नत जीवन में भी एक बैचिष्य एवं बटिलता का मन्थार कर दिया। हमारे परिवार म पहल तो राम का आदेश था पर इस समय विचारों के संघर्ष के कारण परिवार व्यवस्था भी द्विभ्र-मिन्न हो गई। ये सब बातें उपन्यास में सम्मिश्रित कर ली गईं। और भी एक बात थी। त्रिभ्र लोपों म प्रथम धौबनोन्वाह में समाज और परिवार के बन्धनों में मुक्त होकर समाज की सपटिन विरोध भावना में मार्ग लिया था व अन्त तक न टिके रह सके। ऐसे लोपों म धमच्छतावन्धन विराध के कारण या ता आत्महत्या करली प्रथवा समाज के साथ समन्वैता करव समाज की मोह में फिर आ गय। इस बात ने उस समय की सामाजिक नैतिक बगला को संतोष प्रदान किया। इसे घनाचार को पराजय तथा नीति के उन्मथन करव के धम-धमती बह के रूप में लिया गया। धौपन्थायिकों ने इसको प्रापञ्चित के रूप में पगा। हमारे बतमान उपन्यासों के बीच में धर्मजी सम्पदा के सम्पर्क से उन्नत यही पारिवारिक आशान्ति और विभ्रूलक्षता के विषय ने एक प्रभाव स्थापन बना दिया था।

प्रथम युग के पहले के उन्वाह—त्रिभ्रुने इन कसमकस को चरू किया



प्रबिकाराय में सनातन धर्म के आचार पर अवलंबित थे। इसीलिये वे धर्मवीर विद्या और सम्पत्ता के प्रति पक्षपात-भ्रम्य होकर सुविचार नहीं कर पाये। इन सब लेखकों ने अंग्रेजी सम्पत्ता की प्रशंसाइयों की ओर से मौल बन्ध कर ली थी। उनकी मानसिक संकीर्णता और पुरखान पर अन्धभक्ति हमारे मस्तिष्क को संतोष नहीं देती। पर कुछ लेखकों ने अनुसिद्ध बंध से विचार करके संकीर्णता को छोड़ कर और साधारण मस्ती से उभर उठ कर प्राधुनिक उपन्यास के सिधे अग्रदूत का कार्य किया। इन लेखकों में प्यारी चांद मिश्र का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उनके असाधे परे बुसास में हम तत्कालीन सबीम सुन्दर उपन्यास का उदाहरण पाते हैं।

अंग्रेजी प्रकार के उपन्यासों के आने के पूर्व हिन्दी की साहित्य बंधता में भी कल्पित मुसलमानी गल्प-कथाओं का—'भारम्योपन्यास' 'हासिमताई' 'सैना मजनु' 'बहारबरवेस' 'मुसलकाबली' आदि का प्रचार था। उस समय की बंधात सायबेरी की पुस्तक-सूची देखने से यही पता चलता है।

अस्तु, इस अन्धभक्ति परवर्ती युग में हिन्दू-मुसलमानी के विरोध को लेते हुए तथा मुसलमानी माया इन्द्रजाल बेपिठ-एक-प्रकृष्ट-के धर्म ऐतिहासिक (पूखो हिस्टारिकल) उपन्यास का आविर्भाव हुआ। बस इसी को हम बंधाती साहित्य के अन्तर मुसलमानी गल्प के प्रभाव के एकमात्र निवर्तन के रूप में ले सकते हैं।

मुसलमानी परंपरा तथा मुसलमानी पुस्तकों के अनुबाधों न पाठकों को पूर्ण रूप से प्रभावित नहीं किया पर कुछ लोग ऐसे थे जिनके सिधे धर्मशास्त्र आदि का अध्ययन बुरह था। ये लोग इस प्रकार की पुस्तकों से मनोरंजन करते थे। बगाम सायबेरी की पुस्तक सूची में उल्लेख कर देखने पर यह स्पष्ट रूप से देखा जाता है कि १९वीं सताब्दी के मध्य भाग में जब अंग्रेजी साहित्य का आदर्श बंगला साहित्य में धीरे-धीरे परलंबित हो रहा था तथा जब मुद्र एासय की सहायता से अनुबाध के माध्यम से विदेशी साहित्य साहित्य बंधात के साहित्य में भरी जा रही थी उस समय उपयुक्त प्रकार की मुसलमानी पत्नों का अनुबाध भी तत्कालीन बंगाली साहित्य की प्रवेष्टा का एक प्रधान अंग बन रहा था।

अंग्रेजी में उपन्यास की अवतारणा का काम

बधता पर भी अंग्रेजी उपन्यास के व्यापक प्रभाव के कारण प्राधुनिक उपन्यास को ठीक से समझने के सिधे हमें अंग्रेजी भाषा में ही उपन्यास की अवतारणा के क्रम को समझना पड़ेगा।

धोरेजी भाषा की भाँति धोरेजी उपन्यास भी एक समुद्र एवं लोचदार साहित्यिक माध्यम का साधन है जो यों ही समयबध्नात् घटावियों में विवास पाता गया है। इसमें कभी नियमों की कड़ि-बड़वा नहीं रही है। भाष्यरचना पढ़ने पर यथास्थान नियमों में परिवर्तन भी हुए हैं तथा उपयोगी तथा जो यत्र तत्र-सर्वत्र से ग्रहण किया गया है। लेखकों की मनोवृत्ति के अनुसार इसके रूपों में सर्वत्र परिवर्तन होता रहा है। इस प्रकार उपन्यास की कहानी का न तो धादि हो जाना या सक्ता है और न उसका अन्त ही।<sup>1</sup> सुबिधा व निचे यूरोपीय कथा-साहित्य के इतिहास का धारम्भ हम "मिसीन्ग्ल टैल्स" के प्रकाश लेखकों के समय से मान सकते हैं। जैसे धोरेजी कथा साहित्य का धारम्भ हम एलिजाबेथ के समय से मानते हैं। पर इन दो में से किसी भी एक मनुष्य को उपन्यास के धारिष्कार का श्रेय नहीं मिल सकता।<sup>2</sup>

हमें इस बात का भी ध्यान रखना है कि यह लेखन सुबिधा की दृष्टि से भी है, किसी छर्क के कारण नहीं कि धारुनिक पुस्तक-बिडोता 'ग्राम्पस इस्टर' के नय उपन्यास को तो कथा-विभाग में रखने के लिय प्रेरित करता है वह कि इस विचार-क्रम से 'सीन धोरेजी' का नाटक अथवा 'जान मेमपीन्ड' की बर्ण

1 "The English novel like the English language, is a rich and flexible instrument which has developed casually through the centuries, making its own laws breaking them, borrowing from abroad, now here, now there absorbing every fresh idea rarely jettisoning an old one and branching out a fresh at the whim of every masterhand which has gone to its shaping. In truth the story of the novel has no end and no beginning."

—S. DIXON NEIL. *A Short History of the English Novel* p. 7

2 "Yet no body knows just what a novel is and no body knows just where the novel begins, for convenience sake, we generally begin the history of European fiction with the unknown authors of the Æsopian tales, that of English fiction with the Elizabethans, but neither of these groups invented fiction."

—EDWARD WAGENSCHEIM *Cavalade of the English Novel* p.XV (Introduction).

नगरमक कविता को कथा-विभागेतर वर्ग में रखना ही जाना चाहिये। कहानी कहानी ही रहती है चाहे वह गद्य में कही जाय अथवा पद्य में चाहे वह हस्तों में विभक्त हो चाहे मस्यौदों में। 'बासर' की 'पार्लर्स टैल' एक छोटी कहानी से बड़ा कर है, यह एक छोटी कहानी है उस विचित्र एवं उच्च भाव से भी जिस भाव से 'ब्रॉडर मैन्सून' ने 'मोपासा' एवं 'पो' की रचनाओं का सम्मेलन करके इस विधा की परिभाषा लिखी थी। दूसरी ओर 'द्वयसय ऐण्ड क्लेडीड' यदि ठीक ठीक कहा जाय तो कठिनाई से उसे वर्णनात्मक कथक-कथ्य कह कर बतसत्या का शकता है, परन्तु यदि 'बासर' 'सेक्सपियर' के युग में हुआ होता तो इसमें कोई सन्देह ही नहीं कि उसका 'द्वयसय ऐण्ड क्लेडीड' गटक के रूप में हुआ होता। और यदि वह धाककस के युग में हुआ होता तो निश्चय ही हम उसे एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास के रूप में देखते।

डोस्च टेस्टामेन्ट (बाइबिल का प्राचीन पूर्वार्ध खण्ड) में 'खोना' ईस्वर और वच के बर्णनों में कथात्मकता है—और ऐपाक्रिय नामक ग्रन्थ में तो कथात्मक निरिचय रूप से है जहाँ हम टोबिट, गुसागा बेस और रियन की बातें पढ़ते हैं। संसार की सर्वश्रेष्ठ छोटी कहानियाँ हजरत ईसा की दृष्टान्त कथामों (पैराबुस) में ही मिलती हैं—

'कोई व्यक्ति जेरुसलम से जेरिको गया और चोरों के बन्दर में पड़ गया। जिन्हाल उसके कपड़े उतार कर उसे मंगा कर बिना और धायल कर दिया और फिर उसको घबमरा छोड़ कर चले गये।

कथानक चरित्र चरित्र—कथा साहित्य के सभी प्राथमिक उपादान यहाँ इस एक भाग में हैं। यन्ता न जेरुसलम में चरित्र होती है और न जेरिको में ही बरम् वह दोनों का मिलाने वाली सड़क पर पड़ित होती है। 'भारमी' को स्मतिरव नहीं प्रदान किया गया है उसका नाम नहीं दिया गया है, उसके चरित्र तथा स्वभाव को बिना बर्णन किये ही छोड़ दिया गया है। परन्तु वहन नाम के प्रयोजन की दृष्टि से—इस उपाहरण में ऐसे छोटे बर्णन-विषय की सार्थक सीमता (पूनीकर्मविटी) को नष्ट कर देते हैं। कोई एक 'भारमी' बहू देना पर्याप्त है। वह कोई भी 'भारमी' है। वह तुम है या मैं हूँ अथवा पड़ोस में रहने वाला 'भारमी'। और इस प्रकार जिन भागों को यह कहानी सुनाई जा रही है उन भाग के निश्चय मार्मिक सम्पर्क में आ जाती है।

पर बाइबिल के निरिचय किये जाने के पहले भी कथात्मक बातें थीं। हम

द्विचित्र से किसी भी प्रकार के लेखन-व्यापार से बहुत पहले कथात्मक सामग्री का अस्तित्व<sup>१</sup> था। स्वयं 'साहित्य' शब्द ही प्रत्यक्षनामकरण का उदाहरण है, यह छपे हुए पृष्ठ के वास्तव के प्रतीक के रूप में स्थित है। सभी प्रकार के साहित्य का अरम अंत तो मौखिक परम्परामें ही है और 'बैसेज' तथा 'एपिक' की वर्णना करते हुए हम इस बात को स्पष्ट रूप से मानते हैं। धर्म के क्षेत्र की भाँति साहित्य में भी सत्य का उद्घाटन करने वाले सन्तों की परम्परा<sup>२</sup> है। 'बोलेफ़ कानराब' और 'मार्नर्स बेनेट' 'स्टार्म जैन्सन' और 'टोला के-स्मिथ' के पीछे वर्णन करने वालों की एक घट्ट गूँथला है जो प्राचीन धरतियों के उन्मुषों के समान एक पहुँचती है जहाँ ऐमिस्तान की प्रबेरी रात में छोटे-छोटे बच्चों से घिरा बीठा एक वृद्ध व्यक्ति उनको अपनी भाँति के इर्यों का वर्णन अपनी स्मृति के सहारे सुनाता है। कथा के रूप विकास के विषय में यह भी सोचा जा सकता है कि जब धारि माता ने प्रथम दायनकालीन कथा परिधम से कथान्त प्रथम लघु कालिका को बीमे फुल्लुसाहट के स्वर में सुनाई तब कथात्मक रचना का उदय हुआ। जब प्रथम शिक्षक ने प्रथम विद्यार्थी को उसकी उल्लुभता को दान्त करने के लिये वस्तुओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहानी गढ़ कर सुनाई तब कथात्मक रचना का जन्म हुआ। जब प्रथम मत्स्यजीवी बड़ी चोड़ी सी मछली लाकर घर लौटा और रास्ते से बाहर जाकर जब उसने उस जलधर में महत्त्व एवं आश्चर्यजनक रूप के विषय में बतनाया जो जल से बच कर निकस भागा था और जब प्रथम युगीन आलेखक ने भय से काँपती हुई अपनी पत्नी को कस कर अपनी

1 "But there was fiction long before the fiction was written. For that matter there was fiction long before anything was written."

—EDWARD WAUGHAN *Caricature of the English Novel*, p. XVI (Introduction).

2 "There is an apostolic succession in art as well as religion behind Joseph Conrad and Arnold Bennett Storm Jameson and Sheila Kaye—Smith stretches an unbroken line of narrators back to some ancient Arab campfire where an old man sits rehearsing tribal memoirs to the little company gathered about him in the desert night."

—*ibid.*, pp. XVI—XVII (Introduction)

सुबाधों में समेटे हुए जंगल के उस अर्थकर हिंसक जलु के विषय में बतलाया जिससे वह शाल-आस बच कर निकल घाया या उस कवचक प्रकार की सृष्टि हुई ।

### ‘फिक्शन और नाबेल’

मिःसिडेड् ‘फिक्शन’ ‘नाबेल’ से अधिक व्यापक शब्द है । जैसा पहले ही कहा जा चुका है कि ‘नाबेल’ की पूर्णस्वेष संतोषजनक परिभाषा कभी नहीं की गई । सर हेरी जॉन्सन ने एक बार बड़े टीलेपन के साथ शिकायत करते हुए कहा था कि हमारे पास अंग्रेजी में ऐसा कोई भी उपयुक्त शब्द नहीं है जिसकी सहायता से हम साधारण जन के जीवन बूलों और उनकी भावनाओं के उस अध्ययन की अभिव्यक्ति का नामकरण कर सकें जो अधिकांश साधारण लोगों के लिये अनेक प्रकार से साहित्य का सबसे अधिक आकर्षक स्वरूप बन गया है ।<sup>१</sup>

### सम्बन्ध-गत अर्थ

यदि शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ ग्रहण करें तो ‘नाबेल’ से तो ‘कुछ नहीं’ बात का बोध होता है और ‘फिक्शन’ में मिथ्या का आभास मिलता है तथापि उत्तम नाबेल के प्रचलन और जन-जन की कल्पना पर प्रभाव का एक मात्र कारण उसमें पाये जाने वाले सत्य के ही कारण होता है । उनकी सफलता इसी कारण होती है क्योंकि वे मानव स्वभाव की अभिव्यक्ति के लिये मनासैज्ञानिक अर्थण सिद्ध होते हैं ।<sup>२</sup> अट्टाण्डीनी यताम्बी के शेषकों में अपने

1. Fiction is of course a much wider term than Novel and as I have already suggested, ‘novel has never been satisfactorily defined. Sir Harry Johnson once complained with bitterness that we have in English no really adequate term to express that study of people’s lives and emotions which has become in many ways the most fascinating form of literature to the majority of people to read.’ *ibid*, p. xvii- (Introduction).

2. “Yet the best novels have always owed their vogue, their power over the imagination to their inherent truth, the success with which they turn their mirror on human nature.

— *On the Writing of Novels* Yale Review, XI (1921), pp. 58—67

उपन्यासों में मिथ्यात्व का बाताबरण करने के लिये अपने विस्तृत वर्णनबुद्ध कथाओं को 'हिस्ट्रीज' का नाम दिया या पर प्राधुनिक काल में बर्जीनियाकुस्ट के 'नावेल्स' को 'हिस्ट्रीज' कहना मात्र की कठिनाई और गड़बड़ को दूर करने में समर्थ नहीं होता। कुछ लोग तो ऐसे हैं जो उनको 'नावेल्स' भी नहीं मानते हैं।

### उपन्यास और छोटी कहानियाँ

'नावेल्स' (उपन्यास) और 'शार्ट स्टोरी' (छोटी कहानी) के बीच में केवल शब्द संक्रमा के परिमाण का ही अन्तर नहीं होता कुछ 'शार्ट स्टोरीज' कुछ 'नावेल्स' से बड़ी होती हैं। दोनों के बीच अन्तर तो उदयत समस्या का होता है। 'शार्ट स्टोरी' एक विषय स्थिति को लेकर बनती है, 'नावेल्स' परिस्थितियों की गूँथला को लेकर घामे बढ़ता है पर इन विषयों में प्रात्यक्षिक रूप में स्वभाव-व्यक्तित्व-स्वापन-प्रयासी होना ठीक नहीं।

### उपन्यास और यथार्थ तथा उपन्यास और रोमांस

क्या उपन्यास को यथार्थवारी होना ही चाहिये बहुत पहले सन् १७८५ ई० में ही 'मेरा पीच' ने जो स्वयं उपन्यास लिखना की उपन्यास और रोमांस के बीच में अन्तर का निर्देश करने का प्रयत्न किया। उसने बताया 'नावेल्स वास्तविक जीवन तथा रहस्य-सहस्र के रूप का चित्र है। जिस समय में नावेल्स लिखा जाता है उस युग का चित्र भी उनमें होता है। रोमांस उच्च कोटि की काव्यात्मक भाषा में उन बातों का वर्णन करता है जो न कभी घटित हुए और न जिनके घटित होने की कुछ सम्भावना ही होती है।' पर इस क्षेत्र में कितना ही धार्मिक बाह-विबाह क्यों न हो चुका हो यथार्थ एवं रोमांस के बीच में पूर्ण वृत्तव्य अर्धमय है। प्रत्येक महात्त्वैवक यथार्थवारी और रोमांसपरक दोनों ही हैं। निश्चय ही जार्ज सेल्सवरी ने ठीक ही कहा है, 'कथा के प्रमुख लक्ष्य को प्रस्तुत करने के लिये घनेकालिक अहस्य कल्पनाओं को एक बड़ी संख्या की योजना उसी ही धार्मिक प्रावश्यक होती है जिसकी घटनाओं का योग तथा इन घटनाओं की स्थापना करने तथा प्रमेदात्मक अन्तर स्पष्ट करने के

1 "The Novel is a picture of real life and manners, and of the times in which it was written. The romance, in lofty and elevated language, describes what never happened nor is likely to happen"—(Clara Reeve) 1785—*ibid.*, p. XVIII

सिध् वास्तविक इलाकों की सहाय आन-सुलन-यकड़ आवश्यक है। जीवन तथा चरित्रों में कथात्मक साहित्य के महान् बाँझनीय उपादान ये ही हैं।<sup>1</sup> पाप पपार्पता के मास को पूर्णवपेण उपन्यास से निकाल दीजिये तो जो बस्तु रह जायगी वह उसी प्रकार कथात्मक होगी वैसे ई० धार० एडीसन के उपन्यास। दूसरी धोर यदि रोमांस को हम बिनेपक्ष से निकाल दें तो यह कहा ही नहीं जा सकता—क्या बचेगा ? क्योंकि प्रसंग सा सगता हुआ यह कार्य बिबोडोर ड्रीजर के हाथ भी सम्भव नहीं हो सका। सामुनिक प्रकृतबाद के पुरोहित कहे जाने वाले एमिस जेल्सा का ब्यक्तिव उसकी तिली हुई पुस्तकों का जतना ही महत्वपूर्ण ठर है जितना कि जेम्स ड्राइव कैम्स के ब्यक्तिव का महत्व उसकी रचनाओं में है।

सत्य के जाँचने का ढंग परियों की कहानी पर सही प्रकार नहीं लागू होता बिस प्रकार वह यथार्थवादी उपन्यासों पर लागू होता है, परन्तु यदि कहानी उत्तम कोटि की होती है तो वह डम डस पर भी लागू होता। परियों की कहानियों के प्रसिद्ध प्रचेनी सेबक विम के प्रसंगक किसी भी पाठक को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि उन कहानियों के अधिकाँस प्रार्कण का स्रोत जर्मन के स्नेहपूर्ण परेन्स बाठाबरण में है। उनमें इसी दुनियाँ का बाठाबरण है जो पूर्ण कल्पनाधीन बरण एवंों में भी ऋसकता हुआ पाया जाता है। कार्मपियेण एवं मैडेमन काटेस डोसताय की परियों की कहानियों में उसका प्रभाव है। पर इसके बदले उनमें 'ज्वाय ड बित्र' (जीवन का प्रार्ण) —एक मोक्षपूर्ण सामाजिक पुण है—जो मानिक साहित्य की विशेषता है। धोर इसीसिये प्रायः यह कहा गया है कि 'टिम्पेस्ट' (वेक्सपियर) हमारी इबि के तिये बिषय प्रार्कण रखता है इससिये नहीं कि उसके अर्ध बिषय में अधिद्वसनीय बातों का समावेश है, बरन् उन प्रार्कण का कारण यह है कि उसमें प्राये हुए चरित्रों का नैतिक रवभाव उतनी ही मत्पता से प्रम्नत किया गया है जितनी सत्यता हम अपन परिचित संसार के जीवन में पाते हैं।

1 "Surely Saltsbury was right when he said,—a crowd of phantastic imaginings or additions to supply the main substance and a circumstances to set them upon and contrast them these are the great requirements of fiction in life"

### अंग्रेजी का प्रागुनिक मावेस

प्रायः ने अंग्रेजी के कथा साहित्य का विकास आरंभकालीन रोमांस से लेकर स्टैवेन्सन के उपन्यासों तक किया है। उक्त मजबूत म्बन्धन की दो प्रवृत्तियाँ मानी हैं—एक आदर्शवादी और दूसरी यथार्थवादी। विज्ञान न इन दोनों प्रवृत्तियों का उपयोग किया है। जहाँ एक आदर्शवादी निष्कर्षण और स्टैवेन्स की आदर्शवादिता है। आरंभ से ही दोनों एक दूसरे से लाम उठते हुए चलते हैं<sup>१</sup>। इस प्रकार साहित्य सर्वत्र आदर्श बढ़ता रहता है पर बढ़ कर वह किन्तु कथा में आया यह निश्चित रूप से पहल से नहीं बढाया जा सकता। साहित्यिक विचारों के परिवर्तन का वही क्रम है जो प्रकृति-विज्ञान द्वारा प्रतिपादित किया गया है। ही यह बात ध्यान है कि साहित्यिक इतिहास की मामूली को हम विज्ञान की यथार्थता के कड़े नियम से नहीं जाँच सकते हैं।

‘रोमांस’ में या ‘रोमांस’ और ‘नाट्य’ के रूप में कथारमक साहित्य के दो परस्पर विरोधी उद्देश्य के संघर्ष को उपस्थित किया है। पहला उद्देश्य अंग्रेजी में पुराना है और १४वीं शताब्दी में इसका साधारण रूप में प्रयोग हुआ था। रोमांस का अन्वय या आदर्शवादी साहित्यपूर्ण समिधान अथवा प्रेम की पद्यत्मक कथा। यह कथन भाषा (अर्थात् रोमांस की भाषा) से लिए गए थे। जो कहानियाँ प्राचीन जमे हुए साहित्य (‘क्लासिक’) अथवा अन्य स्रोतों से ली गईं या अथवा जो स्वतंत्र रूप से आदिष्ट हुई थीं उन समस्त रचनाओं के लिए ‘रोमांस’ उद्देश्य स्वरूप हुआ था। पद्य में ही अतिरिक्त पर वास्तविक जीवन (अथवा वास्तव एवं ईश्या-ईश्या के अहित जीवन) के रूप के अतिरिक्त अतिरिक्त रचनाओं को प्रादेशिक<sup>२</sup> के कथियों न ‘नोवाज’<sup>३</sup> की उदाहरण प्रदान की थी। उन्नी के समकालीन पद्य में अतिरिक्त सर्वत्र बहुकाल साहित्यिक विद्या के लिये बोकोचियो<sup>४</sup> तथा अन्य समकालीन लेखकों में ‘नोवाज’ उद्देश्य की प्रकृति और

1. "Romance learns from realism; and realism learns from romance."

WALTER I. CROSS, *The Development of English Novel Verse forms* (Old French)

२ प्रादेशिक (Provençal) यह फ्रांस का एक प्रांत है।

३ 'नोवाज' (Novels) यह शब्द सर्वत्र बहुवचन में प्रयुक्त होता है।

४ बोकोचियो 'डिडेमरा' १४ वीं शताब्दी का प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक।



बदन पर शब्द 'नाबेल' प्रयुक्त किया था'। इस प्रकार की यथार्थवादी रचनाएँ १४ वीं शताब्दी में लिखी गईं पर उन्हें 'टेस' कहते थे। 'टेस' शब्द के प्रथम परिचालित होने लगे थे। भारत में इस शब्द को हम सब साहित्यिक विचारों के लिये प्रयुक्त किया था जो १४ वीं शताब्दी के इंग्लैण्ड में प्रचलित थी।

बौद्धिकियों के पश्चात् जो शताब्दियों तक इटैलियन लोग 'नाबेल' की रचना करते रहे। एलिजाबेथ के युग में वे एक बड़ी भारी संख्या में अंग्रेजी में भी आये और अन्ही के साथ 'नाबेल' शब्द भी अंग्रेजी में आया। वे शब्द अनुवादों पर भी लागू होता था और अनुवादों के अनुकरण पर मिली हुई शब्द रचनाओं पर भी। इस शब्द से एक बात और स्पष्ट थी कि इसमें वर्णन की हुई घटनाएँ और उनको वर्णन करने का ढंग सभी नये थे। 'नाबेल' शब्द को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये बड़ा संघर्ष करना पड़ा क्योंकि एलिजाबेथ के समय के लोग 'हिस्ट्री' शब्द को 'नाबेल' की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण समझते थे। वे यह और यह में लिये हुए सब प्रकार के कलात्मक प्राणियों के लिये हिस्ट्री शब्द प्रयुक्त करते थे वैसे कि कठिनय निम्नांकित शीर्षकों से स्पष्ट है—“दि ट्रेजिकस हिस्ट्री प्राक रोमियो ऐण्ड

- 1 "The terms 'romance and 'Novel' which in themselves are a summary of the two conflicting aims in fiction, require at the outset brief historical and descriptive definition. The former is in English the older word, being in common use as early as the fourteenth century. Our writers then meant first of all by the romance a highly idealized verse-narrative of adventure or love translated from the French, that is, from a romance language; they also extended the term to similar stories derived from classic and other sources or of their own invention. For a verse-narrative approaching closer to the manners of real life its intrigues and jealousies—the Provençal poets had employed the word *novlas* (always plural) for a like narrative in prose, always short. Boccaccio and his contemporaries were using the cognate word *novella*.

—WILLIAM L. CROSS: *The Development of the English Novel*, p. XIII (Introduction).

‘सुसिद्ध’ और ‘दि हिटो पाठ हैमलेट प्रिंस आफ डेनमार्क ।’ यह भी एक प्रख्यात नाम था क्योंकि इसमें लुप्तों के प्रति (काल्पनिक रूप से ही सही) यथा होने का मास निहित था। छायाचित्रों के चारित्र्य से लेकर प्रथम तक रोमांस का प्रथम-प्रयोग साहित्यिक कृतियों के लिये भी न तो दीर्घक रूप में हुआ और न नुमिदा में ही व्यवहृत हुआ। पर जब १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रथम गति से कल्पनात्मक एवं प्रामाणिक दृष्टि से सम्बन्धित रचनाका का बहुसंख्य हुआ तो रोमांस शब्द भी दीर्घक के रूप में फिर दिखाई देने लगा। और तब क्लेर रीज ने मनोरंजक परस्पर संभाषणों के समुदाय में रोमांस और ‘नावेल’ के बीच अन्तर स्पष्ट करने वाली विचारक रचना की।<sup>1</sup>

स्काट की दृष्टियों ने प्रामाणिकता के लिए एक नई समस्या ला खड़ी की। क्लेर रीज द्वारा बलिष्ठ ‘रोमांस तथा ‘नावेल’ शब्दों का ही उनमें सम्मिश्रण कर दिया गया था। अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इस मिश्रित रूप का क्या नामकरण हो ? इन समय ‘नावेल’ शब्द अंग्रेजी के कथासाहित्य का पर्यायवाची शब्द हो बन गया पर प्रायेण नामकरण यह क्या नामकरण की प्रपणे साथ समिभ्रमता का वातावरण सिध रखा।

‘दि इतिहास नावेल’ का साधारण बोलचाल की भाषा में अर्थ होता है—  
‘वे सब उपन्यास जो ग्रेट-ब्रिटेन में लिख गये। अमेरिका तथा अंग्रेजी-भाषा वाली न्यू-ग्रैण्डों में प्रकाशित हुए उपन्यासों को भी अंग्रेजी उपन्यास की संज्ञा

1 “The novel is a picture of real life and manners, and of the times in which it was written. The romance lofty and elevated language, describes what never happened nor is likely to happen. The novel gives a familiar relation of such things as pass everyday before our eyes, such as may happen to our friend or to our self, and the perfection of it is to represent every scene in so easy and natural a manner and to make them appear so probable as to deceive us into a persuasion (at least while we are reading) that all is real, until we are affected by the joys or distresses of the persons in the story as if they were our own.

बो जाती है। जे० सी० बनसन ने अपनी 'हिस्ट्री ऑफ प्रोज-फिक्शन' में और प्रोफेसर वास्टर रेसे ने अपनी 'इंग्लिश नावेल' पुस्तक में इसी धारणा की पुष्टि की है।

इसाइकलापीडिया ब्रिटानिका में भी फिक्शन की विभिन्न शैली के प्रयोग पर टिप्पणी करते हुए उसके लेखक ने एक अन्तर विद्यमान रूप से स्पष्ट किया है। उसके अनुसार मूल शब्द गद्य रोमांस अथवा गद्योत्तर साहित्य को भी अपने में समेटता है पर नावेल उच्च विरसे सम्पर्क में ही पद्यात्मक रचना के लिये प्रयुक्त होता है।<sup>1</sup> इस निबन्ध का लेखक 'नावेल' एवं माध्यम शैली के विकास में भी सामञ्जस्य उपस्थित करता है। वह प्राच्य 'नावेल' की साहित्य की एक नवीन विधा मानता है जिसमें कलात्मक प्रतिष्ठता के स्थान पर निम्न मध्यवर्गीय जीवन को महत्व दिया गया है।

इसाइकलोपीडिया ब्रिटानिका में 'नावेल' शीर्षक निबन्ध के लेखक के मतानुसार प्राच्य उपन्यास यद्यपि साहित्य की एक नवीन विधा है। पर इसने प्राचीनकाल की साहित्यिक परंपराओं से अनकानेक भावस्यक उपादान ग्रहण किये हैं। इस प्रकार प्राच्य शीर्षक उपन्यास का धारण जिस धीरे धीरे की कहानियों आइसलैंड की गाथाओं आईबल मध्यकालीन गद्य रोमांस आदि की कहानियों एवं फ्रान्स इटली तथा स्पेन के कहानी साहित्य से होता है।

### डैकर और प्राच्य 'नावेल'

डी डैकर के अनुसार प्राच्य 'नावेल' एक ऐसी वस्तु है जिस प्रत्येक व्यक्ति देखते ही पहचान जाता है। आकार प्रकार के मानान्वय के होने हुए भी पाठक के हृदय में जितना आकर्षण इस साहित्यिक विधा के प्रति होता है उतना अन्य के प्रति नहीं। इस बात में नावेल सब में निरामा है। इसका माध्यम गद्य होता है, पद्य नहीं बल्कि विषय के रूप में इसमें जीवन का चित्रण कथा के रूप में होता है। यह कथा पूर्ण रूप में कथा धार्मिक रूप से विस्था-

1 "The generic term 'romance' however included work not in prose whereas the word novel has never been applied (except for a very few specific novels in verse) to any but prose writing,...." — *Encyclopaedia Britannica* p. 572.

2 *Encyclopaedia Britannica*—p. 572

३ धारण—प्राच्य शीर्षक साहित्य का धारण लेखक

त्यक्त होती है जीवन-चित्रण करने के रूप पर यद्यपि पत्रकार की ही रिपोर्टिंग की धारणा नहीं रहती पर मानव अस्तित्व के तत्त्वों के माध्यमिष्ठ एवं स्वायी सबब अनिवार्यरूप से आवश्यक है। उसका कथन है— कुछ लोगों के अनुसार उपन्यास तक तक उपन्यास नहीं होता जब तक कि उसमें कथानक प्रेम का पुनः आदि कतिपय मानव स्वभाव की विषयताओं की छाप स्पष्ट न हो।<sup>3</sup> पर कुछ उपन्यासों में इनका घनाभ में भी उपन्यासत्व प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। इसीलिए उपन्यासों के उपादानों पर विषय बस देना उचित नहीं। पर बेकर के अनुसार साधारणतः उपन्यास में सम्पूर्ण कथानक की गद्यत्मक शैली में इन प्रकार मुख्यव्यक्ति योजना होना आवश्यक है जिससे यथार्थ जीवन के अनुस्यू ही उसमें जीवनचित्र प्रकट हो। धीरे धीरे लेखक की अपनी सामाजिक प्रकृति का परिचय भी एक निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्राप्त हो सके। विस्तृत विचार के पश्चात् बेकर यह स्थापना करता है कि 'नार्वेल' का प्रारंभिक इतिहास एक ऐसी साहित्यिक विधा का इतिहास है जो 'नार्वेल' का स्वरूप नहीं प्राप्त कर सकी है। यह बात सभी साहित्यिक विधाओं के प्रारंभिक रूपों के अध्ययन करते समय हमारे सामने आयेगी। महाकथ्य अथवा नाटक के प्रारंभिक स्वरूप के इतिहास का अध्ययन भी इसी उमरी ही समझी हुई बात की पुष्टि करेगा।

<sup>1</sup> 'द्विगुण' शब्द बड़ा व्यापक है। इसमें 'नार्वेल' तथा 'रुन्यात्मक साहस' पूर्ण गद्य कथाएँ ही नहीं सम्मिलित हैं बल्कि यदि हम इनका व्युत्पत्त्यत्मक अर्थ लें तो यह बातक को भी अपने में समन्त लेना है। कथारमक साहित्य का

- 3 'Its medium is prose, not verse as to content, it is a portrayal of life, in the shape of a story wholly or in the main fictitious as to its way of portraying life, though the pretence of exact reporting of indiscriminate detail is generally regarded as a mistaken kind of realism, and much latitude is allowed to plot and surprise, everything recounted is required to be credible or at least to have a definite and consistent relation to the facts of existence. Some would have it that a novel is not a novel unless it has certain habitual features such as a plot and love interest. —E. A. BAKER  
*The History of the English Novel* Vol. 1 p. 11

प्राचीनतम रूप मौखिक रूप से कहे जाने के कारण धीरे स्मृति में रखे जाने के कारण गद्य में था। पर जब हस्तलिखित प्रतियों की मजबूती संस्था छापाखानों की सहायता से होने लगी धीरे पाठकों की संख्या क्रम बढ़ गई। तब पुरानी कहानियाँ सब की सब गद्य में लिखी जाने लगी। इस प्रकार धारम में गद्य का रूप तो केवल विचार की बेध-भूषा पर था। पर जब धीरे-धीरे दैनिक जीवन में व्यवहृत होने वाली भाषा में पूरी संमीरणा के साथ सुक्ति-संगठन रूप में जीवन का विचारात्मक अध्ययन उपस्थित किया जाने लगा तब भाषा का उपन्यास साधने प्राया।

दिल्ले के अनुसार साहित्य में 'नार्वेस' के समान प्रतिष्ठित परिवर्तनशील एवं बहुविकल्पीय साहित्यिक-विधा धीरे कोई नहीं है। अपने विकास-क्रम के बहु संख्यक स्तरों पर अन्य प्रकार की रचनाओं के गुणों का भी समावेश इसमें हो गया है।<sup>1</sup> इसे न तो जगता में घनिष्ठ रूप में उपस्थित किये जाने की परिस्थिति का सामना करना पड़ा है धीरे न ही अन्य प्रकार की मौखिक वाचन-क्रिया के प्रभाव दिखाने का अवसर ही मिला है। अतः 'नार्वेस' नाटकीय प्रयत्न काव्यात्मक परम्पराओं की स्थापना करने के कार्य के उत्तरदायित्व से मुक्त रहा है। साहित्य की अन्य विधाओं में रचना-शक्ति सम्बन्धी अनेकानेक कठिनाई-नियम प्राये जाते हैं, पर उपन्यास की यह विशेषता है कि यह किसी ऐसे अतिम नियम से नहीं बँध सका जिससे इस के विकास की सम्भावना में किसी प्रकार की बाधा हो सके।

दिल्ले ने भी अंग्रेजी के 'नार्वेस' शब्द को 'रोमांस' के सहारे मध्ययुगीन 'रोमांस' शब्द पर प्राप्ति करते हुए इस मूल रूप को इटालियन 'नार्वेस' में जोड़ निकाला है। यह इटालियन शब्द 'न्यूज' का समानार्थी भा है। इससे हमें अंग्रेजी के आनुबिक 'नार्वेस' शब्द के एक दूसरे पक्ष का ज्ञान हुआ है।

1 "At various stages of its development it has assimilated the characteristics of other ways of writing—essays and letters, memoirs and histories, religious tracts and revolutionary manifestoes sketches of travels and books of etiquette all the popular variety of prose."



कटनायों का चित्रण होता है। इस प्रकार का साहित्य भी इसी संज्ञा (Novel) में अभिहित होता था। इस धर्म में इस शब्द के पहले 'दि' (the) घाटिकित्त नहीं लगता था। पर सन् १७२७ ई. से इस शब्द के पहले 'दि' घाटिकित्त का प्रयोग होन लगा<sup>१</sup>।

रोमन सा में इस शब्द का धर्म होता है—एक नया भाषा या विषय या कोठिस धर्मत् पहल से बनाय ह्य के पुरक रूप में होता है। विसेपकर यह उन नय धारिषों या विधानों के लिए प्रयुक्त होता है जिन्हें सम्राट् जस्टिनियन ने बनाया था। जिस धर्म में रोमन सा में 'नावेस' का प्रयोग होता था उस धर्म में इसका संघेजी में प्रयोग सन् १६१२ ई० में प्रारभ हुआ।

### नावेस शब्द का शाब्दिक धर्म

संघेजी भाषा में विसेपक के रूप में 'नावेस' शब्द पुरानी फ्रेंच भाषा से लिखा गया है। इसका रूप घाबुनिक फ्रेंच में (Nouvel nouveau) जो नैटिन क (Novellum) में बना है और (Novum) पर घाभित है जिसका धर्म है नया। १६ ई. के प्रथम इसका प्रयोग बहुत कम पाया जाता है।<sup>२</sup> 'नावेस' शब्द का नया के धर्म में विसेपक रूप में इस प्रकार प्रयोग होता है—

नावेस = नया (New) युवा (young) ताजा (fresh) = घाज-कल का (recent) घयवा घाज-कल में उत्पत्ति बाया<sup>३</sup> (of recent origin) १७२७ ई० नया (New) नए स्वभाव या नई प्रकृति के प्रकार बाया (of a new kind of nature) विचित्र (strange) जैसा घाज तक कभी जानने में न बाया हा (hitherto unknown) इस धर्म में इनका प्रयोग १४७१ ई० में बना घारहा है।<sup>४</sup>

1 'This is no mere amatorious novel. *Milton*.

2 "England has hardly received the honour she deserves as the birth place of the modern novel" 1871

3 *Late middle English adaptation of old French novel—modern French Nouvel, Nouveau—Latin—*

4 "Novel disclaim of a fresh or recent date.

5 "a style of decoration more novel than elegant (1870) novel constitution — *Shorter Oxford English Dictionary* p. 1341

नाबेलम (Novelise) शब्द १६०० ई. में निम्नकाल के उपन्यासों में प्रयुक्त हान वाली भाषा की शैली (the style of language characteristic of inferior novels) के लिये प्रयुक्त हुआ।

नाबेलम' शब्द में निम्नसे हुए कतिपय शब्द इस प्रकार हैं—

१—नाबेलेट (Novellette) १७० ई० में मनु-उपन्यास के अर्थ में प्रयुक्त हुआ। यह संगीत में पियानो की स्वतन्त्र शैली की स्वर-रिक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ। इस विधि में बहुत से या विविध प्रकार के विषय नहीं होते थे।

२—'नोवेलिज्म' (Novellism)—१६२६ ई. (प) नई बात (यह अर्थ सन् १७ ई० में ग्रहीत हुआ)। (मा) सन् १८२८ ई० में यही शब्द उपन्यास लिखने के अर्थ में ग्रहीत हुआ।

३—'नोवेलिस्ट' (Novelist)—१६८३ ई. (प) सन् १७२७ ई० तक इसका अर्थ नई बात निरूपण वाला अथवा नई बात का समर्थन करने वाला हुआ। (प) १८ की दशाब्दी में प्रचलित इसका एक और भी अर्थ था—'ऊपर से ऊपर पहुँचाने वाला' अथवा जाने वाला। इस अर्थ में यह शब्द सन् १७६४ ई. में ग्रहीत हुआ। (इ) सन् १७२८ ई. में यह शब्द 'उपन्यासों को लिखने वाले' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ।

४—'नोवेलिज' (Novelize)—१६२५ ई०। सन् १६६० ई. में इसका अर्थ 'नया बनाना' अर्थात् नयापन का प्रयोग का आरम्भ हुआ। सन् १८२८ ई० में उपन्यास का स्वरूप या शैली में परिवर्तन करने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग आरम्भ हुआ। सन् १८३३ ई० में इतिहास का उपन्यास का सा स्वरूप देने के प्रयत्न के लिये भी इसी शब्द का प्रयोग हुआ।

यद्यपि अभी तक हम कोई ऐसी बात नहीं मिला जा 'नोवेल' की परिभाषा का एक निरिच्छन 'धैरे' में बाँध दे पर इस स्थान पर यह सुविधाजनक होगा कि हम उन सब परिभाषाओं पर विचार कर लें जो समय-समय पर अंग्रेजी नोवेल का स्वरूप स्थिर करने के लिये पड़ी गईं थीं। उन्हीं में से हिन्दी में अनेक प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये एक-दो का चुनना होगा। ऐसा करने पर हम उन्हीं कि कुछ परिभाषाएँ हमारे लिये विद्यमान हैं क्योंकि



'नावेल' का धार्मिक प्रकार प्राचीन प्रकार के तत्सम्बन्धी स्वरूपों से बहुत अधिक बढ़त गया है। इस क्रिया द्वारा हमें यह भी पता चल पाया कि धार्मिक प्रकार क्यों धर्म मिट्ट हो गया। जब कि दूसरा प्रकार समयोचित भाग को पूरा करता हुआ भाव भी लेता है। जितनी भी परिभाषायें नावेल प्रकृत या अत्यन्त कथा-काव्य को लक्ष्य करके बनाई गई हैं, उन सबमें विचारानुसृत लेख की दृष्टि से विभिन्न प्रकार की अनुकूलता का भाव है। बैकन के अनुसार 'नावेल' प्रकृत 'सूटा इतिहास' काव्य के प्रकार का नामकरण था जो यद्यपि लिखा जा सकता था और यद्यपि यद्यपि भी।<sup>1</sup> यदि उसके रचना-संदर्भ में इस परिभाषा को देखें तो कविता से इसका बहुत कम सम्बन्ध मिलेगा बल्कि इस परिभाषा का सम्बन्ध काव्य के उस अंश से अधिक है जिसे किसी भी रूप में कविता नहीं कह सकते। इस प्रकार समझने का प्रयत्न करने से यह पता चलता है कि यह वाक्यांश निरर्थक नहीं है। हममें उपरोक्त संकेत है जिस पर हम ध्यान विचार करेंगे। 'फ्रीडम' की सहज भाव से की हुई परिभाषा 'नावेल' को यद्यपि महाकाव्य के रूप में प्रस्तुत करती है<sup>2</sup>। यह परिभाषा एकदम प्रतीत होती है। कथारचयिता की परिभाषा 'वास्तविक जीवन और उसके अंग के तथा जिस समय में वह लिखा गया है उसके बिना के रूप में नावेल को दूसरी दिशा में संकुचित बनाती है<sup>3</sup>। इसके धार्मिक प्रारंभिक प्रयत्न के परिणाम स्वरूप अन्य परिभाषायें भी हैं। यथा — 'नावेल' को नाटक की ध्याति को सीमित करने वाली गद्य की विधा धारि। पर यद्यपि जब हम साहित्य के आलोचनात्मक ज्ञान में बहुत ध्यान बढ़ा दें—य परिभाषाएँ बचकानी-सी लगती हैं। प्रोफेसर बार्नेट का वाक्य—'कि नावेल कल्पना-युक्त बर्लनात्मक धारण है, जिसमें एक कथावस्तु भी होती है'<sup>4</sup>—साहित्यशास्त्र में किसी मत

1 Bacon's "feigned history" was meant to designate 'poesy' which as he put it may be styled as well in prose as in verse.

2 Fielding's offhand definition a comic epic in prose is of course too narrow in one direction  
—E. A. BAKER. *The History of the English Novel* p. 13

3 Clara Reeve *Picture of real life and manners and of the times in which it is written.*

4 Professor Warren's statement, "A novel is a fictitious narrative which contains a plot." is dogmatic ..

विषय क बुराग्रह को पकड़कर अपने के समान है और एसा जान पड़ता है कि ज्ञान-बुद्ध कर इस माषारण मान्यता का भी हृष्टि म पर कर दिया गया है कि 'नाबल' का मानव-जीवन का चित्र हुआ पड़ता है। स्टीवेन्सन का 'ए हम्बल रिमान्स्टेन्स (A humble remonstrance), नामक लेख इस विषय म बड़ मुन्दर विचार प्रस्तुत करता है। उमर मर बन्पर विवेन्ट के बाधयास का सुधार कर प्रस्तुत किया गया है। उक्त अनुसार उपन्यास गद्य म कल्पनासुन्दर प्रयत्न बलुनात्मक भास्वान की कमा' है। कलात्मक गद्य साहित्य के बलुन क रूप मे मानव की रचना क विषय बलुन क रूप में यह बाधयास धनर्थात है। कलाचित् उसन विचारगत विषय पर बुद्ध कहना धनावश्यक समझा यह मानकर चलने हुए कि यह तो पूरी तौर पर समझा ही जाना हुआ कि बलुनात्मक भास्वान मानव जीवन से सम्बन्ध रचना हा होगा। एसा होने पर भी इस बात का उम्मत न करना कि नाबलिस्ट का ज्ञान चिचित करना पड़ता है और जीवन की गाथा भी कहनी पड़ती है—एक बड़ महत्वपूर्ण प्रय को छाड़ देना होता है। धैमी कि स्टीवेन्सन मे धागा की जा सकती है, वह जन्मजात कथाकार होन के कारण कहानी को कल्पनात्मक भास्वान 'फिज्जलन' के धन्य सब धर्मों के ऊपर हा स्वाध नहीं देता बल् एरेन क राइ की मांति इस धन्य धमा को धन्य में दबा देन देता है।<sup>१</sup> फिज्जलन मबने पहच कहाना हुआ है, पर महान् फिज्जलन म कहानी जीवन की उडरणी क परबान् स्थान पाती है। विचारशील कलाकार स्टीवेन्सन बिनुड बलुनात्मक भास्वान का कोरे बलुन नात्मिक विरलपण एर्ब परस्पर संभाषण मे बडकर कलात्मक हण समझता है। वह इन धाबन्डक धगा का महत्व नहीं पटता है। वह उर्हें इस बिनुड बलुनात्मक-भास्वानपर समस्त धन्यों में महत्वपूर्ण स्थान देता है। हममें कोई मरेह नहीं कि उने निम्नबाधमात्र मे यह स्वीकार करता बाहिन धा कि एक कथम बलुनात्मक भास्वान (फिज्जलन) का जिनान बलुन का स्थान उनके धन्य बाध्यागों की धपेगा धन्यनु तुक्त है। धनेकि नात्मक का बाध्यागिक महत्व धन्यार्था धौर हर्था की मुनिधेना में ही निहित है। पर स्टीवेन्सन उमी

1 "The art of fictitious narrative in prose" (Sir Walter Vicent's phrase unproved).

2 Aron's rod—a rod with a serpent twisted about it, used as an ornament.

परिभाषा से संतुष्ट हो जाता है जो एक प्रकार से 'कसा के सिधे' वाला सिद्धान्त से मेल खाती है। वह यह नहीं स्वीकार करता कि अल्प कलाओं की मति फिजेशन की भी अभिव्यक्ति का लक्ष्य होना आवश्यक है, और वर्णनात्मक आख्यायिकात्मक अभिव्यक्ति का स्वरूप विशेष मात्र है।

किन्तु स्टीवेन्सन के निबन्ध का धार्मिकतात्मक अध्ययन हमें नाबेल की अभिकार पूर्ण परिभाषा का संभाल-सूत्र प्रदान करता है। इस निबन्ध का प्रमुख विषय है—नाबिलिस्ट के द्वारा व्यवहृत किये जाने वाले क्रियात्मक शब्द—नाबेल क्यों मिया जाता है? किस समय उसकी रचना होती है? इन प्रश्नों के सम्बन्ध की प्रश्न-वारणाएँ उसके मस्तिष्क की पृष्ठभूमि में रहती हैं। यह परिभाषा नाबेल-लेखन के उन सभी प्रकारों के उद्धार अध्ययन से मेल खाती है जो बहानी कहने की प्राचीन कला से समय के अन्तर पर प्रस्फुटित होते रहे हैं। 'फिजेशन' यद्यपि होने के कारण यद्यपि स्वातंत्र्य होता है—अर्थात् नाबेल में जीवन का सम्पूर्ण मेधावी तथा कुछ अंशों तक वैज्ञानिक एवं दार्शनिक स्थापत्य अर्थात् प्रत्यक्ष रूप में ही होता है। जैसे वस्तुओं अथवा घटनाओं का पुनरुत्पादन मात्र नहीं होगा चाहिये प्रत्यक्ष जैसे व्याख्यात्मक भाष्य के रूप में होता चाहिये<sup>1</sup>। स्टीवेन्सन कहता है कि 'नाबेल जीवन की प्रतिसिपिमात्र नहीं है, जिसे उसके विवरणों की यथावत् पुनरावृत्ति में जीवा का मने बरन् वह जीवन के किसी परा अथवा जीवन के वैशिष्ट्य का माध्यात्मिकीरण होता है जो इसी महत्त्वपूर्ण माध्यात्मिक के सहारे निकता है अथवा विरता है।'<sup>2</sup> एक श्रेष्ठ नाबेल (उपमात्त) के प्रत्येक वाक्य प्रत्येक पृष्ठ एवं प्रत्येक परिच्छेद में जीवन विधायक एवं जीवन नियामक विचारों की शक्ति प्रतिपद्यित होती रहती है। यमस्त अल्पनात्मक वर्णनात्मक आख्यायिकात्मक का एकमात्र उद्देश्य होता है। जीवन के मर्म

1 It should be no mere re-production of things or events so far as words can reproduce them but an interpretation.

—E. A. BAKER *The History of the English Novel* Volume 1 p. 15

2 The Novel, says Stevenson is not a transcript of life to be judged by its exactitude but a simplification of some side or point of life to stand or fall by its significant simplicity "

STEVENSON *Memories and Portraits* p. 297

का ऐसा उद्घाटन या जन-मन-साधारण क मिय आत्यन्त सुमम झा सके । इन्स आन्तरिक अथवा बुद्धिगोत्र परिधियों तथा पशुधा घषवा परिव्या एवं मजीव क्रिये हुए में खिलीतो क हृत्पा के बर्गान म क्रिपमिम क हापियों धीर स्टीम इजित के माहृमिक धमिदापों के उत्तेज्य आदि में प्रकारान्तर में भागभीय जीवन की विभिन्नरूपों में व्याख्या उपस्थित की गई है । अतः यह निश्चित सत्य है कि क्लिफान-विशेषरूप में 'नाबेल' जीवन-मापा के ही विविध रूपों का प्रकट करता है ।

'नाबेल' पर कुछ भा मिलने के पूर्व उनकी परिभाषा निर्धारित करना आवश्यक समझ कर ई० एम० फास्टर एक क इ लेखक एम एबेल घबेती का उत्तेज्य करते हुए उन्हीं क धम्मी में नाबेल की परिभाषा मिलने हैं । उनके अनुसार यदि एक केंद्र आन्वेषक अंधेरी नाबेल की परिभाषा नहीं मिल सकता तो यह काम ममा दूसरा कौन कर सकता है ? केंद्र लेखक कहता है कि— "कुलफिक्शियां धी प्रोत्र इप न सरता एतान्द्रु" <sup>१</sup> (ए क्लिफान इन प्रोत्र घाब ए मस्टेन एक्स्टेन्ट) अर्थात् कुछ विस्तार बाता गद्य में कल्पनात्मक आख्यायन क्लिफान है । वह इस विस्तार की सीमा भी निर्धारित करता है । उसके विचार से पश्चिम हुआर धम्मी से अधिक विस्तार बाता कोई भी कल्पनात्मक एवं गद्यत्मक आख्यायन नाबेल के रूप में लिया जा सकता है । साम ही उसका यह भी शब्दा है कि यदि कोई इस परिभाषा को असास्त्रीय कहे तो फिर वह आपत्तिवर्ता से इसके स्थान पर हूँदकर ऐसी परिभाषा माने का आग्रह करेगा जो अपने में विभिन्न प्रोत्रेस मैरिदम दि इपीक्युरियम दि एडवेंचर घाफ ए मंगरसन दि मैरिड कस्पूट दि बरलन घाफ दि प्लेग जुलेन्ना बाग्यन रैडलस सुमिमेग धीर धीन मैग्जम को मसेट में घषवा (यदि इन्हें नाबेल न मानें तो) इनका नाबेल की बाप्ति में निश्चालन का कारण उपस्थित करें बस्तुन<sup>२</sup> में घन्त्र<sup>२</sup>

1 "One fiction on prose d'une certain c'tendue ('a fiction in prose of a certain extent')

—M. ABEL GUYALLEY *Le Roman Anglais de Notre-Temps*

2 *The Pilgrim's Progress* (1658)—John Bunyan  
*Marus the Epicurians* (1885)—Walter Moratho Pater  
*The Adventure of a Younger Son* (1831)—L. J. Treclawny  
*The Magic Flute* (1920)—C. Lowes Dickinson  
*The Journal of the Plague year* (1722)—Daniel Defoe

व्यास रचना की आभासिता के रूप में है। यह सम्भव है कि इस विचार में कोई सूक्ष्म धार्मिक बलवर्ती हो पपवा कही बीच में पास का मैदान दिखाई पड़ जिसमें एमा<sup>3</sup> को सिने हुए मिश्र जेन प्रास्टिन और ऐजमर<sup>4</sup> का ह्राप पकड़े हुए बैकरे देख पड़ें। लेकिन फ्रस्टर के अनुसार इसके व्यापक कोई भी उक्ति नहीं जो समस्त क्षेत्र को अपनी परिभाषा की परिधि में ला के। इसकी सीमा निर्धारित करने के लिये मेल्क केवल इतना कहता कि यह क्षेत्र दो पर्वतमासलों से घिरा है जो कि एकदम से उठी हुई भी ही माधुम पड़ती। ये दोनों क्विटा और इतिहास की परस्पर विरोधिनी ईत-ओ गियर्स हैं। तीसरी भोग यह क्षेत्र बहु समुद्र से घिरा हुआ बतलाता है इसका अनुमान पाठक को माथोडिक<sup>5</sup> के समान रचनाधी के पढ़ने से लपामा सकता है।

मेल्क अपनी ही हुई परिभाषा के सम्बन्ध में कितनी ही व्यापकता का वा क्यों न करता हो पर उसके साथ ही यह भी सत्य है कि ई० एम० स्टर्टर की ही हुई परिभाषा किसी देश के गको की 'आउट साइन्स' के समान जिसमें हम आबस्वकानुसार कोई भी रंग भर सकते हैं और उसे किसी प्रकार के उत्पादक क्षेत्र या भूमोल के प्राकृतिक-भागों के उदाहरण के रूप प्रस्तुत कर सकते हैं।

गन इन्डोइरजन टु दि इंग्लिश नावैस" के मेल्क प्रार्नेर<sup>6</sup> ईटिल में भी रिमापिक दार्मों के प्रयोग में गड़बड़ न ही इस विचार से उपग्यास की परिभाषा प्रसीण समझ है। जिस धर्प में न उपग्यास दार्म का प्रयोग करते हैं है गद्य में मिली हुई यथार्थ जयन की कल्पित वाषा जो एक बिरतार में

<sup>3</sup>Zuleika Dobson (1911)—Max Beer bohm

<sup>4</sup>Reasclas (1759)—Samuel Johnson

<sup>5</sup>Ulysses (1922)—James Joyce

Green Mansions' (1901)—William Henry Hudson.

Emma (1816)—Jane Austen

Ramond (1852)—William—Nakepeace Thackeray

Moby Dick (1851)—Herman Melville

—E. M. Forster Aspects of the Novel

मीमिक और ध्वनि में पूर्ण होती है।<sup>१</sup> एक ऐसा शब्द जो इतने अधिक समय में स्वल्पव्यंजनपूर्वक विविध धर्मों में प्रयुक्त होता रहा है, उनकी परिभाषा करने में वैयक्तिक स्वेच्छा का प्रयोग होता स्वाभाविक ही है। 'नायन' (उपन्यास) की सम्बन्धि (विस्तार) का प्रत्येक ठा 'कैटिल' भी या ही छाह देता है (उत्तर) अनुसार इसके विषय की भी सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती पर इतना तो यह निश्चित रूप से कहना है कि उपन्यास एक जीवन की निजी घटना (एनकाउण्ट) में बस कर है और सबसे प्रथम विषय एक घटना (एपीसोड) की खोज का गाथा में भा बही बस कर है। उदाहरणस्वरूप पीकक<sup>२</sup> के नाट्यमय एवं को दृष्ट्य होने हुए भा यह एक उपन्यास के रूप में लेता है और जानराह<sup>३</sup> का 'हाई वॉक डार्नेम' बड़ा होने हुए भा सम्बन्धि छोटा कहानी के रूप में लेता है। पर इन दोनों की समस्या को जो दोनों की सीमाया पर है अर्थात् किन्हीं छोटा उपन्यास भी यह कहने हैं और सम्बन्धि-छोटी कहानी भी। उसकी समस्या को लेकर कोई बड़ी समस्या नहीं मानना।

इसके साथ ही जो दूसरी महत्वपूर्ण बात है वह यह है कि उपन्यास को यह प्राथमिकी साहित्यिक विधा मानना है अथवा में सम्पूर्ण और सबसे परावर्त अथवा वैश्विक प्राणी की भाँति उसके प्रत्येक अंग में दूसरे अंग का भी कुछ न कुछ अंग अन्वय<sup>४</sup> है। कैटिल की विशेष शक्ति को परिभाषा करने में नायन में पाई जान वाली जीवन की स्वयन्तरीयता एवं मुख्यव्यक्ति अर्थ के साथ साथ उसकी अर्थार्थना पर बड़ा अंग लगी है।

1 "The novel—as I use the term in this book—is a realistic prose fiction complete in itself and of a certain length.

—AROLD KETTLE. *An Introduction to the English Novel* p. 28.

2 THOMAS LOVE PEACOCK *Nightmare Abbey* (1818).

3 Joseph Conrad *Heart of Darkness* (1902)

4 "A novel is a living thing all one and continuous like any other organism and in proportion as it lives will it be found I think, that in each of the parts there is some thing of the other parts.

—AROLD KETTLE *Introduction to the English Novel* p. 12.

“दि नाबेल ऐष्य दि पीपुल” का विमर्शण प्रतिभा सम्पन्न लेखक “रैल्ड फ़ॉक्स” ‘नाबेल’ को अपने धातुनिक बुद्धिवा सामाज्य का महाकाम्यात्मक कर्मा का स्वरूप मानता है इस समाज के युवाकाल में यह अपनी पूरी ऊँचाई पर पहुँच गया और हमारे अग्रज ही समय में बुद्धिवा समाज के हास ने भी इसे कुछ कम प्रभावित नहीं किया है। नाबेल बुद्धिवा साहित्य की सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि रूप साहित्यिक सृष्टि ही नहीं है बल्कि यह उसकी महान्तरम सृष्टि है। यह कर्मा एक नया स्वरूप है।

रैल्ड फ़ॉक्स उसे केवल कल्पना पूर्ण धार्याम से कुछ गद्य ही नहीं मानता। वह तो उसे मानव के जीवन का गद्य मानता है। उसे (नाबेल को) वह उन प्रथम कर्मा के रूप में देखता है जिसने सम्पूर्ण मानव को स्वीकार कर उसे अभिव्यक्ति प्रदान की है। धन्य कर्मा वास्तविकता के जिन पतों को व्यक्त करती हैं वे भले ही उपन्यास की पहुँच के बाहर हों पर कोई भी कर्मा पुस्त्य स्त्री अथवा बर्ष्य के व्यक्तित्व जीवन की पूर्ण अभिव्यक्ति पूरी मफ़तता के साथ अथवा पूर्ण सन्तोष के साथ नहीं कर सकती।<sup>१</sup>

‘रैल्ड फ़ॉक्स’ का विचारक्रम विमुक्त व्यवहारवादी विचारक्रम है। उस पर मानव की महत्ता को गौरीर्षकर तक न जाने बामी समाजवादी विचारधारा ने बहुत अधिक प्रभाव डाला है।

हमर्जन के समान कुछ दार्शनिक और विचारक नाबेल को गम्भीरता से न लेकर उसे ‘बनावटी इतिहास’<sup>२</sup> बताने हैं। वे इतिहास को भी पूर्णरूप से

1 “The novel is the epic art form of our modern bourgeois society it reached its full stature in the youth of that society and it appears to be affected with bourgeois society's decay in our own time.... not only is the novel the most typical creation of bourgeois literature, it is also its greatest creation. It is new art form

—RALPH FOX *The Novel & The People* p. 80

2 “The novel is not merely fictional prose, it is the prose, it is the prose of man, life the first art to attempt to take the whole man and give him expression”

—RALPH FOX *The Novel and the People* p. 62.

3 “Novel is fictitious history”

—AUSTEN WARREN AND REXE WELLS *Theory of Literature* p. 223

वास्तविकता की परिधि में नहीं समझते थे। पर वास्तव में परंपरा का पालन करते हुए नाबेल समय के मायाम का गम्भीरता में प्रवृत्त करता है। प्रति प्राचीन वास में ही जेटो न साहित्य के बिगड़ जा कल्पित (मिथ्या) होने का आरोप लगा दिया था वही भावना अब तक साधनिक और नैतिक परंपरा में बनी जाती है। इन आरोप का उत्तर सर किमिप मिहनी और डाक्टर जाम्बान ने बहुत पहले ही वे दिया था कि साहित्य कभी भी उप (अर्थात् दार्शनिक) सर्व में वास्तविक होने का दम नहीं भरता। इसी कारण जब कोई पात्र भी नाबेल के प्रति झूठे होने का आरोप लगाता है तो गम्भीर प्रकृति वासा नाबेलिस्ट इसको बहुत बुरा मानता है क्योंकि उसकी निश्चित धारणा होती है कि कल्पनात्मक आख्यायक सत्य से कम विचित्र उनमें कहीं अधिक वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करता है।<sup>1</sup>

नाबेल की इसी परिभाषाओं की प्रतिक्रिया यथानुगतिक क्रम में साहित्य के क्षेत्र में होती रहती रही है। नाबेल की एक परिभाषा 'बर्स्ट घाक किउउम व मेन्क बर्नार्ड ड बाणे न उन लोगों के दृष्टिकोण से भी दी है जो नाबेल को साहित्यिक ग्रन्थ के रूप में नहीं पढ़ते बल्कि वह उसे एक 'इन डिफरेंट' कृति बाल पाठक की आँसों से पढ़ते हैं और पुस्तक पर कर मोख सेना जिनके धक्कापट के धक्कर के उपभोग का एकमात्र उद्देश्य होता है। ऐसे पाठक उपन्यासों में धारणन लम्बा की अपेक्षा नहीं करते। उनके अनुसार नाबेल वास्तविक घटनाओं की कहानी है जो काल्पनिक आँसों के जीवन में घटित होती है और उन कहानी के साथ पाठक का भी योग्य रहना है जो कहानी में बहिष्कृत पात्रों से परिचित होना हुआ विचित्रता का अनुभव करता है। सभी नाबेल साहसपूर्ण धर्मियान के कथात्मक से कुछ हाठ हैं वे विचित्र घटनाओं का विचित्र रूप में घटित होने का संयोग उपस्थित करते हैं—ऐसी बट्याएँ जिनमें हमारी माड़ी की गति तीव्र हो जाती है और सान लेने का क्रम घाये क्या हागा इसको घोष कर एक सा जाता है। जामूनी कथात्मक होने हैं, वे जिनकी रूयसोइवाटन की धार प्रकृत होते रहने हैं। वे सब परियों की कहानी के रूप में भी होने हैं और इनमें दृष्टांत की नैतिक और धार्मिक कथाओं का घरा भी होना है<sup>2</sup>।

1 "The earnest writer of novels who knows well that fiction is less strange and more representative than truth — *ibid* p 220.

2 BERNARD DE VOTO *The World of Fiction* p. 50



साधारण पाठक की दृष्टि से इस परिभाषा में नाबेल को बटनामों की मानमती की पिटापी का रूप देने का प्रयत्न किया है और सच पूछिए तो केवल साधारण पाठक उपन्यास से इससे अधिक और कुछ बाहता भी नहीं है।

रोडम ए नाबेल नामक पुस्तिका में वास्टर एमेन व नाबेल को एक और भेदगार परिभाषा दी है। वे लिखते हैं कि मैं नाबेल की परिभाषा देने का प्रयत्न नहीं करूँगा क्योंकि जिस कार्य में प्रत्येक घालोचक प्रयत्न रहा है वहाँ वह भगहोनी सी बात होती कि मैं सफल होऊँगा। वे परिभाषा के रूप में केवल यह मान कर चलते हैं कि नाबेल मुख्यतया लोगों के विषय में ही होते हैं।

किसी परिभाषा को सरलतम रूप में प्रस्तुत करने का इससे धन्य और सस्ता हँस और क्या हो सकता है ?

### हिन्दी में उपन्यास की परिभाषा, लक्षण और स्वरूप परिभाषिक शब्द की उत्पत्ति

किसी पारिभाषिक शब्द की उत्पत्ति कभी तो घसपट बातावरण और संक्षिप्त संवर्ष के साथ होती है और कभी समयमाने में व्यंग और विष्ट हास्य के रूप में। पर यदि घालोचक किसी नए पारिभाषिक शब्द को सृष्टि करता है तो फिर वह पूर्वोक्त संवर्ष से साहित्यिक विचारों की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखता हुआ किमो नई विधा को नई संज्ञा देता है उपन्यास के विषय में कुछ ऐसा ही हुआ है। उपन्यास का पाठ्य होना है—सम्यक रूप से स्थापन करना। इसका प्रयोग धनेषाओं में हुआ है<sup>१</sup>।

1 I shall not attempt to define the novel for where everyone else has failed it is improbable that I would succeed I am going to assume that novels are mainly about people  
—WALTER ALLEN *Heading a Novel* P 15

२ 'उपन्यास' शब्द संस्कृत की धम् धानु से बना है जिसका धर्म होता है—'रक्षणा' (धनुस पल)। इसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग हैं और धम् प्रत्यय का प्रयोग है। 'उपन्यास' का अर्थ है—सम्यक रूप से 'उपस्थापन' किन्तु बाद में धनेक साहित्यिक धर्म भी इस धार में प्रवृत्त हुए। 'उपन्यास' धार के निश्चय के धार और उनके धर्म इन प्रकार हैं।

उपन्यास के लिए मराठी में उस शब्द को लिया गया जिसमें उपन्यास की प्रवृत्ति मौलिक रूप प्रारंभ ही थी। बनना में जहाँ इस शब्द का प्रयोग

उपन्यास—परस्पर (१) दु से अपान प्लेस और पुट डाउन पुट नियर प्लेस बिफोर (२) दुइयुस एनीथम बिप कमिट दु बि केयर घाब (३) दु एवतप्लेन डिस्बाइब माइगुटसौ (४) दु प्रपोज सबस्ट हिम्स प्वाइन्स घाउट स्टेड (५) दु प्रुव इस्ताब्लिश पाबुमिस्टबिबली।

उदाहरण—(घ) मन्वोपन्यासेषु मैत्रवु—हितोपदेश निरुपमागर संस्करण ३

(ग) इत्युपन्यासोकादिषु बचनमुपन्यासम् मातृतीमापद (बम्बई संस्करण) २ स्वोपेन

(ल) उद्युपन्यासवति इत्यवर्ग य किरताडु नीय २ ३, टेस और प्वाइन्सघाउट

(व) किमिदमुपन्यास—प्रकल्पता ३ झाट इज बिल ईड इज प्रपोज और सेड

(घ) इत्येव्य—पाठकल्प्य मासिक महाप्रय का संस्करण २, १६

उपन्यास—बास पांडिसिपुल—(१) प्लेस नियर, डिपाजिट (२) सड प्रपोज (३) प्लेस इटाइटिड—(४) पिनेन कम्पुनिनेट—(५) बाट कारबई एम् एन इजम्पुन एडस हिम्सेड।

उपन्यास (१) प्लेसिय नियर दु, जस्टापोजीशन—२ ए डिपाजिट प्लेड (३) स्टडमेंड प्रपोजन पाबक कतु एव बचनोपन्यास प्रकल्पता (बम्बई) ५ मातृतीमापद (बम्बई) १ ८—३ (घा) पिनेन इन्डोइकन निर्यात: शान्तरलीकबचनोपन्यासमाजीशन प्रकल्पता ३३ अनुरोमपुरइबा यनुपन्यास अवरकोव (बम्बई) सो प्रम बेलीसंहार २ प्रोबर्सेस घाब थोस—३ (ड) एश्यजन रेक्रेस हिडिम्स एड घात्मक उपन्यास पुईम्, प्रकल्पता (बम्बई) ३ मातृदिदनि मित्र ४ साहित्यदर्पण ३६३—४ ए प्रिन्सिप ला—३ ए काइन्स घाब पीड हितोपदेश निरुपमागर संस्करण ४ ११४-६ प्रापोगिण्डिय प्रतावनम्।

१ मराठी में 'उपन्यास' के लिए 'बादम्बरी' शब्द का प्रयोग होता है। उपन्यास प्रसारणम्।

हुआ उपन्यास शब्द धर्मेशी के 'नावेल' शब्द का रुढ़ि पर्याप्त बना। 'नावेल' प्रारम्भ में लचीलता के रूप का लता हुआ भाषा प्रचलित परम्परा से विभक्त प्रवर्धित करता हुआ। फिर यह शब्द अपने द्वारा धार एक वातावरण समेटता बना और अब तो 'नावेल' शब्द एक पारिभाषिक शब्द बन गया है जिसके पास-पास अन्य समय में बहुत सी परम्पराएँ एकत्रित हो गई हैं। हिन्दी में भी उन्हीं को धारण करते हुए बंगाल के माध्यम से उपन्यास का अवतरण हुआ और फिर अब अपने ही प्रयासों से उपन्यास के सम्बन्ध का विस्तार प्राप्त होता जा रहा है।

### उपन्यास शब्द का प्रयोग

उपन्यास नामक साहित्यांग धार्मिक युग की देन है और यद्यपि यह शब्द संस्कृत भाषा का है, तथापि प्राचीन संस्कृत साहित्य में यह शब्द में बहू कम प्रयुक्त नहीं हुआ जिस शब्द में हम आज इसका प्रयोग करते हैं।

गर मोनियर-विलियम्स ने अपने संस्कृत-शब्दकोष में 'उपन्यास' के कुछ शब्द इस प्रकार दिए हैं—उल्लेख (Mention) धर्म-कथन (Statement) सम्मति (Suggestion) उद्धरण (quotation) संदर्भ (reference)

या मैकडोनलड ने अपने शब्दकोष में उपन्यास के शब्द किये हैं—विद्वान्ति (Intimation) धर्म-कथन (statement) उद्घोषणा (declaration) वाद-विचार (discussion)

इसके प्रतिरिक्त संस्कृत के नाट्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में 'उपन्यास' शब्द की प्रतिमुख मन्त्रि के उपदेश की शब्दा है। इन ग्रन्थों में समझा शब्द प्रकाशन का लिया गया है। इसकी दूसरी व्याख्या भी है जिसके अनुसार 'शब्द' की मुक्ति-मुक्त रूप में उपस्थित करना ही उपन्यास है।<sup>१</sup>

भारतवर्ष की कई प्राचीन भाषाओं में भी यह शब्द अन्य शब्दों में प्रयुक्त होता है। बर्माण की भाषाओं (नेपल भाषा) में यह शब्द उम शब्द में प्रयुक्त होता है जिस शब्द में हिन्दी के 'व्याख्यान बख्शना' शब्द शब्द प्रचलित है। 'उपन्यास' का दार्शनिक प्रयोग उत्तर भारतीय प्रयोग की शब्दा प्राचीन साहित्य की प्रयोग परम्परा में अधिक लम्बित है। धर्मशब्द के प्रसिद्ध श्लोक (२३) त्रिप्राण वानर-व्याख्यान-व्याख्यान मानोत्रण में व्यवहृत 'उपन्यास' बहुत कुछ शब्द शब्द का वाचक है।

१—'उपवसि हतोद्घोष उपन्यास लकीतित ।'



का क्रम बगला में इतना पड़ेगा । 'उपन्यास' शब्द का क्या के अर्थ में सबसे पहला प्रयोग बगला में मिलता है । सन् १८५६-५७ में मूरेव मुञ्जापाप्याय एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका नाम था 'ऐतिहासिक उपन्यास' । बगला साहित्य के इतिहासकारों ने इसे ही बगला का प्रथम उपन्यास माना है । सन् १८६१ ई० में रामचन्द्र श्ट्राचार्यद्वारा एक दूसरी कृति प्रकाशित हुई, जिसका नाम था 'सबुद्ध उपन्यास' यद्यपि यह बगला का दूसरा उपन्यास नहीं था क्योंकि 'धनासेरवररनुसाल' नाम की इस प्रकार की एक और रचना प्रकाशित हो चुकी थी फिर भी हमने यह ठीक पता चलता ही है कि सन् १८६१ ई० तक उपन्यास शब्द इतना कम चला था कि अन्य लेखकों द्वारा भी इसका लीन अर्थ में प्रयोग होने लगा था । 'उपन्यास' शब्द से पूर्व कथा कहानी याख्या उपकथा याख्या आदि शब्द बगला में प्रचलित थे । यह भी निश्चित है कि उस समय तक बगला के लेखक अंग्रेजी से प्राप्त साहित्य की एक सर्वथा लीन विधा 'नावेस' में पर्याप्त रूप में परिचित हो चुके थे । सन् १८७६ ई० में प्रकाशित एक पुस्तक में मूरेव मुञ्जापाप्याय ने एक स्थल पर लिखा है कि 'मैंने लगभग २ वर्ष पूर्व अंग्रेजी के 'नावेस' के अनुकरण पर बगला में एक पुस्तक लिखा थी । स्पष्ट है कि संकेत ऐतिहासिक उपन्यास नाम की रचना भी और ही है । वस्तुतः इस पुस्तक में एक कथा नहीं यद्यपि 'धंगरि विनियम' और 'सफल स्वप्न' नामक दो कथाएँ मकनित हैं । यद्यपि 'उपन्यास' की धारा की परिभाषा के अनुसार इन कथाओं में औपन्यासिक तत्व प्रायः शून्य के बराबर ही हैं, फिर भी यह कि लेखक ने 'नावेस' के ढंग पर इसे लिखन का शबा किया है, इसमें सन्देह नहीं कि कृति के नाम में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग 'नावेस' के ही अर्थ में किया गया है । मूरेव मुञ्जापाप्याय ने पूर्व भी इस शब्द का पाठुनिक अर्थ में प्रयोग होना था नहीं यह निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता क्योंकि सन् १८५६-५७ की इस घटना में पूर्व 'नावेस' के अर्थ में 'उपन्यास' शब्द का उल्लेख अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है । मनुविन नामकी के अभाव में यह भी नहीं कहा जा सकता कि 'उपन्यास' को एक लीन अर्थचर्या प्राप्त करने के लिये स्वयं 'याख्या' 'याख्यायिका' आदि परम्परागत शब्दों ने ही अर्थ का विस्तार क्या नहीं किया गया ।

अभी तक पत्र-पत्रिकाओं का प्रारंभ है 'बन-शरीर' नामक बगला पत्रिका में 'उपन्यास' का सबसे पहला प्रयोग बदायिन् सन् १८६४ में हुआ ।

अन्तिम के युग (१८७२-८३ ई० तक) बगला साहित्य का निर्माण-युग

कहा जाता है इस काल में 'उपन्यास' शब्द का साधुनिक धर्म में प्रयोग प्रायः सर्व-नाश्वरस्य में होना प्रारम्भ हो गया था ।

हिन्दी में 'उपन्यास' शब्द का सबसे पहला प्रयोग समभवतः सन् १८७१ में एक कथा-सूत्रक के नामकरण में ही—'मनोहर उपन्यास' के रूप में हुआ । डा. माताप्रसाद गुप्त हिन्दी के धार्मिक उपन्यासों की सूची में इसे दीर्घ स्वानु प्रदान करते हैं<sup>१</sup> । साधारण शुक्ल साधारण विषयी डा० बापुल्लय आदि प्रमुख इतिहासकारों की कृतियों में इसका उल्लेख महा पाया जाता है । 'मनोहर उपन्यास' शब्दक के नाम से इसके दो रूपाङ्कों का उल्लेख मिलता है । डा० गुप्त के मत में 'मनोहर उपन्यास' किन्हीं इतर भाषा की कृति का अनुबाध नहीं है । किन्तु क्या वास्तव में यह अनुबाध नहीं है ? इसका लक्ष्य कौन है ? इसका बन्धु क्या है ? इसमें उपन्यास के लक्ष्य किन्तु सामा एक है ? आदि प्रश्नों के लिए विस्तृत अनुसंधान कार्य की आवश्यकता है । परन्तु इस प्रसंग में कदाचित् इतना ध्यान भना पर्याप्त होया कि सर्वप्रथम सन् १८७१ में हिन्दी में उपन्यास शब्द का प्रयोग उपसम्भूत होता है ।

कुछ लोगों का मत है कि उपन्यास शब्द का साधुनिक धर्म में प्रचलन मराठी से प्रारम्भ हुआ किन्तु यह मत अशुभ है क्योंकि स्वयं मराठी में उपन्यास के लिए 'कादम्बरी' शब्द का प्रयोग होता है । इन प्रचलन के पीछे यह मान्यता रही होगी कि संस्कृत का प्रसिद्ध महाकाव्य 'कादम्बरी परिचय' के 'नारद' से मिलती-जुलती शीर्षक है ।

जैसा पहले कह चुके हैं कि उपन्यास के लिए 'नवल कथा' शब्द प्रचलित है । यह प्रचलन 'नारद' शब्द के प्रयोग में ही हुआ प्रतीत होता है । इस प्रयोग का कारण ध्वनि-मात्र ही माना जायगा । 'नारद' में 'नवल' और 'कथा' शब्दों का धर्म सम्बन्धित है, पर 'नारद' में ऐसा नहीं है अतः 'नारद' के साथ 'कथा' शब्द संयुक्त किया गया और शब्द बना 'नारद-कथा' ।

यहाँ पर यह कह देना भी अशुभचित न होगा कि उपन्यास का साधारण सूत्रक शब्द 'नारद' लटिका के विशेषण 'नारद' इनामियन और स्पेनिस शब्द 'नारदा' एवं अल्जीरीय शब्द 'नारद' से प्रयोग किया गया है । जैसा कि

१ डा. माताप्रसाद गुप्त "हिन्दी पुस्तक साहित्य" पृ० २७

२ English Novel, Latin Novella Italian & Spanish Novelle French Nouvelle.

पहले ही विस्तार से बताया जा चुका है, पुनरुत्थान-युग (रिनोसाँ) के धारण काल से अपने विभिन्न रूपों में इस शब्द का प्रयोग एक नैसर्गिक लक्ष्य कथा के अर्थ में पश्चिमी यूरोप की अधिकांश भाषाओं में होता था। इन लक्ष्य-कथाओं में साधारण जीवन की घटनाओं एवं रहस्यों का बहुत मुक्यत-यत्न में किया जाता था। १६वीं सदी में इंग्लैंड में भी इसका प्रयोग इतालियन लक्ष्य-कथाओं के अनुपातों के साथ साथ किया जाने लगा। किन्तु पश्चिमी सदाश्री में इन कथाओं का धाकार विस्तृत हो गया जबकि 'भावेस' शब्द का प्रयोग इन बीच कथाओं के लिये भी होता रहा।

### हिन्दी में उपन्यास की वृत्ति का विकास

उपन्यास की वृत्ति अपने निम्न रूप से उद्भूत कर ऊर्ध्वगामिनी-वृत्ति का रूप पा रही है। पहले उपन्यास मनुष्य की वास्तव-वृत्ति के साधन रूप में लिख गये। इसी वृत्ति से उद्भूत कथा तथा धार्मिक-कथाएँ 'स्टोरीज' और क्रिसे पहले भी पाये जाते थे। उनकी शैली में न तो साहित्यिकता का उकासा ही होता था और न साहित्यिकों के लिये उनमें कोई आकर्षण ही होता था। उपन्यास का अस्तार इसी साहित्य द्वारा उपेक्षित पर जन-साधारण भाषा पोषित और परिवर्धित-वृत्ति के विकास के रूप में हुआ। जो पहले धार्मिक तथा मनुष्य के अनुभव के परे की सीमा में घटनाओं में असुकरता की शक्ति का लक्षण हूँदने से बही अब अपने घास-पास के जीवन में अपने आनन्द का साधन हूँदने लग। घास-पास के जीवन में दूर-दूरवाले के राजकुमार और ग्यानी बुबियाँ के स्त्री-दि-वायन्ट किलर अबका 'सोहराब' और 'रस्तम' बिम धार्बर और उनकी सभा के एक-एक से बड़ कर कीर लोगों के प्रिया-कथाओं में भाग लूँद कर विश्वास को जमा कर हम रम से बुके थे। अब तो उपन्यास के नवीन रूप में जीवन के पुराने साधारण स्वरूप को नया महत्व दिया। दिन प्रतिदिन के जीवन में हम नन-नमयस्त्री और कामिदाम के यथा-क-इंग पर लक्ष्य-तत्वं हूँदूत के स्वाभ पर 'पत्ररूत' भेज कर अबका या ही धान-मिचौनी लेन कर लोगों को बिरयामे लगे। पर समाज की समस्याओं में भी कतिपय मेलकों का ध्यान गीबा और उन्होंने उपन्यास की जन-साधारण क जीवन का महावाक्य बना दिया। विपदा विबाह, दुःख-विचार, वर्ग-अपवर्ग मानव के अन्त का इन्ड अन्तर्जातीय सम्बन्ध की समस्याएँ सभी ता उपन्यासकार के सुगलीय विषय बन गये। उपन्यास में मनोरंजन के साथ ही नाय जीवन की समीक्षा का अर्थ में समावेग किया। उपन्यास अभी स्पुनिक के लक्षण प्रयोग की जति कल्पना लोक के बगड़ साहित्य को सीमा में प्रवेश कर गया। उपन्यासकार भी साहित्यिक लक्ष्य का ज्ञान गया।

किमी भी साहित्यिक विद्या का विकास पाठक के विकास पैलक की आवश्यकता और बातावरण के परिवर्तन पर निर्भर रहता है। जैसा मेलक का अध्ययन होगा जैसा उसके मस्तिष्क पर तत्कालीन घातबोलना का प्रभाव पड़ा होगा जिस प्रकार के पढ़ने वाले होंगे। उसी के अनुरूप उस साहित्यिक विद्या के बर्ण-विषय और स्वरूप का निश्चय होगा। उदाहरणार्थ उपन्यास का ही लीजिये। प्राग्भ में कृतुहल धार्मिकता उपन्यासकार का उद्देश्य था। पाठक केवल कुछ समय के लिए विचित्र बुनियाँ की चीर करना चाहता था। वैज्ञानिक विकास के प्रभाव में लोगों का विश्वास देव और राक्षस दोनों ही में था। राजा-पत्नियों के ही जीवन में विचित्रता सम्भव थी। बहुत घागे बड़े तो मभी के पुत्र और किसी दरबारी की पुत्री का प्रेम सम्बन्ध कथा का विषय बन गया। जिसके हाथ में तलवार थी उसके हाथ में धर्मिकार भी था। प्राचीनकाल में 'घट्टवर्षामवेत् वीरि' के सिद्धान्त के अनुसार घौली वय में विवाह सम्बन्ध स्थापित हा जाने स और 'धन्वा बधिर कोपी' ...<sup>२</sup> पति के प्रति अन्ध-अन्ध का संबन्ध स्थापित हा जाने से विवाहित प्रेम में बाहर की हवा समयता दुष्कर था। हाँ विद्या के जीवन में सुभावस्था के भाव धात से पर इत-उपवास और सादगी के जीवन में उन भावा को दबा लिया जाता था। कमी-कमी धामयशाता की कृपासता और किमी कुटिम या कुटिता के दुष्कर में पँस कर भोलपन की पहली मूम जन्म मर के प्रायश्चित् और बरमा जीवन का प्रारम्भिक रूप से लेती थी। उपन्यासों का बर्ण-विषय या कम यही राजाओं के विकास का नय-नाच और विद्याओं का दबा प्रेम जिसे सास ननर की बुद्धिपूर्वी से सिच-सिच कर बड़ना-बड़ता था और अन्त में विद्याओं केरपाया की बीखट पर नर पटक-पटक कर मरना पड़ता था। मरदारत बमोदारत तथा

१ घट्टवर्षामवेत् वीरि नववर्षा तु रोहिणी ।

दद्य वर्षा भवैकव्या घत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥

—पाराशर स्मृति अध्याय-७ श्लोक ६

इसी प्रकार का वर्णन 'संवर्त-स्मृति' के ६६ वें श्लोक और बृह-स्मृति के प्र० १ श्लोक २१ में पाया है।

२ बृह रोगवशा बड़ बन हीना । दद्य बधिर कोपी घति हीना ॥

देमैतु वति कर किय धरमाया । नारि नाच यमपुर बुज नाया ॥

—गुप्तलोकात् रामचरित मानस धरष्यकाण्ड



महर्षियों की दिनचर्या भी जो अहर्निधि विविध पद्धतियों से पूर्ण होती थी उपन्यास की कथावस्तु बना करती थी। कभी क्विटी निराधिका वासिका के आश्रयवाता के रूप में अपने क लोग से उस पर प्रत्याचार होने की कहानी पाठकों की सहानुभूति जमाने में बड़ी सहायक होती थी। सरकारी नौकर या पुतानी अंग्रेजों के जीवन को दूर से देखने की भावना मुसलमानी विरोधकर मनाओ एवं दाही जिन्दगी के ताजे अनुभव राज्य के दौर की कहानी मुसलमानी सम्प्रदाय की पुरस्तुत और बातहजीब जिन्दगी—ये सब दूसरी धोर एक धोर प्रकार की उपन्यास सामग्री प्रस्तुत करती रही। जिन्को परियों और विसिम्नों की कहानी खोजा द्रवियों और हरम की आसबाजिमा पर उतर आई। जिन्दगी मिल रही थी। पंडित जी की संतान संस्कृत तथा पुरानी हिन्दी की प्राचीन परम्परा से पूर्ण रूप से परिचित हुए बिना ही अथवा पूर्ण रूप से अपरिचित अवस्था में अंग्रेजी के सर्किट में आ पहुँची। उपर मौलाना साहब की प्रीसाद रटी कुरान की पुँबी के साथ पूरी अंग्रेजीयत के बापरे में उतर आई। अंग्रेजी लिबास और अंग्रेजी आस-बास ने हिन्दू-मुसलमान दोनों की बोटी-बाड़ी के भेद का मिटा कर कोट पैन्ट और टाई में एक कर दिया। घापसी ब्यबहार में वेम और साहब की ऊपर की जिन्दगी की लकम होने लगी। बिलापन की जिन्दगी की उड़ती हुई बातें सुन कर यहाँ के माहब 'मैड-इस-इण्डिया' और 'ऐम्बोइ-इयन' साया का जीवन आई. सी. एम. जाति के लालों का जीवन एक अजोब डर में बहन लगा। पुरानों का उनके डर के विन्द लिबापत होना स्वाभाविक था। उपन्यास का यही विषय बन गया (रबीन्द्र के) बंजाल में बहू-ममाज में इसका मार्ग लिया—अंग्रेजियन पहल बही आई—जिस प्रकार पहल लबाबियत का आस बासा था उसी प्रकार अंग्रेजियन बही के आकम पर छा गई और बम देणा और बिलापनी रंगारामुनी बग की जिन्दगी सायाँ की जिन्दगी बन गई। इसका टकरार प्रत्यक परिवार में पुराने डंगों में हुआ। मम्मिनित परिवार अथा में वृष्य और बाय पार्टी का भेद न विषय से परिवार छिद्र-मिद्र हान लगा। बोना और पूजा स्वात की पवित्रता की अपहू टारनिंग लम और डाइनिंग लम की स्वच्छता पर बिबाप प्यान दिया जान लगा। पारिवारिक आसन का केन्द्र गाँव कमरे के जीवन की समरवापा पर आ गया पर अभी भी बासी और गाँव के रूप में ऊपर का पुराना अनुशासन बासी था। घर का संघर्ष बाहर के संघर्ष का अनुकरण कर रहा था। ममाज में अँध-ओँध का धनी निर्धन का भी संघर्ष था। मजदूरों और इजिजनों की समरवा, स्त्री संघर्ष तथा पारिवारिक सम्बन्ध में सब महत्वपूर्ण न रही और तदनुकूल ही

उपन्यास को सामयानो बुकावें न सया कर इन्हीं दातवही वाक्यों-बातों  
 सामाजिकता और बीछिकता के लक्ष्य में योष देना पडा । संघर्ष ध्यति के  
 बाहर ही न था । यौन सम्बन्धों और सम्बन्धों को गेकर पुरान सम्बन्धों  
 और नुष्यों कि बीछता को लेकर ध्यति के लक्ष्य का अन्त-दुष्ट प्राप्त के बीचन  
 की विशेष बीमारी बन कर सामन ध्याया । प्रथम तक भोग बण प्रकार एक  
 ध्यति के स्वयं का अंशन करने के । प्रागे मे लोय ध्यति क अन्तर्दुष्ट का  
 अन्तर्दुष्ट श्रम उपस्थित करने मने । कमी-कमी तो बीचन मण्डो के सीतरी  
 रूपों का दर्शन मनोविज्ञान की प्रयोगशाळा के सीतरी की स्थिति का स्थिति  
 करया जान सगा । उपन्यासकार विज्ञाने और बताने के ल्याय पर मानो  
 कहने सगा—देख लो स्वयं और गुन लो स्वयं । उपन्यास साधुनि प्रगतिवाद  
 के लक्ष्य मे मने माइसा के अनुकूल अनुकूल धारणियों की पेशियों के अनुकूल अनुकूल  
 क मावों के अनुकूल रूप में प्रकट हुआ ।

### उपन्यास की तीस-यात्रा

उपन्यास की कृति मगानती-मो प्राचीनता के साहित्यिक लक्ष्य की ऊँचाई  
 पर हृष्टान्तात्मक कथा-कृति क रूप में वेद मूल्य मे एक पाठ के रूप में  
 विकसित कर फिर कृतामुर अथवा देवानुर संघर्ष साधु एवं असाधु प्रयोगों मे  
 होन एक कल्पना के दुर्भ्रम में विहार करते हुए यथा तथा संघर्ष लोके में  
 अविच्छिन्न स्वान को प्राप्त करती है पर यह उपन्यास होय के रात्र की मति  
 रात्रय मे पुन्र होने हुए भी मध्याह्न के पद का प्राचीन अथवा अथ छोटे एवं अथ  
 रात्रयों की ममता का भी नहीं माना जाता । फिर हमारी यह कृति नीति के  
 सहारे चलती हुई भी मनुष्य की प्रवृत्तियों की नीची परिवारिका बन  
 जाती है और कथा तथा साहित्यिकताओं के रूप में बहु अपने अन्तर्लक्ष्य को  
 प्राप्त होती है । दशरथ 'अरि' 'बाइबली और 'अथ अथ साधु' के रूप  
 में उपन्यास की कृति धरती एक यात्रा पूरी करती है जिसमें बाण के-मे  
 साहित्यिक जनों की कल्पना धरन का साहित्यिक लक्ष्य के प्रयासों मे  
 मवांगी है ।

हिन्दी में ता उपन्यास की परम्परा का आधार यही कथा-कृति 'बाण' की  
 के लक्ष्य मे मानी तथा अन्त-दुष्ट की रिम्मा कोई से अन्तर्दुष्ट साधित करने

१ यह एक प्रसिद्ध कृति का चित्रकार है जिसने मानवीय साहित्यों को बन  
 और बन के रूपों में व्यक्त किया है ।

हुई अपने पड़ोसी बंगला साहित्य एवं संज्ञेयी साहित्य में प्रचलित वर्तमान कासीय उपन्यास शैली से पूर्ण रूप से प्रभावित होती हुई एक साथ अनुसृतम अनुकरण एवं सीधे अनुवाद के रूप में प्रकट होती है। फिर तो एक सख कसाकार के मित्र जाने से उपन्यास हिन्दी में हीरे स्वान प्राप्त कर सेवा है और परम्परा को लेकर कई सख कसाकार उपन्यास का धातुनिकटा के संयम स्वान तक ले जाते हैं। अब कई धारों मिलकर उपन्यास साहित्य में एक साथ विस्तार के साथ प्रवाहित हो रही हैं। तीर्थयात्रा मैदानों में मन्तम की गहराई से होकर हो रही है।

उपन्यास का उद्भव एवं उपन्यास का विकास बहुत धीरे-धीरे और प्रत्यक्ष रूप में हुआ। जब अन्तरी नाटकीय परम्परा का समाव हुआ और कविता का हास हुआ तब बौद्धिक व्यक्तियों के धबकाव के अनुसृतम के रूप में ही उनी कथा साहित्य का सहाय सिया गया तो मात्र व्यक्तियों के विगमाने का मायन की। अपने यहाँ उपसृतम नामकी प्रचुर मात्रा में न होने से यहाँ यह सामग्री भी यहाँ से उनको हिन्दी में आने का प्रयत्न किया गया। उर्दू परसी संसृतम बंगाली संज्ञेयी और संज्ञेयी के माध्यम से कुछ अल्प मुसलमानी मापाओं के अल्प) भी प्रचुरित हुए। इन अनुवादों से मौखिक सैधको को प्रेरणा मिली और पुस्तक प्रकाशक को एक नई व्यापारिक योजना के आरम्भ का सूत्र प्राप्त हुआ। अनुवाद बढ़ावड़ निकलने से और सब धोर छा गए। तब तक मौखिक प्रतिभा ने अपनी शक्ति लौक भी और उपन्यास का बाजार गरम हो गया।

हिन्दी में उपन्यास एक महत्व की बन्धु बन रहा है। पहले उपन्यास में प्रति बिद्वज्जनों का बही भाव था जो एक साधु बेवसा के प्रति एक कर्म-कारकी पठित था होता था। कुछ कर उनका उपयोग भले ही कोर कर सगा था या बिद्वज्ज समाज धबका संरक्षक अनुवाद उपन्यास को निरुत्था के समय बाद में बुमापन के रूप में ही वगना था। उनका महत्व नोटकी देगत टेटर (बिद्वज्ज) देने से और मुजग मुमन से बढ़ कर कुछ नहीं था। २०वीं सदी की प्रथम का ब्यावस्थाओं में ही बीठ गई पर इस समय से पहले ही १९वीं शताब्दी से अनुसृतम में लोग का प्यान हमकी धोर जान लगा था और पारचाय संघ पर कुछ उपन्यास लिखे भी जान गए थे। प्रैजबन्ध ने उनी परम्परा को धातुनिकता की पृष्ठभूमि में धोर धारे बढ़ाया। एकदम से धारे बढ़ाया। एक स्टैंडर्ड की स्थापना कर दी। उपन्यास प्रयोगकर्ता नहीं रहा। उपन्यास की रचना साहित्य रचना का एक बंध मदी। उपन्यास का धाम्यन तथा पठन मुसलमानी



बिस्मयमें हस्यमान जगत के स्वभाव की व्याख्या प्रस्तुत नहीं की जाती उसे उपन्यास नहीं कहा जा सकता है।

हम स्वयं तो यह जानते हैं कि 'प्रेम' क्या है 'जीवन' क्या है, पर दूसरों को समझता से नहीं बठा सकते कि 'प्रेम' और 'जीवन' क्या हैं। 'पृथ्वी पिपेटर' द्वारा अभिगीत खेतों में 'बीबार' भी है। छठमें दो भाइयों की कथा है। एक भाई निरकार है और दूसरा भाई अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त सबपुत्रक। मरक के एक हस्य में कही से एक ठार भाठा है। बड़ा भाई छोटे भाई को तार पहने को देता है और फिर घोषा करता है कि छोटा भाई उसे बठाएगा कि तार में क्या सिखा है। बड़ी प्रतीक्षा के बाद बड़ा भाई झुझ्या कर कहता है, 'बोला त क्या सिखा है? छोटा भाई सर के पीछे के भाग को मुजताते हुए कहता है, 'मैं समझ तो गया पर समझ नहीं सकता'। बड़ा भाई कुछ देर तक उसकी धोर देखता है और फिर अपना सर हिमा कर छोटे भाई की मकल करती हुए खुद भी कहता है, समझ तो गया पर समझ नहीं सकता। जहाँ तक उपन्यास की परिभाषा करने का उकासा है मभी उपपुस्त खेत के बड़ भाई की स्थिति में है और पाठक या आलोचक अपने को परिभाषा पूछे जान पर छोटे भाई की सी विषम स्थिति में पाते हैं।

त्रिस प्रकार 'साहित्य' अथवा 'कविता' की परिभाषा करने के प्रयत्न सर्वत्र महा से किए गए हैं, किन्तु कोई भी एक परिभाषा संपूर्णतः स्वीकृत नहीं हुई है, उसी प्रकार 'उपन्यास' की अनेक परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों ने की हैं, किन्तु कोई भी एक परिभाषा उपन्यास से सब अर्थों और सब बहुपुष्पा की सीमाबद्ध नहीं करती।

उदाहरणार्थ हम कुछ परिभाषाओं पर विचार करेंगे।

डा. द्याममुन्दरदास 'उपन्यास' को वास्तविक जीवन की दार्शनिक कथा' के रूप में देखते हैं। यह परिभाषा बहुत बड़ा छड़ कर बनती है। उपन्यास वास्तविक जीवन के पते को संभावनाओं को भी अपने में धरकरता बनता है और कभी कभी कल्पना का आवरण इतना मीठा होता है कि हम उपन्यास और जीवन चरित्र में बड़ा फरक नहीं पाते हैं। मुदाबतमान श्री बर्मा का 'अन्तरी की शक्ती' शीर्षक उपन्यास इसका अच्छा उदाहरण है। दूसरी ओर प्रकृत निमित्तमी जामुमी और रामान ने उपन्यास में त्रिसवा संबंध वास्तविक जीवन से मरी के बराबर है।

उपन्यास महात् प्रेमचन्द 'उपन्यास को मानव चरित्र का चित्रमात्र समझती है। मानव चरित्र का प्रधान भागना और उनके रहस्यों को जोड़ना उपन्यास

का मूल तन्त्र स्थिर करने हैं।<sup>१</sup> यह तथ्य है कि जिस प्रकार सृष्टि में मानव का महत्व सर्वोपरि है उसी प्रकार उपन्यास में मानव-परिचय सबसे अधिक महत्वपूर्ण वस्तु है। कदाचित् इसीलिए प्रेमचन्द जी ने उपन्यास की परिभाषा करते हुए उपन्यास के सब में महत्वपूर्ण कर्त्तवीय की श्रेण ही मदिन किया है। उपन्यास का श्रेण सब कुछ उन्होंने बिना कह हुए ही समझने को छोड़ दिया है।

हिन्दी के श्रेष्ठ आलोचक आचार्य रामचन्द्र मुकुन्द ने उपन्यास पर विचार प्रकट करते हुए कहा है—“समाज का रूप पकड़ रहा है। उसके निम्न-निम्न वर्गों में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षोकरण ही नहीं करने आवश्यकतानुसार उनके टीका विन्वाम मुबार सबका निराकरण की प्रवृत्ति उत्पन्न कर सकते हैं।—शोक किसी जन समाज के बीच काम की बनि के अनुसार जो कुछ और चिन्त्य परिस्थितियाँ लड़ी होनी रूनी है उनको मोचर रूप में सामन जाना और कभी-कभी निम्नार का माग भी प्रत्यक्ष करना उपन्यास का काम है। उपन्यास की यह परिभाषा विरलेपणामक है और हमें उसकी धारणा तक पहुँचाने में महत्वक होती है। पर इन परिभाषा में अति सम्भीरत्व का शेष है। उपन्यास का उद्देश्य और कुछ भी हो पर समोरजन ता होता ही है। इन व्याख्या में उस ही सम्मिलित नहीं किया गया। यह परिभाषा हन्दी जेम्स और डा० मुत्तर की परिभाषाओं के निकट है। हेनरी जेम्स के अनुसार ‘उपन्यास अपनी व्यापकतम परिभाषा में जीवन का वैयक्तिक और प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब’ है। डा० हर्बर्ट जे मुत्तर की परिभाषा भी इसी में ही कुछ विसती-नुकती इस प्रकार है—“उपन्यास कुलत मानवीय अनुभव का निरपण है, चाहे वह यथार्थ ही सबका मार्ग। और इन प्रकार उपन्यास में अतिबाधक जीवन की आलोचना रूनी है”।<sup>३</sup>

१ प्रेमचन्द—कुछ विचार पृष्ठ ४२

२ A novel is its broadest definition a personal a direct impression of life.”

—HENRY JAMES *The Art of Fiction*

३ “The Novel is typically a representation of human experience whether liberal or ideal and therefore inevitably a comment upon life

हिन्दी उपन्यास साहित्य के लेखक बृजलालदास के उपन्यास सम्बन्धी विचार इससे बहुत मिलते-जुलते हैं। उनका कथन है कि उपन्यास मानव जीवन के छोटे या बड़े चित्र हैं और उनमें जीवन ही की व्याख्या की जाती है। संसार में बनी-बखि विज्ञान-सूक्ष्म सभी प्रकार के मनुष्य हैं और उन सभी का जीवन निर्वाह भी होता है। अबस्वानुसार इनमें भेद होते हुए भी मनुष्यमात्र में प्रायः एक ही प्रकार के सम-रूप भावना धारि रहती है अर्थात् प्रेम, ईश्वर भुक्त तथा निष्कृष्ठा धारि सभी मनुष्यों में समानरूपेण पाई जाती है। सुख-दुःख बहिष्ठा-सम्भ्रमता मित्रता-राधुता धारि ब्रह्म सभी मनुष्यों में प्रायः एक से मिलते हैं और बटनाबस एक दूसरे में परिवर्तित होते रहते हैं। उपन्यासों में जीवन की इसी सब अबस्वाओं में से एक या अनेक का चित्रण होता है और उनमें न किसी एक की प्रमुखता होते हुए भी जीवन की साधारण बातों की उल्लेख नहीं की जा सकती है, क्योंकि चित्र को पूर्ण करने के लिये सभी बातों की आवश्यकता होती है। अबस्य ही अन्तिम बात धीस्य रूप से रहती है और जीवन के उत्साह उच्च तथा महत्त्वपूर्ण भावों ही का प्रधान रूप से विस्तेरण रहता है। इसी में उपन्यासों की महत्ता है और वे पाठकों पर अपना प्रभाव डालते हुए उनके जीवन को उत्साह पूर्ण हृदय तथा गम्भीर बनाते हैं<sup>१</sup>। इन परिभाषा में जीवन की व्यापकता तथा महत्ता को समेटने का प्रयास अबस्य किया गया है पर जीवन के साधारण महत्त्व को द्वितीय स्थान देने से यह परिभाषा आधुनिकतम उपन्यासों को अपने में अक्षर नहीं पाती।

की विवरणानिह शोधाल का स्वान प्रपत्तिधीन धासोचकों में बहुत ऊँचा है। वे इस रूप विधान को आधुनिक रूप की संनिष्ट वास्तविकता के अरुप ही मानते हैं। उनके अनुसार आधुनिक उपन्यास साहित्य का एक नया और संनिष्ट रूप-विधान है जिसका विकास पहले यूरोप में हुआ भारत में नहीं। अनेक विद्वानों ने उपन्यास की परिभाषा करते हुए उसे आधुनिक रूप का महा काव्य बनाया है। इन कारण नहीं कि उपन्यास में पृथ्वी या पारलौक्य राज्य धारण द्वारा निर्दिष्ट महाकाव्य की रचना-प्रति का प्राप्त होना है, बल्कि हमनिधे कि रूप-विधान के अन्तर्गत रचनाकार को आधुनिक रूप की संनिष्ट वास्तविकता के अरुप ही विषय-वस्तु अनेक बखि-चित्रण और ध्यन्दि-बातों की मनोवैज्ञानिक स्थितियों और प्रतिक्रियाओं धारि की संनिष्ट और पूर्ण

१ बृजलालदास—हिन्दी उपन्यास साहित्य पृष्ठ १०-११ प्रथम संस्करण

योजना करके मन्दल जीवन को कलात्मक रूप में प्रतिबिम्बित करने का एक ऐसा साधन या माध्यम प्राप्त हुआ है जिसके जन्म एक सम्प्रदाय अर्थात् पीढ़ी में है। इस सम्प्रदाय की संभावनाओं का निर्देश हम विचार में बहुत स्पष्टता से दिया गया है।

डा० सत्येन्द्र की परिभाषा भी उपरोक्त परिभाषा के अति निकट है। वह कहते हैं— 'उपन्यास एक युग की नई अर्थव्यवस्था का नया रूप है। साहित्य के रूपों के उद्भव के सम्बन्ध में यह एक अत्यन्त सत्य है कि वे व्यक्ति और युग के सम्बन्ध और सामाजिक समाज का परिणाम होते हैं।'<sup>१</sup>

कहा गया है कि सचर इतिहास में ना तिमिना और सचर के विषय और नव बुद्ध धनन होगा है और सचर उपन्यास में तिमि और सचर का छोड़ कर सच बुद्ध टाक होगा है। डा सत्येन्द्र के शब्दों में यही विचार प्रतिबिम्बित होते हैं।

हिन्दी उपन्यास के सत्तक निबन्धकारों में श्रीवात्मर 'बहानियों के विवर्धन रूप का ही उपन्यास की संज्ञा देने हैं। 'उपन्यास अर्थात् सामाजिक एक कलात्मक अर्थव्यवस्था की देन है। बाद में विवर्धित होकर या साहित्य के रूप में ये अपना एक प्रधान स्थान बना लिया है और उसकी अर्थव्यवस्था प्रवर्धन का देने हुए ऐसा अनुमान होगा है कि अभी यह साहित्य क्षेत्र में इसमें भी अर्थव्यवस्था और नव ज्ञान करेगा। उपन्यासों के इस अर्थव्यवस्था का कारण यह है कि यह सर्वथा मानव जीवन में सम्बन्ध है और अर्थव्यवस्था का विवर्धन जिसे तथा अर्थव्यवस्था में मानव है। श्रीवात्मर जी के इस अनुमान का तो सभी स्वीकार कर सकते हैं कि उपन्यास का मातृ रूप बहुत महत्वपूर्ण है, परन्तु इस बात की परतजावृत्त नहीं कहा जा सकता कि आधुनिक उपन्यास अर्थात् बहानियों का विवर्धन रूप है। बहाना और उपन्यास साहित्य की दो पृथक् विधाएँ हैं और उपन्यास को बहानों का विवर्धन रूप कहना ऐसा ही है जैसे बीटों को बीटों का विवर्धन रूप में वर्धित होता रहना। उपन्यास की वृत्ति बहानों के विवर्धन में

- १ निबन्धकारिता बहाना—हिन्दी साहित्य के ८० पृष्ठ पृ० १४१ सं० १४
- २ श्रीवात्मर एम० ए० बी० एच० डी० 'साहित्य क्षेत्र (आधुनिक उपन्यास) (बुलाई-अपन १९३६) पृ० १-७।
- ३ निबन्धकारिता श्रीवात्मर—हिन्दी उपन्यास—पृ० २, सौन्दर्य सम्बन्ध २००३।



होती हुई अक्षय्य भाई है पर विकसित रूप में उपन्यास विधा के रूप में स्वतंत्र रूप में विकसित हुआ है। कथारमक साहित्य में वर्णित वस्तु जीवन जीवन और प्रकृति के बीच में चार प्रकार के सम्बन्ध हो सकते हैं और उनके आधार पर कथारमों का वर्गीकरण हो सकता है। दुर्लभ और अममक सम्भव गुप्त बन सकता है। आज की दृष्टि से कहा जा सकता है कि धार्मिक उपन्यास उत्पन्न हुआ है रोमांस से ही पर अपनी पृथक् सत्ता की घोषणा के लिये और रोमांस तथा अपने बीच एक स्पष्ट विभाजक रेखा खींचने के लिये यही कहता है कि जहाँ रोमांसकार प्रथम दो प्रकार के सम्बन्ध को-अपजीव्य तथा आधार के रूप में ग्रहण करते थे वहाँ हमें उन्हें सर्वथा अलग कर त्याग दिया है। हमारा सम्बन्ध जीवन के तृतीय तथा चतुर्थ प्रकार से ही है। अतः हम कह सकते हैं कि इन यथार्थवादी दृष्टिकरण की सचारी रोमांस के रूप पर चढ़ कर जीवन के पक्ष पर निकली या धीरे-धीरे परिस्थितियों के बीच न चढ़ कर साठ हस्त ही बहल गया प्रथम में कहिये कि परिचित होने की विद्यया उत्पन्न हो गई। रच की सामग्री वही थी पहिले वैसे ही ये अर्थ भी वही बापू और भी पर बाहक बहल गया था उनके विचार दूसरे के वह किसी दूसरे अर्थ में याथा के लिये निकला था अतः क्या साहित्य के बाठाकरण में कायाकल्प का हस्त उपस्थित हो गया ? ।

इन गद्य-रस में देवराज उपाध्याय ने प्रबन्ध काव्य रोमांस और उपन्यास का अन्तर स्पष्ट करने की चेष्टा की है। इसी विचार को पुष्ट करते हुए डॉ० रामप्रसाद टिकेरी ने उपन्यास और कथारमों, जीवन का परिच्छेद सम्बन्ध लिखा है। उनका कहना है कि 'वर्तमान प्रवाहनुकूल यथार्थ मानव जीवन ही उपन्यास लेखक को सामग्री प्रदान करता है और उपन्यास बहुत अंशों में इसी जीवन की अनुकूलि है जिस प्रकार को यथार्थ मार्ग पर किताबों के हस्तों को रगता हुआ प्रकृत होता है जमा भाति काम के अविश्व प्रवाद में जीवन धारण-रक्षण धार बनता जाता है। जीवन में प्रकृति भी है और माय ही गाव विस्तार भी जिन्नु प्रकृति ही उपन्यास विनिष्ट धर्म है। उपन्यास भी इस प्रकार के विश्व उपस्थित करता है जो पक्ष-मन बदलता रहता है और मय रंज नय रूप सर्वान हस्त सामने प्रस्तुत करता है।' स्पष्ट रूप में उपन्यास का तुलना किसी राज मार्ग पर चलन अथवा हाथ हुए विद्याम वर्णन में की है जिसमें प्रतिपाद्य यथार्थ जीवन

की छाया पड़ती रहती है। यह तुलना प्रत्यक्ष समीचीन है, यह बात अनेक उपन्यासों में यथास्थान निरूपण की प्रवृत्ति से भी सिद्ध होती है। एमिल जोसा न भी प्रयोगशील उपन्यासों के लिये वास्तविक जीवन से अधिक से अधिक तथ्यों का एकत्र करने तथा उनके उपयोग की आवश्यकता पर अधिक जोर दिया<sup>१</sup> है।

उपन्यास सम्बन्धी इस विचारधारा में बहाँ एक धार यह प्रकट हुई है कि यह जीवन का सँसा जीवन है वैसे ही चित्रण करता है पर दूसरी धार यही तथ्य उसकी सीमा-बन्धन भी बन जाता है क्योंकि उपन्यास का उद्देश्य वर्णन का प्रतिबिम्ब एवं फोटोग्राफिक रिप्रजेंटेशन मात्र न होकर उसको उपन्यासकार के माध्यम की रमायनिक प्रक्रिया के बीच से होकर निकालने का भी होता है। उपन्यास का जीवन का पत्रकार की रिपोर्टिंग से घाग बड़ा कर एक कलाकार की विषय-चेतना का स्पर्श देने का भी उद्देश्य हाता है प्रथम म चार्ज मूर की उपन्यास की परिभाषा— 'उपन्यास जो 'समकालीन' इतिहास ही होना चाहिये चाकि वह हमारे पुत्र की सामाजिक परिस्थितियों की वास्तविक तथ्य पूर्ण प्रतिवृत्ति हो सके। —औ इसी सीमा का अन्तर्गत घाती है और हम उपन्यास की 'विकास यात्रा' के एक स्टेज तक ही पहुँचाती हुई प्रतीत होती है।

जीवन की पत्रकारों का ध्यान में रहता हुए डा० गुस्तावराम ने उपर्युक्त परिभाषाओं के अभाव को सुधारते हुए उपन्यास की अपनी नई परिभाषा पत्रन का प्रस्ताव किया है। अने-तुलन दृष्टि में और यथासाध्य महत्त्व हा म न निम्न लिखित दृष्टि में उपन्यास की अब तक कलाई हुई परिभाषाओं में अपनी एक और परिभाषा जोड़ते हैं— 'उपन्यास कार्य-कारण गुणना म सँसा हुआ वह गद्यत्मक कथानक है जिसमें अनेक-वृत्त अधिक विस्तार तथा वर्षाशरी के साथ जीवन का प्रतिनिधित्व करत बात व्यक्तिया म सम्बन्धित वास्तविक या काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रमायनिक रूप में उद्घाटन किया जाता<sup>२</sup> है।

इसी का साथ ही साथ डा० गुस्तावराम का और भी कहना है कि 'उपन्यास म कल्पना का पूरा समय और व्यापक रहता है। उपन्यासकार विद्यमानिक की सी सीमा सृष्टि बनाता है किन्तु बहुरा की सृष्टि व नियमों में भी बसा रहता

१ डा० रामचन्द्र टिबेरी— 'आत्मकथा'—१३ उपन्यास अंक अक्टूबर सन् १९२४ पृष्ठ ३१

२ डा० गुस्तावराम— 'काव्य के रूप'—पृ १२६

## उपन्यास तथा साहित्य के अन्य अंग

1. May God make this world, my child, as beautiful to you as it has been to me.

*Blake to old age*

2. "He beholds the light and whence it flows,  
He sees it in his joy

### साहित्य

साहित्य उच्चतर चेतना की बाणी है जो मनुष्यता के स्वर में सहयोग देती है। साहित्य का धर्म रचना (क्रिया के धर्म में सजा के धर्म में नहीं) नहीं सत्त्व साधना का सुवासित मुमन होता है। मण्डरीप के प्रकाश में—जब मैं—प्राणमें साहित्य जगत है और जीवन में संस्कारों तारों के साथ पलता है। उक्त चेतना का जिसका बाह्य साहित्य रहा है—रबोम्र-सा साहित्यिक निर्माण करता है व्यवसाय के नियम पर उसकी मृष्टि करता है धारणा के नियम। जब निर्माण का प्रयाजन बढ़ जाता है, तब सब मार्ग बाजार की ओर हो जाते हैं।

### बाह्यमय

मनुष्य की विभायता उसका विचारना से मिला हुआ बाणी का बरदान है। उक्त बाणी के उपरु द्वारा न बाणी के काय का उद्घाटन एवं संबर्द्धन मित हुआ। बाणी की मूर्त्ता एवं हरिष्णता के साथ साथ मनुष्य का मृष्टि स्वापित्व तथा मनुष्य बाणी के उपबाग विनिर्माण की उन्मूष्णता की भी तिष्ठि हुई। कतिपय दार्शनिका को दृष्टि में बाह्य संसार मनुष्य के ध्यान-करण की मृष्टि का विस्तारमात्र है। मनुष्य का संतीय केवल ईश्वर प्राप्त ज्ञान (विद गारुणादि) में ही नहीं हो जाना उनमें धारि प्रवृत्ति का मन्त्रमना की भाँति बाह्य-संसार की धनधनता के प्रति स्वयं धरणी रहस्यात्मक धरणा के प्रति कुतूहल की शक्तता रहता है। प्राचीन संस्कृत प्रतिनिर्मित के प्रति कुतूहल ही होकर नहीं रह जाना उनमें विचार का मन्त्रमात्र भी होता है और धारम्भार इनके भावना में धनुषुनि भी शानी है। जो ज्ञान जो कुतूहल और जो धनुषुनि

होती है उन्हें वह भीतर ही संकित नहीं रहता। अन्तःकरण में बाहर भी करता रहता है। भीतर में बाहर वाली या बाह्य उन्हें में धापी है। बाह्य के इसी बाह्य प्रसुद्धिबन्ध का आकलन बाह्यमय कहना जाता है।

अन्तःकरण की विभक्तता से बाह्यमय को विभक्तता भी होती है। एक धार अन्तःकरण की उत्पत्तिना की प्रविष्टि होती है तो दूसरी धार उसकी उत्पत्तिना व्याकुल रहती है। एक में एक बन्ध या शक्ति का रूप प्रत्यक्ष होता है विभक्त दूसरी में सम्मान हो सकता है। दूसरे में स्वर्ण या ज्ञान सुस्थ रहता है जिसमें दूसरे का अन्तःकरण विभक्त नहीं विचार के नियम उत्पन्न होता है। एक का प्रमाणन प्रमाण करना होता है। दूसरे का प्रयोजन सर्वशेष कराना होता है। बाह्यमय को इन स्थितियों को 'शक्ति का बाह्यमय' और ज्ञान का बाह्यमय' कहा गया है। पहले के नियम पारिभाषिक सम्बन्धना में शब्द और दूसरे के नियम शक्ति का संज्ञा निर्दिष्ट हुई है।

### साहित्य का नाम-करण

'शब्द' की दूसरी संज्ञा 'साहित्य' है। साहित्य' में—शब्द और अर्थ सहित रहने हैं। शब्द या शब्दों में किमो न किमो अर्थ पार्श्व प्रपञ्च वस्तु का संज्ञान निर्दिष्ट रहता है। शब्द और अर्थ में इन दो के कारण विचार-स्थिति

१. भारतीय साहित्य में साहित्य का अर्थ है— जो हित के साथ होने का बाह्य व्यक्त करे (सहितत्व भाव साहित्यम्)। दूसरी ध्युत्पत्ति है— शब्द और अर्थ के एक साथ मिलने के भाव को साहित्य कहते हैं (सहित्यो सम्बन्धयो भाव साहित्यम्) इसीलिये शब्दार्थ के सम्बन्ध में विचार करने वाले रोहित कृति गुरु, योग बन्धोक्ति रचन प्रसंगकार रस आदि को विवेचना को ही साहित्य मानते हैं। किन्तु एक साथ मिले हुए शब्द और अर्थ के भाव को साहित्य कहने का तात्पर्य ही यह है कि जिस रचना में शब्द और अर्थ इस प्रकार मिले हुए हों कि उन दोनों की अन्विष्टि से एक विशेष अन्तःकारीभाव प्रत्यक्ष हो वही साहित्य हो। इन दृष्टि से हमारे यहाँ प्राचायकों के जैसे काव्य कहा है वह वास्तव में साहित्य ही है। बन्धोक्ति जोविनकार बन्धक के साहित्य को परिभाषा बताते हुए कहा भी है—

साहित्यमनयो. शोभाप्राप्तितान्त्रित्वाप्यती ।

अन्वेष्याप्यनिरिक्तावबनोद्धारिष्यवर्चित ॥

दिसाई पड़ती है। कहीं शब्द से ही प्रयोजन होता है और कहीं शब्द से प्रयोजन होता है और कहीं शब्द और शब्द दोनों ही से प्रयोजन होता है। जहाँ शब्द और शब्द संयुक्त रहते हैं, उनका यथावत् सङ्ग्राह रहता है, न कहने भर के लिये समझने भर के लिये भिन्न कहे जाते हैं, तत्परतः भिन्न हो जाते हैं<sup>१</sup> यही साहित्य है। उनके संयुक्त होना और सङ्ग्राह से जो सृष्टि होती है उसी का नाम 'रस' है। यह सृष्टि 'रस' के मागे नहीं जाती इसकी चरम विभांति रस ही है। पार्वती-परमेश्वर के संयुक्त-सङ्ग्राह से 'कुमारसंभव' हुआ। कुमार के कौमार्य से सृष्टि का नियमन कर दिया यही शान्त (काव्य और शब्द) के कुमार रस की भी नीति है। पर साहित्य में सृष्टि एक बचन या त्रिवचन तक ही नहीं है, बहुवचन में भी है। यही कारण है कि सत्कार की कोई विद्या कोई उपविद्या ऐसी नहीं है जिस साहित्य अपने प्रामाण्य में न जा सके। यहाँ तक कि वह अपना भी निरीक्षण करता है। उसमें काव्य ही नहीं होता सास्त्र की प्रज्ञा भी रहती है। इसलिये 'साहित्य' में काव्य और उसमें सास्त्र का भी साहित्य है। पार्वत्य ने लिये काव्य को काव्य और उसके सास्त्र को 'साहित्य' संज्ञा ही गई। फिर यह इतना व्यापक हो गया कि बाह्य मय के पर्याय के रूप में भी प्रचलित हो गया जो अनुनात्म स्थिति है<sup>२</sup>।

### साहित्य की व्याप्ति

'काव्य' के अन्तर पर्याय 'साहित्य' और बाह्य मय के अन्तर पर्याय 'साहित्य' के कारण विद्या के क्षेत्र में विषम स्थिति उत्पन्न हो गई। पहले तो साहित्य को काव्य के रूप में विद्या ही कहने के, पंचमी विद्या साहित्य कहमाती थी पर कृति चित्र संगीत और प्रमितय के साथ काव्य को कला कहने का प्रचलन होने से यह उपविद्या की धरती में पहुँचा सा गई। काव्य में उपविद्या का साहाय्य रहता है, उसमें मूर्तित्व चित्रणत्व भगीतत्व वा गानत्व या प्रमितयत्व वा शब्द तत्व सहायक के रूप में पाते हैं। इन सहायकों को भी

१ "विरा घरय जल बीज सम-कहितत भिन्न न भिन्न"

२ कृष्णक ने भी साहित्य शब्द का प्रयोग उसी शब्द में विद्या है जिसमें काव्य का प्रयोग किया जाता है। यह उस युरोपीय साहित्य की परिभाषा से भिन्न है जिसमें तन्मूर्धे सुरशित भिन्नित बाह्यमय के लक्षण का ही साहित्य कह दिया गया है और जिसके अनुसार वे लोग वैज्ञानिक साहित्य-अध्यात्मिक साहित्य का प्रयोग करते हैं।

काव्य या साहित्य कह देन में हृदय का सम्मान चाहे बिजना ही बर बुद्धि का धोर अपमान है। मातृकता में कला का ही नहीं विज्ञान को भी साहित्य कहने लगे। 'काव्य साहित्य है, कला का साहित्य है, विज्ञान साहित्य है, उक्ति समिधारित रमणीय हा मकनी है विचारित सुम्य महा कविता कही जा मकनी है पर शास्त्र नहीं। जो काव्य या साहित्य को साहित्येतर से पृथक् करत है व शास्त्रविस्तृत के गाने ही। इनम उनसे हृदय का मकाप देवता मनमानी ही कही जा मकनी है, बुद्धिमत्तो नहीं।

काव्य की सत्ता पारमार्थिक या प्राणिनामिक नहीं है प्रातिबिम्बिक है। जा बिम्ब बाहर है उसका प्रतिबिम्ब भीतर है। जा बिम्ब भीतर है उसका प्रतिबिम्ब बाहर घाला है। बिम्ब स प्रतिबिम्ब तथा उस प्रतिबिम्ब का बिम्ब होना तथा प्रतिबिम्ब से हुए बिम्ब का फिर प्रतिबिम्ब सामन घाला काव्य प्रक्रिया में सदा होना रहता है। इसलिये काव्य न तो प्रमा है न भ्रम वह कल्पना है। कल्पना की सृष्टि का काम प्रथम क वाप से नहीं चल सकता बिम्ब क चारित्र के दर्शन रमणीयत्व के संवेदन धोर प्रतिबिम्ब के प्रदर्शन तथा प्रतिवेदन से हा चल मकता है। प्रथम धोर प्रतिवेदन के बिच परपरा की अपेसा होती है। इसलिये काव्य या साहित्य केवल निर्माता ही न ही सबड नहीं हाता प्रहोता या भावमिठा से भी मबड हाता है। कवम नेता से ही नहीं उसका मन्वन्व समिनेता से भा होला है। इसलिये साहित्य काव्य धोर नात्य का भी साहित्य है।

साहित्य के निर्माण म कभी मकन्व की स्थिति रहती है, कभी समुत्पन्न की धोर कभी निरवय या विमर्श की। उसको घटना मकन्व में समुत्पन्न में धोर विमर्श न निपनी रहती है। पर वह घपनी घटना का विस्तार करके मजल करना है। कविता हा उन्मत्त या नाटक हो निरन्व या घाषाचना हो मर्बन्व उठे घपनी घटना का विमर्शन पोड़ा-रन्व करना ही पडना है। घटना का विमर्शन होला है विज्ञान नहीं। इसी में एक की कविता डूमरे की कविता में एक का उन्मत्त डूमर क उन्मत्त में एक का नाटक डूमरे के नाटक में एक का निरवय डूमरे के निरवय में एक की घाषाचना डूमरे की घाषाचना डूमरे की घाषाचना में बिच होती है, पर नाप ही उनमें समिप्रता भी रहती है, मर्बन्वता या निरवयता की। व्यक्ति-व्यक्ति के उक्त निप्रत्व को व्यक्ति-व्यक्ति कहने हैं परी प्रथम बिन्वन्व में प्रदर्शित होला है तब बिच घाषाचना होन के वाग्ग्य रचना व्यक्ति-व्यक्ति हा जानो है तब बिच

आत्मपरक होने के कारण रचना व्यक्तिवादिनी हो जाती है। इस प्रकार साहित्य में अन्तःकरण की सभी प्रकृतियाँ काम करती रहती हैं, कहीं प्रधान रूप से कहीं गौण रूप में। इसलिये साहित्य में अन्तःकरण की (मन चित्त बुद्धि अहंकार औ) वृत्तियाँ का साहित्य रूढ़ा है और तत्प्रयत्नस्वरूप कविता उपन्यास कहानी—नाटक निबन्ध प्रबंध-आलोचना उसकी छाया प्रकाश का भी साहित्य रूढ़ा है।

इस प्रकार साहित्य अपने आभाव में जितना अधिक समेट सकता है उतना अधिक कोई साहित्येतर बाह्य मय कभी नहीं समेट पाता। साहित्य में समन्वय की प्रवृत्ति है और साहित्येतर में असमन्वय की। साहित्य साहित्येतर को अपने पास ही नहीं बुलाता वह साहित्येतर के पास जाता भी है। कभी साहित्य अग्री हाता है, साहित्येतर अंत्य कभी साहित्येतर साम्य होता है साहित्य साधन। पर वह कभी नहीं हो सकता कि साहित्य साहित्येतर हो जाय या साहित्येतर साहित्य काय्य ज्योतिष नहीं हो सकता ज्योतिषकाय्य नहीं हो सकता। काय्य में ज्योतिष बुलाया जाता है और ज्योतिष में काय्य जाता है। ज्योतिष स्वयं काय्य में नहीं आता और ज्योतिष काय्य में स्वयं नहीं बुलाता। काय्य की समन्वय वृत्ति उसे ही ज्ञान को प्रति करती है। इसे वों भी समझ जा सकता है कि कोई ज्योतिषी (केवल ज्योतिष ज्ञान के रूप पर) साहित्यिक नहीं हो सकता साहित्यिक साहित्यिक ता है ही ज्योतिषी भी हो सकता है। जब ज्योतिषी ज्योतिष के अर्थ की रचना करेगा तो उसमें सबसे अर्थ बोध का प्रयोग रहेगा और जब कोई साहित्यिक ज्योतिषी होगा और वह ज्योतिष के अर्थ का निर्माण करेगा तो उसमें आरता और समन्वय का नियोजन करेगा।<sup>१</sup> बीच के<sup>२</sup> व्याकरण के<sup>३</sup> कई अन्य संगृह्य सं चान्ता और समन्वय के नियोजन पूर्वक रच मय है। इतल पर भी के बीच की ही सम्पत्ति है। साहित्य का नहीं। पुराण काय्य हीसी पर किने मय है, पर के पुण्य ही है काय्य नहीं। काय्य भी पुराण हीसी को प्रण करके निगा जा सकता है, पर वह काय्य ही होया पुराण नहीं। समन्वित मानस न परिष्कार पूर्वक पुण्य हीसी का स्वीकार किया इसलिये वह पुण्य नहीं कहा जा सकता उसे काय्य

१ काशीशास्त्र का 'ज्योतिषविद्याभरण'

२ अरक एवं मुघल विद्वानः ज्ञान गोष्ठी के इतलंग।

३ अट्टिकाय्य।

कहो कहेंगे। पुराण की वीली नाक-मग्ना है, भाषण है बन्धामुपण है।<sup>१</sup> विज्ञानीय या विज्ञापनी बन्धामुपण पहल सेन कर भी कोई नारतीय विज्ञानीय नहीं बन जाना। उनमें विज्ञानीय होने का भ्रम ही सकता है। या गमबन्धि मानस को पुराण करने हैं, उन्हें इनी से युद्ध भ्रम है, निष्ठा मान है।

यदि कोई यह कहे कि साहित्य और साहित्येतर पारंपरिक को मान लेन पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि साहित्य को ऊँची बन्धु है, यथा ऊँची बन्धु हा या न हो उमकी भाषना से कोई ऊँचा महा हो सकता तो कहना पड़ेगा कि विरहकथ को समेटने बाद साहित्य के सम्बन्ध में यह भी भ्रान्ति हा है। किसी साहित्येतर वाक्य का उद्देश्य या लक्ष्य धर्म होना काम होना धर्म होना मोक्ष हाया। साहित्य का लक्ष्य एक साथ अनुबंध धर्म प्राप्ति है। यही भी साहित्य की समन्विति ही है। चार वर्गों का भाग पुराणार्थों का साहित्य यहाँ रहता है। जो साहित्य में कथन धर्म केवल काम कथन धर्म या कथन मोक्ष देखन हैं वे साहित्य का साहित्येतर के रूप में समझ बैठने हैं। या साहित्य की धीमी में प्रस्तुत साहित्येतर का साहित्य करना चाहते हैं। जिस प्रकार साहित्येतर को साहित्य समझना भ्रम है, वही प्रकार साहित्य को साहित्येतर समझना भी भ्रम है, और इस भ्रम का भ्रमण का सत्य यथाना ता भापी भ्रम है, महा भ्रम है। साहित्य में अनिवासी कीर्ति नहीं, बसती उसमें समन्वितिवादा नीति ही बनना है। इन्को न कहा गया है कि साहित्य लोक-साधन ही नहीं करना, पर-लोच-भाषण भी करता है। अपन केवल प्रसारण ही नहीं होना परिष्कार भी होता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न के कारण होती है। मनु के प्राण होने पर रज धीर तम बर जाते हैं। साहित्य-भाषना से साहित्यता की वृद्धि हानी है। साहित्य को रचना के अनुगीजन से उन्मोहण तो एकदम दूर जाना है, पर कभी-कभी उन्मोहण उस साहित्यता के माय यह सकता है। इन्विय साहित्य में कभी अनुगीजन होगा है, कभी विम्वय पक्षिति। इन्को से साहित्य में दो प्रकार के प्रकार बनन हैं—एक को भाष्य प्रवाह धीर भ्रमरे

१. तत्र प्रतिपत्तयैकवर्गोपगन्धराणि च ।

वसानुचरिपञ्चक वराणं पञ्च तजलम् ॥ (विश्व पुराण एवं प० ५०)।

अत्र सर्वे विलपाश्च स्वार्थं पोषणमुत्तमः ।

अत्रसरेयानुक्तवा विरोधीपुष्टिरावय ॥१॥

वसानुचरिपञ्चक वराणं पञ्च तजलम् (स्वयं अन्वय एकोक

भाषणत २।१०।१-२



आत्मपरक होने के कारण रचना व्यक्तिवादिनी हो जाती है। इस प्रकार साहित्य में अंत-करण की सभी प्रकृतियों काम करती रहती हैं, कहीं प्रथम रूप से कहीं और रूप से। इसलिये साहित्य में अंत-करण की (मन चित्त बुद्धि अहंकार की) प्रकृतियों का साहित्य रहता है और तत्प्रयत्नस्वरूप कविता उपन्यास कहानी—नाटक निबन्ध-प्रबन्ध-आलोचना उनकी छाया प्रकाश का भी साहित्य रहता है।

इस प्रकार साहित्य अपने आभोग में कितना अधिक समेट सकता है उतना अधिक कोई साहित्येतर बाह्य मय कभी नहीं समेट पाता। साहित्य में समन्वय की प्रकृति है और साहित्येतर में अमन्वय की। साहित्य साहित्येतर को अपने पास ही नहीं बुसाता वह साहित्येतर के पास जाता भी है। कभी साहित्य अर्धी होता है, साहित्येतर अग कभी साहित्येतर साम्य होता है साहित्य सामन। पर वह कभी नहीं हो सकता कि साहित्य साहित्येतर हो जाय या साहित्येतर साहित्य काव्य ज्योतिष नहीं हो सकता ज्योतिषकाव्य नहीं हो सकता। काव्य में ज्योतिष बुसाया जाता है और ज्योतिष में काव्य आता है। ज्योतिष स्वयं काव्य में नहीं आता और ज्योतिष काव्य को स्वयं नहीं बुसाता। काव्य की समन्वय वृत्ति उसे ही जाने को प्रेरित करती है। इसे भी समझ जा सकता है कि कोई ज्योतिषी (केवल ज्योतिष ज्ञान के ज्ञान पर) साहित्यिक नहीं हो सकता साहित्यिक साहित्यिक तो है ही ज्योतिषी भी हो सकता है। अब ज्योतिषी ज्योतिष के ग्रंथ की रचना करेगा तो उसमें केवल अर्थ बाध का प्रयास रहेगा और जब कोई साहित्यिक ज्योतिषी होगा और वह ज्योतिष के ग्रंथ का निर्माण करेगा तो उसमें आरता और रमणीयता का नियोजन कर देगा।<sup>१</sup> बीच के<sup>२</sup> आकरके के<sup>३</sup> कई ग्रन्थ संस्कृत में आरता और रमणीयता के नियोजन पूर्वक रचे गये हैं। इतल पर भी वे बीच की ही सम्पत्ति हैं। साहित्य की नहीं। पुराण काव्य शैली पर लिख गये हैं, पर वे पुण्य ही हैं काव्य नहीं। काव्य भी पुण्य शैली को ग्रहण करके लिखा जा सकता है, पर वह काव्य ही होमा पुण्य नहीं। रामचरित मानस में परिष्कार पूर्वक पुण्य शैली को स्वीकार किया इसलिये वह पुण्य नहीं कहा जा सकता उसे काव्य

१ कालीदास का 'ज्योतिषिबालरस'

२ अरक एवं सुभुत विद्वेषतः पात्र गोष्ठी के प्रसंग।

३ अहिकाम्य।

कहो कहे। पुराण की चीजों मात्र-मग्ना है, मापन है बस्त्रामुपलक्ष है।<sup>१</sup> विज्ञानीय या विज्ञायनी बस्त्रामुपलक्ष पढ़न मन पर भी कोई भारतीय विज्ञानीय नहीं बन जाता। उसमें विज्ञातीय होने का भ्रम हो सकता है। या रामचरित मानस को पुराण कहते हैं, उन्हें इसी से कुछ भ्रम है, मिथ्या ज्ञान है।

यदि कोई यह कहे कि साहित्य और साहित्यवेत्त पार्ष्णिक को मान मने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि साहित्य कोई ऊँची वस्तु है अथवा ऊँची वस्तु हो या न हो उसकी साबना से कोई ऊँचा महा हो सकता ना कहना पड़ेगा कि विस्वरूप को मेटने वाले साहित्य के सम्बन्ध में यह भी भ्रान्ति ही है। किसी साहित्यवेत्त बाह्यमय का अहंसा या लक्ष्य धर्म होगा काम होगा धर्म हावा मोक्ष हावा। साहित्य का लक्ष्य एक साथ अनुसर्ग फल प्राप्ति है। यहाँ भी साहित्य की समन्विति ही है। चारों बरों का चारा पुरपासों का साहित्य यहाँ रहता है। जो साहित्य में कबल धर्म केवल काम कबल मन या केवल मोक्ष देखते हैं वे साहित्य का साहित्यवेत्त के रूप में समझ बैठते हैं। या साहित्य की चीजों में प्रस्तुत साहित्यवेत्त को साहित्य करता चाहते हैं। जिस प्रकार साहित्यवेत्त को साहित्य समझना भ्रम है उसी प्रकार साहित्य को साहित्यवेत्त समझना भी भ्रम है और इस भ्रम का दूसरों का साथ बसना तो मापी भ्रम है महा भ्रम है। साहित्य में प्रतिभावी नीति नहीं चलती उसमें समन्वितिवादी नीति ही चलती है। इसी से कहा गया है कि साहित्य लोक-साधन ही नहीं करता पर-मोक्ष-साधन भी करता है। उसमें केवल प्रसाधन ही नहीं होता परिष्कार भी होता है। ऐसी स्थिति सत्त्वोर्ध्व के कारण होती है। मनु के आप्त होने पर रज और तम दब जाते हैं। साहित्य-साधना में सात्विकता की वृद्धि होती है। साहित्य की रचना के अनुशीलन में समागुण तो एकदम दब जाता है पर कभी-कभी रजोगुण उस सात्विकता के साथ रह सकता है। इनमें साहित्य में कभी अनुसंजन होता है कभी चिन्मय संविति। इसी में साहित्य में दो प्रकार के प्रवाह चलते हैं—एक को आग्न्ध प्रवाह और दूसरे

१ सच प्रतिपद्यै चर्चोमम्बन्तराणि च ।

बदानुचरित्युचैव परात्तं पञ्च सप्ततमम् ॥ (बिद्युत् परात्त एव प० पु०)

एव तयो वितपद्यै स्वार्थं पोषतमूतयः ।

मम्बन्तरेशानुचया विरोधोमुक्तिराधयः ॥१॥

दशमस्य विद्युत्त एव नवानामिह सप्ततमम् (स्कन्ध प्रथमाय एतौट

भागवत २।१०।१-२

को अनुसूति प्रवाह कह सकते हैं। चार्ल्स प्रवाह के अन्तर्गत मलंकार, ब्रह्म-रीति और ब्रह्मेच्छि के मनु भाठ हैं और अनुसूति प्रवाह के अन्तर्गत उस व्यक्ति अनुसूति और अशिक्षित के मत। एक का सम्बन्ध काव्य या दृश्यकाव्य की परम्परा से है और दूसरे का सम्बन्ध नाट्य या दृश्यकाव्य की विकास-परम्परा से। साहित्य निर्माण में त्रिकोणात्मक स्थिति होती है। इसके एक कोण में कर्ता या निर्माता रहता है, दूसरे कोण में बर्ण्य का नेता रहता है, तीसरे में प्रहीता या सामाजिक होता है। नेता के साथ कभी अभिनेता भी या जाता है, अनुकार्य के साथ अनुकर्ता भी या जाता है। कर्ता का सम्बन्ध शब्द से नेता का सम्बन्ध अर्थ से और प्रहीता का सम्बन्ध प्रणाम-रस से होता है। प्रमुखतया इसका सम्बन्ध सामाजिक से ही होता है। वह कर्ता तथा अभिनेता में भी हो सकता है, पर स्वयं भेद से। कर्ता में वह जीव रूप में रहता है, नेता में वह बस-रूप में अभिनेता में वह बुद्ध रूप में और प्रहीता में फल रूप में।

चार्ल्सप्रवाह का सम्बन्ध शब्द से अधिक है, कर्ता से अधिक है। अर्थ से भी है, बर्ण्य से भी है। पर प्रहीता से उतना अधिक नहीं। इसी से जब कर्ता-निश्चित या व्यक्ति-निश्चित रचना होती है तो एक ओर तो वह व्यक्तिवाचिनी और दूसरी ओर प्रेमी-परक हो जाती है। उस दृष्टि से विवेचन करने पर चार्ल्स का ही विवेचन प्रमुख होता है।

अनुसूति का प्रतिपाद्य यह है कि चार्ल्स के रहने पर भी काव्य में कुछ और अपेक्षित रहता है। इसलिये इसी की अपेक्षा से सबको मानना चाहिये। व्यक्ति को चार्ल्स मानने पर भी वस्तु और उस दोनों की व्यक्ति मानी जाती है। वस्तु की ही व्यक्ति अपने स्वरूप के कारण केवल वस्तु-व्यक्ति भी होती है और मलंकार रूप वस्तु-व्यक्ति भी होती है। इस प्रकार व्यक्ति के तीन रूप हो जाते हैं। वस्तु का तात्पर्य है तथ्य। किसी तथ्य तक पहुँचना या किसी अनुसूति तक पहुँचना दोनों स्वतंत्रियाँ हो सकती हैं। जहाँ केवल तथ्य तक पहुँचना होना वहाँ अनुसूति न होयों पर जहाँ अनुसूति तक पहुँचना होगा वहाँ किसी तथ्य तक पहले पहुँचना हो सकता है फिर अनुसूति तक। पर तथ्य पर पहुँचकर ही अनुसूति तक पहुँच ही पायी है। अम होना है, पर वह संतुष्ट नहीं होता, अतएव 'ब्रह्म-व्याम' से सीधे अनुसूति तक पहुँच हो जाती है। अनुसूति प्रवाह

१ शतपत्रवेद व्यास-मुई द्वारा एक ही परम्परा एक ही बार भेदे जाने पर यह पता नहीं चल पाता है कि समस्त पत्रों की रचना किया एक ही ताब नहीं हुई है। इस कार्य में इतना अव्यक्त समय लगता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि सारा कार्य एक ही ताब हुआ है।

केवल रम का ही नहीं भाव भावाभास भावस्यैव भावोश्च भावशास्त्रि  
भावमभवत्ता श्रीर रमाभास का बोध भी रमात्मक ही कहना है ; यहाँ तक कि  
बाल्मिक प्रवाह जिसे बाल्मिक कहता है, उम 'नीरम' को भी यह प्रवाह रमात्मक  
ही मानता है । इसी न लेख-उपाय को काव्य नहीं माना गया । परंभी काव्य  
नहीं है अपने किसी प्रकार के रमात्मक बोध की स्थिति न देखकर ही ऐसा  
कहा गया है ।

परिणाम यह हुआ कि बाल्मिक प्रवाह और धनुमुनि प्रवाह दोनों के  
समन्वय में एक विनोद प्रकार की स्थिति उत्पन्न हुई । आचार्य और धनकाव्य  
का रूप स्पष्ट हुआ । तब यह स्पष्ट किया गया कि इनका तात्पर्य यह नहीं  
है कि जो बाल्मिक प्रवाह में है वे सब सबदा धनकार ही हैं और जो धनुमुनि  
प्रवाह में है वे सब सर्वथा धनकार्य ही हैं । जो धनकृत्य किया जान वाला  
होगा वह धनकार्य और जो धनकृत्य करने का साधन होगा वह धनकार  
होगा । साहित्यशास्त्र में 'धनकार' शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त है अपनी  
स्थिति इसकी यहिच है कि साहित्य-शास्त्र को धनकार धारण कहते हैं ।  
साहित्य का पर्याय धनकार' वा धनकार का पर्याय साहित्य' नहीं पर  
धनकारशास्त्र और साहित्यशास्त्र धनस्य पर्याय माने गए हैं । उक्त सब  
प्रकार के प्रवाहों का मेल या उनका समन्वय भी साहित्य वा साहित्यत्व के  
वाक्य है ।<sup>१</sup>

'साहित्य हृदय से हृदय का व्यवसाय है—जिनके कारण साहित्य धन्य  
नसी बाह्य अर्थों से धनम रूप पाता है और जिनके कारण साहित्य-साहित्य है—  
वह हृदय का अविदित तार है । संसार के असंख्य प्राणियों के सुख-दुख की  
परिस्थितियों और बाण्डा भिन्न हो सकते हैं पर सुख-दुख की अविदितता वा  
रूप सब में एक ही है । अविदितता वह तार है जो प्राणियों के भीतर से  
आनन्द-निरुत्पत्ता बन्ना गया है । इसका एक छोर यहाँ है जहाँ से सृष्टि के  
पुरुष प्रमाण वा प्राग्भ्य होगा है और दूसरा यहाँ है जहाँ सृष्टि काय रति  
में धनकृत्य होता है । साहित्य इसी तार को मटका बैकर प्राणियों में परस्पर  
गहानुभूति की अन्तःस्थापना उत्पन्न करना है । बौद्धिक वात्सल्य में इतर-इतर  
मटकने वाले बुद्धिजीवियों को एक मोचा पंक्ति में मले क मिये साहित्य इसी

१. ई. विद्वत्नाथ प्रसाद विद्याजी की 'रचयिता—संस्कारदेव प्रवर्तते के  
साहित्य' (शास्त्रीय उपाख्यान) से संकलित ।

सहित शब्द । सहित का 'धर्म' है विभिन्न वस्तुओं का मिलन या मेलन । इसका धर्म कस्याएँ सहित भी किना जाया है । साहित्य के मूल में एकत्रीकरण एवं कस्याएँ दोनों ही भावनाएँ रहती हैं । 'सहितस्य भावः साहित्यम्' में साहित्य में धनक वस्तुओं के समाहित होने का भाव उल्लिखित है । अतः साहित्य को हम साहित्यकार के भावों और विचारों का चारु-बचन कह सकते हैं ।

संस्कृत के धनक ग्रन्थों में साहित्य के स्वरूप का निरूपण किया गया है । भाद्र-विशेष के रचयिता छत्रवर<sup>१</sup> के अनुसार— 'परस्परसापेक्षायां तुल्यत्वायां युगपदेक क्रियान्वयित्वं साहित्यम्' अर्थात् परस्पर सापेक्षित समान कोटि की वस्तुओं को साहित्य कहते हैं । भाषा-विशेष के भावा प्रकार के निम्न-निम्न विषयों पर लिखे गये ग्रन्थ समूह को साहित्य का नाम दिया जाता है ।—सम्ब शक्ति प्रकाशिका<sup>२</sup> और विक्रमांकदेवचरित<sup>३</sup> नामक ग्रन्थों में भी साहित्य की व्याख्या इसी धर्म में की गई है ।

संस्कृत साहित्य में साहित्य काव्य के पर्यायवाच्य में प्रयुक्त हुआ है । साहित्य को काव्यार्थ के धर्म में प्रयोग करके बाले भाषायों में कविचक्र राजदेवचर मुकुलमट्ट प्रतिहारैन्दुराज और मञ्जक धारि हैं । साहित्य शब्द का प्रयोग प्रचिकित्तर शब्द और धर्म उचयवक्त काव्य के धर्म में ही किया गया है । यथा—

'शब्दार्थसोर्थाभावस्तद्विधानेनविद्या साहित्यविद्या ।'

ब्रह्मकृति जीवितकार राजानक कन्ठक ने साहित्य का विवेचन करते हुए इस बात को धीरे धीरे प्रचिकित्तर स्पष्ट कर दिया है । उनके अनुसार धर्म सास्त्रों की धरेरा काव्य में प्रयुक्त शब्द और धर्म में बड़ा भेद है । धर्म सास्त्रों में बर्तनीय धर्म के किसी भी वाचक शब्द का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु काव्य में कवि की धान्तरिक भावना के अनुकूल शब्द का ही प्रयोग होता है । धर्म सास्त्रों में केवल विषय का प्रतिपादन मात्र होता है । किन्तु काव्यगत धर्म में स-हृदय-मर्मज्ञ को प्राई-मादिन करन की अपूर्ण गति रहती है । काव्य में शब्द

१ भाद्र-विशेष छत्रवर पृ० १८.

२ 'तुल्यत्वायां युगपदेक क्रियान्वयित्वम् कृष्टि विशेष विषयित्वम् साहित्यम्' ।

—सम्ब शक्ति प्रकाशिका ।

३ विक्रमांक देव चरित १/११ ।

४ काव्यमीमांसा पृष्ठ ५

घौर धर्म का परस्पर महित भाव ही प्रत्येक शास्त्रों की अपेक्षा विस्तारपूर्ण होता है। काव्य में सामञ्जस्य विधान की कुछ अपेक्षा विधेयताएँ होती हैं। इसी दृष्टि में काव्य धर्म में प्रयुक्त साहित्य शब्द अपने सामान्य रूप से कुछ भिन्न होता है। इसीलिए उच्चतम साहित्य में शब्द घौर धर्म दोनों के परस्पर सम्बन्ध में उद्भूत एक विधाएँ अनुभवजनकान्वयी सायात्मिका शक्ति का होना अपेक्षित समझा जाता है। दकोन्टि धीविनकार न यही बात निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त की है—

‘साहित्य वह है जिसमें शब्द घौर धर्म दोनों की परस्पर स्वर्धमिम मनोहारिणी समापनीय स्थिति हो। वास्तव में ‘साहित्य’ में वाचक की वाचकात्तर के साथ घौर वाच्यकी वाच्यान्तर के साथ परस्पर एक की अपेक्षा दुम्भ का अपेक्ष्य घौर उत्कर्ष न हो कर, समान रूप में स्थिति होती है’<sup>१</sup>।

बबोन्ट रबोन्ट ने भी—‘साहित्य’ धीर्धक प्रत्येक में साहित्य के स्वरूप की मुम्भर व्याख्या की है—“महित शब्द में साहित्य की उत्पत्ति हुई धनएव वातु यत धर्म करने पर साहित्य शब्द में मिलन का एक साथ दृष्टिधौचर होता है। वह कैवय भाव का भाव के साथ साथ का भाषा के साथ प्रत्येक का प्रत्येक के साथ मिलन है, यही यही वरन् यह बतमाता है कि समुप्य के साथ समुप्य का धनीन के साथ धनीन का, दूर के साथ निकट का मिलन कैसा होता है।” यह परिभाषा उच्छ्रुत शब्दों में प्राप्त साहित्य शब्द की व्युत्पत्तिमुलक व्याख्या में विशेष प्रभावित प्रतीत होती है। घौर बातों के साथ महाकवि न साहित्य में समत्व घौर धनमत्व के सामञ्जस्य विधान की स्थापना की है। इस प्रकार साहित्य विरोधात्मक शब्दों में धरिरोध स्थापित कर सब की एकदुम्भ में बांधने का प्रयत्न करता है।

भाष्य के समान वाभाष्य दैधों में भी साहित्य के स्वरूपों को स्पष्ट करने की की बहुमुम्भी कैप्य की गई है।

“पियरी धाक लिटरेचर” के लेखक-द्वय में यह बहु कर ‘लिटरेचर’ धर्धतु साहित्य की परिभाषा धारण्य की है। ‘एक प्रकार में जितना जो कुछ भी धाने में धा गया वही लिटरेचर’ है।”

१ बबोन्टिधौचित ११७।

२ साहित्य बबोन्ट रबोन्ट पृ० ८।

3. ‘One way to define literature as everything in print  
—AUSTEN WARREN AND RENE WALLER—Theory of  
Literature p. 9

यदि हम साहित्य को 'लिटरेचर' के रूप में स्पष्ट करना चाहिये तो हमें दूसरे सहजे में बोलना पड़ेगा। सबसे पहले उसके सच्चे स्वरूप में जाने के लिये हमें साहित्य को कल्पनात्मक साहित्य की सीमा में मानना पड़ेगा। -

'लिटरेचर' शब्द को अंग्रेजी में इस प्रकार प्रयोग करने में कुछ कठिनाई है क्योंकि इसके बहने में सम्भावित शब्द 'फिक्शन' अथवा 'पोयेट्री' या तो संकुचित अर्थों में बन्द होकर रह गये हैं अथवा 'इमेजिनेटिव लिटरेचर' अथवा 'बलीसेटर्स' की भाँति मोठे और भ्रामक हैं। अंग्रेजी में लिटरेचर के व्युत्पत्तिगत अर्थ लेने से एक और अज्ञान अभाव की घोर बसाहट पैदा जाता है और वह है उसकी मिलित अथवा मुक्ति रूप में परिसीमा क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि किसी सम्यक बोध कराने वाले साहित्य के पर्यायवाची शब्द मौलिक साहित्य का समावेश भी अपने में करना होगा। इस विचार से जर्मनी का 'बेल्सलेस्ट' और रूस का 'स्नोव्सनोस्ट' अपने अंग्रेजी पर्याय से बड़ कर हैं।<sup>1</sup>

बाली विज्ञान लेखक लिटरेचर के तीन बुरों पर जोर देते हैं—'कपालकृता' 'आविष्कारिता' 'काल्पनिकता' जो होमर, बंते पेक्सपियर नामनाक कीट्स आदि के ग्रन्थों को अपनी सीमा में ले लेते हैं, पर सीसरो अथवा मार्टेल बोमे अथवा इमर्सन ऐसे लेखकों को अपने से बाहर ही रखते हैं। इसलिये 'लिटरेचर' की सीमा बढ़ाई जाए पर 'लिटरेचर से गार्क-लिटरेचर' को प्रसन्न रखत हुए और भी विवेकताओं को 'लिटरेचर' की व्याख्या

1 "The term 'literature' seems best if we limit it to the art of literature, that is to imaginative literature. There are certain difficulties with so applying the term but, in English, the possible alternative such as 'Fiction or poetry' or either already pre-empted by narrower meanings or like imaginative literature or 'belles-lettres' are clumsy and misleading. One of the objections to literature is its suggestion (in its etymology from literature) of imitation to written or printed literature for clearly any coherent conception must include oral literature. In this respect, the German term *Wortkunst* and the Russian *slovesnost* have the advantage over their English equivalent.

में जोड़ देते हैं। वे हैं—व्यक्तिगत धर्मव्यक्ति अनुभूति माध्यम से मनमानी उपलब्धि क्रियात्मक व्यवहारिकता का प्रभाव कपालकटा विविधता में एक्य घनासक्त व्यलङ्घन शोभा-निर्माल प्राविष्कार और अनुकरण। इनमें से प्रत्येक सिद्धेष्ट के एक पहलू को स्पष्ट करता है। हमारे उद्दिष्ट्यक ज्ञान को एक विधा में दूर तक बढ़ाया है पर उनमें कोई एक स्वयं अपने में संतोषजनक नहीं है। कम से कम एक परिणाम तो हमसे निकलता ही है — साहित्यिक कला-कृति कोई साधारण वस्तु नहीं है, वरन् बड़ी पेशीदगी से युक्त कई पर्व वाला संघटन है। जिसमें जनककायों एक सम्बन्ध को एक में बंध दिया जाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं किट्टर सभी कलाप्रकार की भाँति इन्द्रिया क माध्यम से विचार के प्रकाशित होने की प्रभा की अनुभूति में भरो हुई शक्ति ही है।

संश्लेष में प्रयुक्त होने वाला शब्द 'किट्टर' मूलतः भाव में संबद्ध नहीं है। 'किट्टर' शब्द का साहित्यिक अर्थ 'प्रसर' से सम्बन्ध 'प्रसर' है, अर्थात् कि विचार या व्यवहार की महत्प्रतीति में व्यक्त किय जायें। इन अर्थ में किट्टर शब्द का प्रयोग उन समस्त विचारों के लिये हो सकता है जो मनुष्य की अनुभूति में किसी प्रकार आते हैं, परन्तु पश्चिम का प्राचीन साहित्य भी 'सोपेमी' और 'इलियड' में जिस ओर संकेत करता है वह इस बात का निदर्शन है कि 'किट्टर' कोमल वृत्तियों की व्यञ्जना है। यह अनुमान किया जाता है कि इन महाकाव्यों के रचयिताओं ने अपने पूर्व में उपलब्ध विद्वत्त्व की प्रचारण की शक्ति की प्रतीति प्रकृत घन्य मनाइयाओं को व्यक्त करने वाले शीतों से प्राप्त-ग्रहण में प्रेरणा पाई। इन शीतों की प्रार इत महाकाव्यों में यथ-तत्र संकेत मिलने हैं।

इसीमिथ किट्टर की व्याख्या करते हुए इमाइक्यापीडिया कहती है कि 'जानक के सर्वोत्तम विचारों की बलों द्वारा सर्वोत्तम व्यञ्जना ही 'किट्टर' है।'

1 "A general term which in default of precise definition may stand for the best expression of the best thought reduced to writing. Its various forms are the result of race peculiarities, or of diverse individual temperament or of political circumstances securing the predominance of one social class which is thus enabled to propagate its ideas and sentiments. —Encyclopaedia—Britannica—Literature"



ईसाइयतपोषीयिवा ने उन समस्त कारणों पर भी विचार किया है जिनसे साहित्य विभिन्न भाषों पर बस पड़ता है। यूनान की दो बातियाँ अपनी विशेष कला कृतियों के लिये प्रसिद्ध हैं। स्वार्टन जाति युद्ध-प्रिय थी। अतएव उसके भीतर और समस्त कलायें बीरता की ब्यंजन हैं। ऐथेनियन सौम्यता के उपासक थे। अतः उनकी कृति में माबनाओं की कोमलता है। भय ही अस्त तक स्वार्टन की कठोर शक्ति के सम्मुख ऐथेनियन की कोमलता लथमस्तक हो गई परन्तु दोनों का साहित्य उनकी जातिगत विशेषताओं का निर्वर्तक रहा है। अतएव एक दिन ऐसा आया जब एथेस की कोमलता ने स्वार्ट की कठोरता पर विजय प्राप्त की और इस प्रकार जिस मधुर साहित्य का निर्माण हुआ वही ग्रीक साहित्य के मधुर काव्य को पृष्ठभूमि है।

मैथ्यू आर्नल्ड भी यही भाव व्यक्त करता है :— 'संसार में जो कुछ सबसे श्रेष्ठ कहा गया है और सोचा गया है वही साहित्य' है। कभी-कभी साहित्य का स्वरूप वैयक्तिक मानस की प्रकृति की विभिन्नता के कारण साहित्य की सम-कालीन सामान्य चारों से भिन्नता विभिन्न रूप में उपस्थित होता है। 'मिस्टन' का व्यक्तित्व और उसका साहित्य दोनों ही इस प्रकृति के उत्तम उदाहरण हैं। प्लास के साहित्य और उसकी विचारधारा का प्रभुत्व न केवल ईशमैथ्य अस्तित्व पुरे यूरोप पर बहुत समय तक रहा। उसका कारण वास्टेयर और रूस के प्रतिक्रमिक विचारों से उठ हुए फ्रांस का राजनैतिक महत्त्व था। 'मैथेनियन' की विजय न इन प्रभाव को कुछ समय के लिये स्थायी रूप दे दिया।

'ईसाइयतपोषीयिवा' केवल कोप-ग्रन्थ है अतएव उसकी व्यवस्था विभिन्न विज्ञानों की व्याख्याओं का मगह ही है। इस हेतु है कि य तक व्याख्यायें परिचय के शार्सनिकों ने पढ़ ही कर ही थी। प्लासो जीवन के लक्षों से सीधा सम्बन्ध रखने वाले ज्ञान के संग्रह को साहित्य मानता है। वह कहता है कि मनुष्य चिन्तनशील प्राणी है। उसकी चिन्तना के स्वाभिव्यक्त के लिये साहित्य की आवश्यकता है। अतएव शार्सनिक धर्मवा शार्सनिकारमक मार्ग पर चलने वाली उसकी चिन्तना जिस ज्ञान का मगह करती है, उसी का वास्तविक साहित्य

1 'Literature is the best that has been thought and said in the world.

बन जाता है। साहित्य के इस रूप में सौन्दर्य विचारक की रचनात्मक शक्ति का द्वारा उत्पन्न होता है। उसकी रचनात्मक तथा विचारात्मक शक्तियाँ का संयोग में जिस वृत्ति का जन्म होता है, वह कला वृत्ति कहलाती है। यद्यपि न केवल अधिक बल साहित्य का प्रत्यक्ष विचारण पर दिया है। उसका बहिर्मुख स्वल्प हीन को वह विचार से मूर्ख मीठा मानता रहा।<sup>१</sup>

'हिलरी हडसन' ने अपने 'एन इन्ट्रोडक्शन टु बि स्टडी ऑफ लिट्रचर' में साहित्य के स्वरूप के सम्बन्ध में विचार प्रकट करते हुए कहा है कि 'साहित्य उन सब बातों का प्रास्तविक-गुणों मण्डल है जिन्हें मनुष्या ने जीवन की प्रकृति में देखा है, अनुभव किया है अथवा जिन्हें विचार करने के माध्यम से प्राप्त किया है। इस प्रकार के कार्य में उन्होंने संगृहीत बातों के उन्हीं पहलुओं के विषय में अपनी प्रतीति एवं संवेदना का प्रयोग किया है जो हमारे इसी जीवन के वास्तविक प्रयाजन अथवा आकर्षण हैं। इस प्रकार मूल आधार के रूप में साहित्य भाषा के माध्यम से जीवन (की पुरुषता) की अभिव्यक्ति<sup>२</sup> है।

'आउटग्रेन्स ऑफ इन्सिमि प्राइ' के लेखक ए. सी. बार्ड का मत भी इसी से मिलता-जुलता है। वह 'लिट्रचर' का पुस्तक में बड़ कर बतलाता है। उसके मतानुसार पुस्तकों का लिट्रचर का अर्थ प्राप्त है और यदि पाठक के द्वारा उनका ठीक से न लिया गया तो वह 'लिट्रचर' के लिये बरी-बुरा मात्र निरुत्त होता है। "साहित्य से वह उन सब की ओर संकेत करता है जिन्हें मनुष्या एक जिवों के द्वारा बाँटी हुई प्रकृतियों में जो कुछ भी विचारण गया है अनुभव किया गया है और वास्तविक किया गया है वह सब एकजिन है। उनके रची हुई (रचनात्मक) पुस्तकों के माध्यम से हम

१ डा० प्रेमनारायण पुस्तक के 'हिन्दी साहित्य में विविधवार' पृ० १५ १६

२ "Literature is the vital record of what men have seen in life what they have experienced of it, what they have thought and experienced of it, what they have thought and felt about those aspects of it which have the most immediate and enduring interest for all of us. It is thus fundamentally an expression of life through the medium of language."

—WILLIAM HENRY HUDSON *An Introduction to the study of Literature*—p. 11

स्वयं उन विचारों और धनुषों और इत्थों में उनके सह-जीवता होने का धनुषण करते हैं।<sup>१</sup>

'सिट्टेचर' और सिट्टेरेरी क्रिटिसिज्म में सिट्टेचर की व्याख्या करते हुए एम जी भाटे सिट्टेचर का मानव के अन्तर के संगीत के रूप में लेते हैं। वे लिखते हैं—'सिट्टेचर' यह सपीठ है जो भाषा के परबों के माध्यम से जीवन के साथ संबंध बँठाते हुए मानव के प्रयास के प्रतिफल स्वरूप स्वतः प्रभावित हो उठता है।

हिन्दी के विद्वानों में भी साहित्य की परिभाषा जीवन का प्रयत्न किया है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने आरम्भ में साहित्य को दार्शनिक व्यापकत्व प्रदान किया है। 'ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम ही साहित्य है। इसमें वैज्ञानिक साहित्य के साथ-साथ उसके टाइम-टेबुल का साहित्य सम्मिलित है। पर 'साहित्य की महत्ता' शीर्षक निबन्ध का उद्देश्य भावनात्मक की प्रतिष्ठा करना है। ज्ञान का साहित्य उसके धनुषों रूप में स्वीकृत किया गया है।

बालू श्यामसुन्दरराउ भी 'साहित्यालोचना' में साहित्य के सिधे हुये रूप को ही लेते हैं। इस प्रकार उनको परिभाषा को परिधि के बाहर शैविक साहित्य (कल-कथाएँ, नाटक-कथाएँ) और धरती के धीरे धरति धाम गीत आदि) बड़े धरा में या ही छूट जाता है। पं रामनरेण बिपाठी तथा हेनेन्द्र सखार्षी के सम्मिलित परिभाषाकीय प्रयत्न में हिन्दी में साहित्य शब्द की परिभाषा की परिधि का विस्तार कर दिया है।

मुँगी प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास में साहित्य की परिभाषा करते हुए कहा है कि यह जीवन की आलोचना है। इन पर कबल मैथ्यू<sup>२</sup> आर्नेस्ट के विचार की छाया ही नहीं है, बरन् स्वयं उनके जीवन का धनुषण की छाया है। अन्व धनों में प्रेमचन्द जी के उपन्यास उनके समय की आलोचना का रोचक पर साथ ही भाषा व्यंग्य का तीक्ष्ण निवेद हुए प्रमस्तक्य है।

महि किमा की भी रचनाओं में काव्य-साहित्य का महत्ता पर्याप्त है। ठा यह 'प्रभाव' को के रचना-समुच्चय में ही है। उनका साहित्य उनके जीवन की धनुषुत्तियों में बना है। वे आत्मा की धनुषुत्तियों के लिये गया रहस्य जीवन

1 A. C. WARD *Foundation of English Prose* p 1 (1931).

2 'Literature is the criticism of life.'

—Matthew Arnold— *Essays in Criticism*.

में प्रयत्नशील' विचार एवं भावों के व्यापार-रूप को साहित्य अथवा काव्य का नाम देने हैं ।

शाचार्य रामचन्द्र शुक्ल प्रत्येक देश के साहित्य को वहाँ की जनता की चित्त-वृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब मानते हैं और जनता की चित्त-वृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होना स्वीकार करते हैं । उन्होंने अपने हिन्दा साहित्य के इतिहास में साहित्य में घट गक इन्हा चित्त-वृत्तियाँ की परम्परा को परम्परा हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना है । उनकी स्थापना है कि जनता की चित्त-वृत्ति बहुत-बहुत राजनीतिक सामाजिक साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है । घट साहित्य के निर्माण में जीवन क इन प्रभावों का भी विचार में लाना पड़ता है ।

बाबू गुलाबदास ने साहित्य शब्द का विग्रह सस्कृति की व्युत्पत्ति के आधार पर 'हितसह साहित्यम् तस्य भावः साहित्यम्' के रूप में दिया है । व साहित्य की आधारभूत भावना का जन-मगन की भावना के रूप में प्रस्तुत करते हैं ।

उपरोक्त परिभाषाओं में यह बात ता स्पष्ट हा ही जाती है कि साहित्य शब्द बहुत व्यापक है । जिनो भी परिभाषा में पूरुष की प्रतिष्ठा करना प्रमुख नहीं ता बुझाने परव्य हा है । इसलिए उसके तिम पक्ष या पक्षा पर जागा की दृष्टि पड़ी उसन उसके उभा स्वरूप की व्याख्या कर दो । 'परि हम समस्त मनों का दृष्टिकोण में रचकर साहित्य की रूप-रेखाएँ बनाए ता हम कहना पड़ता कि साहित्य जीवन और जपन क गन्धामक (तथा प्रत्यम्पित) शौन्दर्य को (यो) बहु भावमयी भाँता है तिमक सहारे तिम नवान धारण और बन्धान का विधान होता है । उपचार क सहारे कला-रुप उन बस्तुभा का भी तिममें हमकी प्रतिष्ठा की जाता है, साहित्य कहन है ।' वास्तव में साहित्य का ज्ञान के महान एक अग्रगण्य मता है तिमका प्रतिष्ठा जहाँ में ही हा पायी है । हमनिने बहु पूर्ण नहीं हाती । हमी जगहों को विविध प्रतिष्ठा के तिम पप है, जा कया काव्य के नाम में कया प्रतहार शास्त्र क अधिधान स और कमी और जग्यों के रूप में प्रतिष्ठ हा जान है ।

### साहित्य क अर्थ

हैने ता साहित्य अथवा व्याकरण में ज्ञान एवं अनुभूति की समष्टि को समेट लेता है पर मुख्य रूप में हम हम हा भाषों में विभक्त कर सकते हैं—एक

को हम मनु के भाषात्मक व्यापार के साथ जोड़ते हुए कलात्मक भाषात्मक प्रथम काव्यात्मक साहित्य की संज्ञा देते हैं और दूसरे को मनुष्य के सूचना-संग्रह व्यापार के साथ एकाकार करते हुए ज्ञान के साहित्य प्रथम प्रयोगात्मक साहित्य का प्रतिमान प्रदान करते हैं। इन दोनों में बड़ी अन्तर होता है जो एक ही शर की दो स्वरूपों की भाङ्गियों में होता है जिनमें एक तो घर का 'चित्र' होता है और दूसरा मकान बनाने वाले का मन्था (प्लास)। प्रथम का सौन्दर्यत्मक पक्ष है। दूसरा तत्सम्बन्धी सूचना संग्रह का व्यापारमात्र होता है। इन दोनों के बीच में बहुत बड़ा अन्तर पड़ा हुआ है जिसे निश्चित रूप से पहला एक वर्ष विधेय में नहीं रखा जा सकता।

संघर्षी के लेखक 'द्वि विधन्वी' द्वारा इन दोनों—ज्ञान के साहित्य और शक्ति के साहित्य के बीच में अन्तर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। पहले प्रकार के साहित्य का काम होता है सिखाना और दूसरे प्रकार के साहित्य का काम होता है प्रेरित करना इवित करना। जितना भाषात्मक साहित्य है वह सब शक्ति का भाषात्मक-प्रदान करता है और जितना साहित्य नहीं है वह सब ज्ञान का भाषात्मक-प्रदान करता है।

जब महान् सामाजिक कर्ष-साधन स्वरूप विधा के जिसे हम समष्टि में साहित्य की संज्ञा देते हैं वो विधिष्ट करलीय रूप या सकते हैं। ये बोला मिल कर एकाकार हो सकते हैं और बहुधा मिल कर ऐसे हो जाते हैं कि एक को दूसरे से प्रभाव कर पहचानना कठिन हो जाता है परन्तु बड़ा प्रयत्न करने से ये अलग-थलग 'भागों' में प्रवाहित होने वाली विधाओं के रूप में सिधे जा सकते हैं और परस्पर विरोधी शक्तों को अपने से जितल करन की समता भी प्राप्त कर लेते हैं। पहली विधा है ज्ञान का साहित्य और दूसरी है शक्ति का साहित्य। पहले का कार्य है सिखाना और दूसरे का करलीय है प्रेरित करना और इवित करना—पहली है पठना और दूसरी है डाँड़ और पास। प्रथम विवेकशील

- 1 "The main distinction is that laid down by De Quincy between the 'literature of knowledge' and the 'Literature of power' the function of the first being to teach, the function of the second to move.

All that is literature seeks to communicate power' all that is not literature, to communicate knowledge."

—R. A. Scott James *The Making of Literature* (1936)—p. 22.

मस्तिष्क से विचार-दान का सम्बन्ध स्थापित करती है और ऐसा सम्बन्ध हो सकता है कि दूसरी धपनी धपनी परमावस्था में सबकोटि के मस्तिष्क और तर्कशीलता को विचार साहचर्य योम्यता प्रदान करे पर यह कार्य निरपवाद रूप से सर्वत्र साहचर्य एक संवेदना की भूमिका में ही सम्पन्न होता है। विषय को धीरे धीरे स्पष्टता से समझने के लिये यहाँ हम दो चर्या का प्रयोग करना चाहिये—एक साहित्येतर और दूसरा साहित्य। साहित्येतर लिटरेचर को उपदेश का प्रयोजन लेकर चलता है और साहित्य जिसका धपनी ही तुष्टि के सिवाय कोई प्रयोजन नहीं होता और जो सौन्दर्यप्रियता के कारण से जीया जा सकता है। पहली के अन्तर्गत वे सभी ग्रन्थ आ जाते हैं जिनका उद्देश्य सूचित करना सिद्ध करना धपना धपने विचार की धीरे साक्षात् होता है। इस वर्ग में दर्शन वर्ग विज्ञान धर्म-शास्त्र इतिहास जीवन-चरित्र यात्रा राजनीति या नीति शास्त्र हैं जिनका अस्तित्व तर्क उपस्थित करने के लिये प्रमाण का उन्मेष करने के लिये धपन को समेटने के लिये धपना हमारा मत्-परिवर्तन करने का होता है। जो धामोचना उम पर लागू होती है, वह 'लिटरेरी धामोचना' नहीं होती बल्कि वैज्ञानिक धपना धार्मिक धामोचना होती है और उसका सम्बन्ध बन्धुधम को अमधुधमता से होता है तथा तर्क के प्रसंगानुक्रम और सुक्ति-सवत होन से होता है।

यह दूसरे वर्ग का लिटरेचर होता है जिसे हम विगुञ्ज साहित्य की संज्ञा दे सकते हैं। यही साहित्यिक धामोचना का लक्ष्य भी होता है। वह समिष्ठ धमार्थों के क्षेत्र में होता है। कविता नाटक और कथालम्ब साहित्य कथालम्ब रूप में ग्रहण किये जाने पर उपदेशालम्ब धपना प्रयोजनात्मक साहित्य की भाँति ठीक या दसत नहीं सिद्ध किय जा सक्त। तर्क उनको उनक स्वात से टस से मत् नहीं कर सकता। वे धपने नियमों द्वारा धामित होन हैं जो धपनी चरमावस्था में तर्क पूर्ण विवेक द्वारा नहीं बल्कि स्वामाधिक बोध कल्पना और सौन्दर्य प्रियता के भावों द्वारा हृदयगत किये जा सक्त हैं। दोनों ही प्रकार के साहित्यों का सत्य से सम्बन्ध हो सकता है पर वे विभिन्न भावों में उम तक पहुँचते हैं—पहला तो निरुधम-धामार द्वारा और दूसरा स्वामाधिक बोध के माध्यम से।

एकरसेव धपतरे में 'साहित्य (धामनीय धमामाल) नामक पुस्तक में साहित्य एवं साहित्येतर का विस्तार से विवेचन किया है। उनका कथन है कि साहित्य के धनुधोलन में हमारी प्रतिक्रिया धनुधोलनात्मक होती है। हमके भी दो रूप हैं। कभी तो हम इतन धाम-विभार हा जाते हैं कि धामों की गति पूर्णत

प्रबल ज्ञान पड़ती है और कभी हम सहसा बाह ! बाह !! कर उठते हैं । दूसरे अनुमोदन में हृदय के साथ सबको का भी योग रहता है । इसके विपरीत बाह मय की अन्य विधाओं के संघर्षों को पढ़ते-सुनते हुए हमारी प्रतिक्रिया समर्पनात्मक होती है । और उसका एक ही रूप है—सांख्यिक । यही सम्ब बुद्धि के सहमोमी बन कर घाटे हैं, हृदय के नहीं । इतिहास भ्रमोच दर्शन आदि के ग्रन्थों के किसी सिद्धान्त-वाक्य को समझ कर हम मही कहें— 'हाँ ठीक है; यह ज्ञान की बात है ।' अनुमोदन में संवेदन-संश्लेषण अनुभूति-रस की सबसेता रहती है—समर्पन में प्रमापर्मबन्धित ज्ञान-रस की । अनुभूति मन की रसा-विशेष उस हृदय से सम्बद्ध होती है जो उद्बुद्ध होकर बह्ना-स्वाह-सहोवर रस कहलाता है । अतः अनुमोदन में जिसमें कि हृदय का योग स्वाभाविक है, मोद प्रबला मानन्द की स्वीकृति परस्तात धा पड़ती है । ज्ञान बुद्धि की उस प्रक्रिया-विशेष से सम्बद्ध है जिसमें विचारो को समर्पित स्पष्ट होने पर बौद्धिक प्रसार उत्पन्न होता है । अतः समर्पन में जिसमें कि बुद्धि का योग स्वाभाविक है, प्रसन्नता की उपलब्धि होती है । अनुमोदन में हार्दिक-प्रैरणा स्वतः घाती है—समर्पन में विचारों की संगति देखनी पड़ती है । अनुमोदन हृदय से होता है—समर्पन बुद्धि से । अनुमोदन धर्म-वृत्ति धर्म-वृत्ति से होता है—समर्पन धर्म-वृत्ति से धर्म-वृत्ति से । अनुभूति से हम जिस वस्तु को पढ़ते हैं वह हमारी अपनी-सी बन जाती है और उसे हम अपने पास न रख कर अपने व्यक्तित्व में ही पचा मते हैं । पर बुद्धि से हम जिस वस्तु को विचारते हैं वह हमारे सामन के रूप में जान पड़ती है और उसे हम अपने स मुख प्रसंग रस कर अपने व्यक्तित्व को सजाते हैं । पहली वस्तु स्वतः के भाग के लिए हार्दिक है—दूसरी स्वतः-पयोगी प्रयोग के लिये । पहली हमारी स्वात्त परिनिवृत्ति के काम घाता है—दूसरी दूसरों पर प्रभाव जमाने के काम घाती है । साहित्य में हम स्वतः देखते हैं क्योंकि वह अनुभूतियों का क्षेत्र है—पर साहित्यिक बाह्य में हम स्वप्रमाणत्व देखते हैं क्योंकि वह प्रमा का क्षेत्र है ।

इसका मूल कारण यह है कि अनुभूति सजतीय होती है—विचार विजातीय । संसार के सभी मनुष्यों में विषय और परिस्थिति-भेद रहने हुए भी सुख-दुःख-रसक अनुभूति की जाति एक ही है पर प्रत्यक्ष ज्ञान में इन्द्रियार्थ अभिवर्ध 'यानी इन्द्रिय और विषय का माग एक होने पर भी विचारो में धर्म

जाणीयता नहीं होती। इसलिये अनुभूतियों के द्वार पर हम परस्पर एकता का अनुभव करते हैं—विचारों के क्षेत्र में घनेकता का। अनुभूतियाँ हम स्वयं वास्तव करती हैं। विचार हमें प्रत्युत होने पड़ते हैं यद्यपि अनुभूतियों का पाकर हमारी ज्ञान स्वाभाविक रहती है। ज्ञान का गहन भाव कर हमारे मन मस्त्राभाविक हो जाती है। अनुभूतियाँ घनेक संवेदना विद्युत्स्रोतों से एक ही सामान्य भाव-भूमि की धोर बनती हैं—विचार एक ज्ञान-विद्युत् से घनेक विवेचना क्षेत्रों में फैल जाते हैं। यही कारण है कि अनुभूति प्रधान साहित्य मनुष्यों को मिलाता है—समझौता करता है—विश्व-वस्तुत्व की भावना भरता है—एकता की धोर से जाता है और मानवता की सामान्य भाव-भूमि प्रस्तुत करता है, जबकि विचार प्रधान साहित्येतर बाह्य मनुष्यों का परस्पर टकराता है—सिद्धान्तों की रसावली करता है—भेद-वृत्ति मिखाता है—घनेक विद्याएँ उपस्थित करता है और मानवता की घनेक ऊँची नीची वृत्तियाँ बनाता जाता है। धन्य बौद्धिक शास्त्रियों की तो बात ही क्या सम्प्रदाय शास्त्र भी जो हमें एकता का उपदेश देता है अपनी घनेक विद्याओं में मित्र-विभिन्न है और इसीलिये वह साहित्य की नाति एकता की अनुभूति नहीं करता बल्कि एकता को गिड़ि कराने के लिये बौद्धिक प्रमाणों की वनस्पतियों में छोड़ देता है जहाँ प्रत्येक मनुष्य अपनी प्रभा के अनुसार प्रमाण एकत्रित करता है 'य विविभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना वा यही मतसब है। हा सब से बड़ी बात जो धार्मिकता के समर्पण में कही जा सकती है वह यह है कि समस्त विचार प्रधान बाह्य मनुष्य में यह सर्वोत्कृष्ट विद्या है और इसमें भेद जैसी किसी बात का मतसब बौद्धिक या धार्मिक विज्ञान से है जो किसी भी प्रकार मनुष्य वाति के लिये हिनकारी ही है। विज्ञान को नाति इसमें कोई धन्यात्मक विकल्प नहीं रह सकता।

साहित्य की पद्यार्थमयी मूर्ति का प्रभाव-परिणाम कुछ ऐसा उदात्त और धर्मिराम होता है कि उसको परिधि में बहु-वृत्तियाँ भी मजूर और बहु-मन्य भी हृदय-स्पृहणीय मयने हैं<sup>१</sup>।

1 "...So art can make sad things beautiful and sordid things wonderful, as in Hardy's Novels—To exist as poetry emotion must be translated in to music and visual images clear they may be terrible or saddening but still beautiful



कवि और कलाकार शब्दार्थ का ऐसा क्लेश उपस्थित करता है कि थोटा बचवा पाठक को उसकी सविदना-भाव में ही हृत्प्राकर्षण प्रतीत होता है और उसकी चित्तवृत्ति विचल कर घाने घाने वाली प्रत्यक्ष किम्बा के बोध या उपदेश की मुद्दर के समिट धत्तर मारखु करने क लिये सहज ही तैयार हो जाती है । साहित्य भी पहले शब्दार्थ की मञ्जुर सविदना से धारों को उन्मुख कर लेता है और फिर उनके स्वच्छ सात्विक चित्त-मट पर धपनी कभी धु कभी न पड़ने वाली-उपदेश की माहूसाह की रमीन कू भी फेर देता है ।

यदि कोई यह कहे कि इतिहास-भूगोल धारि साहित्यतर बाह्यमय के शब्दार्थ की सविदना सामान्य क्यों होती है और साहित्य में यही मञ्जुर क्यों होती है तो इसका उत्तर मन के स्वभाव के अध्ययन में मिल पायया । मन सदैव किसी वस्तु को धुरों के माध्यम से ही पकड़ता है । धुरों में भी प्राबलता-विज्ञानकता और अनुभवबालकता (सामान्य) के धर्म रहते हैं । ज्ञानक बर्मी धुरों से मन शार्कर्वलु चिपक जाता है और उसक साथ ही धाप प्रत्यक्ष की धोर याभा करता है । विज्ञानक या सामान्य बर्मावलम्बी धुरों को पकड़ कर वह ज्ञान-यात्रा की धोर धलप से सम्भा कर देता है और जिज्ञासा-मूलक धावस्वकता हुई तो प्रत्यक्ष क रूप में ही उनसे मिलता है । फलतः धुरों की प्रभाव याभा का भेव होन के कारण बचवा मन की वेवनीपता-गत परापात-धुरों वृत्ति के कारण साहित्य के शब्दार्थ की सविदना धन्य बाह्यमय के शब्दार्थ की सविदना से भिन्न हो जाती है । यही साहित्य के धलंकार-पदा में शब्दार्थ के भीतर प्रास्वा-हनीव प्रभाव की स्थिति है जिसे मन धपने ऊपर सात्रियम स्वीकार कर लेता है और साहित्य के किसी भी कम्पाणकारी प्रयोजन में धन्तर्हित होने के लिये सात्रिनिवेश उत्तर जाता है । इसीलिये साहित्य के धलंकार-पदा में भी साहित्य के प्रयोजन धोर स्वभाव का बैसा ही नित्य सम्बन्ध है जैसे कि धलंकार-पदा में ।

कवि न जो कुछ भी धपन जीवन में प्रत्यक्ष किम्बा है और जो कुछ भी उसे स्मरण है उन सब को शब्दार्थमयी धन्निव्यक्ति देन के पहलु यह धपने मन न धन्जित करता है । इने इम धन्जित सविदना या भावना भी यह सकते हैं । विधु

for it has been said that the greatest mystery of poetry is its power to invest the saddest things with beauty

—E. A. GREENING LAMBORN—*The Rudiments of Criticism*

जब वही अज्ञान संवेदना या भावना दार्शनिकों की प्रतिबन्धि में गड़ीय हो उठती है तब कल्पना कहलाई है। कवि की अज्ञान संवेदन अर्थात् भावना विषय कभी मजबूत हो जाता है और मर्मांग-संवेदन मर्मांग-सुखों की कल्पना को भावना का ही विद्यात्मक रूप है, साहित्य की शब्दावली में सृष्टि में बाध होनी है। सामाजिक व्यवस्था पाठक भी जब इस सृष्टि में परिचित करता तो उसकी संवेदना भी उद्वेगित हो जाती है। अन्त में वेदना उठता कि कवि की संवेदना विषय कभी पर वह कल्पना का मन में प्रतिबन्ध करता है और पीछे मर्मांग-सुख और सुख बनाने का प्रयत्न करता है उसकी कारिणी प्रतिभा का मूल है। सामाजिक को संवेदना विषयके द्वारा वह समुदाय भावों को पकड़ कर रखता करता है तथा आश्चर्यकृतता का अविषय कल्पना की कल्पना भी कर जाता है, उसकी भावविनी प्रतिभा की कृति है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि या कथाकार की कारिणी प्रतिभा के साथ ही साहित्यिक रूप में भावविनी प्रतिभा भी रहता है क्योंकि वह अपने जीवन के सम्पूर्ण प्रयत्न अपने पदार्थों की संवेदना परस्पर भावना करके ही तो कल्पना पर करता है इससे और सामाजिक की भावविनी प्रतिभा के साथ उसकी कारिणी प्रतिभा भी ही साहित्यिक रूप में मानना ही पड़ती है क्योंकि कवि कल्पना में जो कुछ उपस्थित है, उसकी भावना तो वह प्रयत्न तथा करता ही है साथ ही आश्चर्यकृतताद्वारा भावों के बाध की कृति को भी वह अपनी कल्पना में करता करता है। कवि या कथाकार में कारिणी प्रतिभा प्रयत्न होती है और सामाजिक में भावविनी।

साहित्य को छोड़ कर अन्य समस्त साहित्यिक मन के इस वक्षपात में अर्थात् कुछ है। वही संवेदना या मजबूत कल्पना के लिये-कल्पना-बोध में पहुँचे होने वाली अज्ञानता-भाव में है। साथ ही सुदृढ़-बुद्धि के अन्त में विचारों की संवेदना का ही साधक वही रहता है। भावना में संवेदित होने वाला और कल्पना में बाधक होने वाला संवेदना का साहित्यिक रूप में मर्मांगक रूप समझा जाता है। और यह उस साहित्यिक के स्वरूप के साहित्यिक साधक के अन्तर्गत ही है।

1. "Homer and Hesiod, then are convicted of immoral teachings and the tragedians and comedians are condemned because they imitate unworthy objects. In the ideal state there is no place for them. Let them be crowned with fillets—let perfumed oil be poured on their head —

पर साहित्य में संवेदना का एकदम राज्ज है। इस पर आसक्त हुए बिना साहित्य-मह्यपुरुष तिस भर भी भागे नहीं बढ़ सकते। ज्ञानात्मक प्रक्रिया का शीघरोद्योग इसी से होता है। भावात्मक प्रक्रिया में यही अपने पुनर्यात रूप में घाती है। भावात्मक प्रक्रिया के समाप्त हो जाने पर भी इसका संभरण समाप्त नहीं होता। इसका व्यवहारिक प्रमास्य यह है कि भावों से छुटकारा पाकर भी हम उनकी चर्चणा (ruminating) का बहुत-बहुत अनुभव जिसके बल पर प्रस्तुत कर देते हैं वह अनुभूति की अन्तरात्मा संवेदना के अतिरिक्त और क्या है? यही महा मन की इच्छात्मक प्रक्रिया में भी इसका अग्राह्य प्रवेश है। भाव के एक बार किसी हो जाने पर यदि इच्छात्मक प्रक्रिया में हम उसे सौटाना चाहें तो नहीं सौटा सकते पर संवेदना सौटाई जा सकती है जो फिर से भावों की सृष्टि भी कर सकती है।

साहित्य के सख्तों की चिन्ता अग्यात्मक ही नहीं अर्थत्मक भी होती है। और इनीलिये साहित्य के केवल पचात्मक भावों में बही चान्दा की संवेदना नहीं होती गचात्मक रूपों में भी वह अनिचार्यत होती ही है। क्योंकि साहित्य भाव की सृष्टि में पूर्वोक्त अजित संवेदना ही निदान-कारण है जो सख्तों एवं अक्षरों का अिग्यास ही अपने अस्पष्ट किन्तु निश्चित प्रवाह के अनुकूल ही करती है। साहित्य की एकान्त बौद्धिकतापूर्ण समस्या प्रथम कृतिर्वा भी जिस कारण साहित्यिक है और उनमें जीवन की कोई भी समस्या चाहे वह सामयिक हो चाहे अिचरत अिचिष्ट हो या अमचिबत तुल्यबल-बिरोधी ताकिक अमचर्नो के अाट ऐसे अिगमना अिचर के अाच अिचिष्ट की जाती है और लचीले और सजीले प्रमाखों के संभरजाम में हमारी बुद्धि अकिष्ट और अकिष्ट रह कर भी निश्चिण होना नहीं जानती अकि स्वमिगत होकर हृदय का रमण करती है, उसका कारण यह अजित संवेदना ही है, जो अरुणा के हावों संलय अिचर्यय अर्क और अचार्च की अोट्टी पकडे रहती है। अन्वया यह अारा अमा अ्याय-रात्म बनकर रह जाय।

but they must be sent on to another city Plato has taken up his stand on the side of the most ascetic of the Puritans. The more lovely and fascinating the arts may seem the more deadly they may be in luring us to false views of life or the emasculating influence of emotion.'

—R. A. SCOTT JAMES *The Making of Literature* p 40



धर्म बाह्य मय की साक्षात् भी इसी ध्येयी-विभाग के आभार पर बड़ी की गई है। मरिच के विद्यार्थी को एक सभ्यता विकास सेने पर 'बो प्रसन्नता होती है यह साम्बीय दृष्टि से बौद्धिक है। बोध और आधिप्यार कर सेने वाले किसी वैज्ञानिक की प्रसन्नता कुछ और पुट बिप होती है। दार्शनिक की प्रसन्नता और भी गम्भीर होती है। योपी इस बौद्ध में सब से आगे निकल जाता है जिसकी बुद्धि को गीता में पर्यवस्थित कहा गया गया है। मूल बात यह है कि ज्ञान का अधिकारल्ल आत्मा होने के कारण बौद्धिक प्रसाद भी जितना-जितना आध्यात्मिक होता जायगा उतना-उतना अपनी परिकाया स्वल्प-स्वल्प की ओर बढ़ता जाता जायगा।

इसे सभी समझदार समझते हैं कि जितना हम चाहते हैं उतना ही संसार नहीं है, परिक संसार का बहुत बड़ा भाग यह है जिसे हम नहीं जानते। वास्तविकता तो यह है कि जितना-जितना हम जानते चलते हैं, उतना-उतना अपनी नाजानकारियों की जानकारी हमें होती चलती है। 'ज्ञान का जितना सम्बा म्पास सीखा जाता है, मज्ञान कर उसके चारों ओर उतना ही बड़ा गुत् बनता जाता है। इसी लम्बी मानव परम्परा के बाव भी यहाँ तक हम पहुँच चुके हैं यह हमारी बुद्धि का कुछ ऐसा ही समष्टि रूप है जो इन अनन्त ब्रह्माण्डों के भीतर, महासागरों की सहरों में किसी दिनक की तरह पछाड़ ला रहा है।

वेद पदार्थ की जानकारी ही हमारे कुछ बाह्य मयों का प्रयोजन होती है। लक्षणसार धर्मों की सामान्य-संवेदना जिज्ञासा-मार्गकप्राण बनकर धर्म-साक्षात्कार में ही अपने को पूर्णतः विभिन कर देती है। यहाँ केवल धर्म से हमारा प्रयोजन रहता है, धर्म कुछ भी रहे हों इसीलिए ऐसा बाह्य मय धर्म प्रधान कहलाया है। इतिहास भ्रमोज धर्मसाक्षर धर्म इसी के भीतर है। धर्मों में धारणा म रहने के कारण इसे प्रयु-संमित नहीं कह सकते। धर्मित-संवेदना के बिना रमणीयता-बिरह होने के कारण इसे वास्ता संमित भी नहीं कह सकते। कर्म धर्म पर इच्छि और धर्मिप्राय रहने से इसे मूलसंमित ही कह सकते हैं।

संसार में ऐसा एक भी मनुष्य मिलना कठिन है जो किसी न किसी के धर्मों को बोझ-बहुत प्रमाख न मानता हो। मैं बाप कुछ धर्म के रूप में धर्मों के कुछ न-कुछ धर्मों को प्रमाख न मानता मनुष्य की साम्ब्य के बाहर है। छोटा बच्चा धर्मासा ही अपने बातावरण से जाया और संकेत-बहु धीस लेता है। बड़ा होने पर भी, यद्यपि उसकी धारणा धीरे धीरे निमटनी प्रारंभ

हो जाती है पर फिर भी वह सर्वथा सुम नहीं हो पानी और किमी-जिसो की घास्ता तो और भी सचम हो जाती है। समाज न इस घास्ता को बहुत ही आवश्यक समझ है और इसे बनाये रखने के लिये उसमें अनेक क्रिपवाजी है। राष्ट्यों के रूप में इस घास्ता का सबसे बड़ा कोप सुरलिन है जिसे वह मास ले-देकर भी बदलने का तैयार नहीं है। प्रत्येक देश की प्रत्येक जाति न राष्ट्यों के ये अपरिर्कर्तनीय सिक्के मिलते हैं। हिन्दुओं के वेदादि ग्रन्थ हिन्दुओं के वेदादि ग्रन्थ हिन्दुओं के भीतर भी अनेक धार्मिकों के ग्रन्थ जैसे-बौद्धों के त्रिपिटक सिक्कों के पुरु ग्रन्थ साहब आदि-आदि इसी के उदाहरण है। ईसाइयों का बाइबिल मुसलमानों का कुरान पारसियों का अवेस्ता आदि ग्रन्थ प्रभु-संमित बाइमय ही हैं। इस प्रकार के ग्रन्थों के उदाहरण प्रमाण होने हैं। कारण ये ग्रन्थ अफन मूम में अवीर्येय कहलाते हैं। इनका प्रागमन या तो ईश्वर के द्वारा हुआ माना जाता है या ईश्वर के अंगारों द्वारा।

ऐसे ग्रन्थों को शब्द-संविदना समाम्पस यानी मय-मिभित धारर के माव अलिन होनी है। आये अर्थ का प्रत्यक्षीकरण करते हुए भी हम बार-बार इन राष्ट्यों की संविदना को बुझाते हैं ठाक हम इन्हें ठीक समझने न कोई पलटी न कर बैठें। अर्थ समझने पर भी हम उन अर्थों को ही प्रमाण मानते हैं। क्योंकि हमें पूर्ण विदबास नहीं होता कि हमने उन्हें पूर्णतया समझ लिया है। किसी भी तरह विचार कर लिया जाय ऐसा बाइमय अर्थ प्रमाण हन के कारण प्रभु-संमित ही कहलाता है। वेदक के लिये प्रभु के अर्थों का महत्व है यदि अर्थ का महत्व होता तो किमी बूतरे के द्वारा कहे गये वे ही अर्थ उनके लिये अचर महत्वपानी होने।

प्राचीनाचार्यों के अतुनार प्रभु-संमित वेदादि ग्रन्थों में जो अर्थ की प्रमाणता है और मुहूर्त्संमित इतिहासादि ग्रन्थों में जो अर्थ की प्रमाणता है वह कति समित साहित्य के अर्थार्थीमय की प्रमाणता से आशय और स्वल्प मेव के कारण नितास्त बिसदृश्य है। साहित्य में अर्थों की प्रमाणता हो जाता है पर प्रभु-संमित वेदादि ग्रन्थों में अर्थ और मुहूर्त्संमित इतिहासादि में अर्थ ही प्रधान रहता है। अर्थान् अर्थ और अर्थ न तो पर्याय-वर्ति न (एक-एक करके) और न तो व्याख्येय वर्ति न (एक साथ) प्रभु-संमित बाइमय म ही रह सके हैं और न तो मुहूर्त्संमित बाइमय में ही। यह आशय मेव हुआ। साहित्य में अर्थित संविदना के कारण वेदकमन्वारी प्रमाण ही अर्थार्थों की प्रमाणता का निर्वर्ण है पर साहित्येतर बाइमय में स्वीकृत मान्यता तथा बौद्धिक प्रमादवारी सात्विक

और वास्तविक दर्शन ही क्रमशः सम्मेलन की प्रभावता और दर्शन की प्रभावता का स्वस्वभाविक है ।

साहित्य का सांख्यिक मानव जीवन का सबसे बड़ा सत्य है जो मानविक वृत्तियों के लाल वैयक्तिक बन्धनों को तोड़ कर मनुष्यों की परस्पर मानवता की भावना को ठिकाने लगा देता है । जो हमारी भावनाओं को ही समाप्त करने वाला है उसे भावना कह कर तो हम अपनी ( अपने मानवत्व की ) भावना-हत्या ही करते हैं । दर्शन-शास्त्र विज्ञान-बन्धुत्व और विज्ञान-संस्कृति का दुर्गम हिमाक्षय हमारे सामने खड़ा कर सकता है पर जन-जन के भीतर प्रबलमान साहित्यिक चाराओं का रूप देकर उसका सक्रिय अनुभव कराने वाला एकमात्र साहित्य ही है । मानव-जीवन कभी भी पूर्ण हो सकता है यह तो नहीं कहा जा सकता पर पूर्णता की धोर जितना भी बढ़ रहा है, साहित्य के सत्वपूर्ण मकेत के कारखाने ही अधिक बढ़ रहा है और जितना भी विकास कर रहा है, साहित्य की सर्वांग सुन्दर सज्जामा में बैठ कर ही अधिक कर रहा है ।

वही साहित्य हमें ज्ञानमय उपदेश भी देने सकता है वहाँ भी उसके ज्ञान रूप प्रयोजन की स्थिति निश्चय होती है अर्थात् रमणीयता से निश्चिन्त होती है जबकि साहित्येतर बाह्य मय में उसके ज्ञान रूप प्रयोजन की स्थिति निश्चय रहती है अर्थात् रमणीयता से निश्चिन्त रहती है ।

सबिधेय प्रयोजन से हमारा अभिप्राय है विज्ञातीय तत्व संश्लेष होने से—जैसा कि साहित्य के प्रयोजन में ही मात्र और ज्ञान के संश्लेष से होता है । और निश्चिन्त प्रयोजन से अभिप्राय है विज्ञातीय-तत्व-विश्लेष होने से—जैसा कि साहित्येतर बाह्य मय के प्रयोजन में ज्ञान के केवल रूप से होता है । हमका निश्चितार्थ यह भी हुआ कि विज्ञातीय-तत्व-संश्लेष प्रयोजन भी साहित्येतर बाह्य मय में रह सकता है जिसे हम विशिष्ट प्रयोजन कह सकते हैं सबिधेय नहीं ।

संसार की वस्तुओं में मानवता की प्रतीत हान के कारण बन्धुवत्त्व ज्ञान भी माना प्रचार के होता है । उनमें वस्तुतः कोई जिगी से विशिष्ट नहीं पर विभिन्न अवस्था होने हैं । इस ज्ञान-वैयक्तिक ने आधार पर मनुष्य जाति ने बाह्य मय की कुछ पाठ्यालय बना रखी हैं । इतिहास में तत्त्वसाहित्यी चरित्रों का संकलन ग्रन्थों में प्रचार की वस्तुस्थिति का वास्तविक अवलोकन वस्तुतः में विज्ञान परिणामों का पर्यवेक्षण—आदि-आदि अपने-अपने विषय की संवत्ति के

प्रयत्न है जो तर्क की सीमा में मनुष्य-मान को विभिन्न पर एक ही सामान्य ज्ञान की ओर ले पाते हैं ।

विज्ञान में सामान्य ज्ञान के आधार पर मिथ्य विज्ञान के द्वारा विद्या विद्या-बाध की व्यवस्था की जाती है । व्यवस्थित ज्ञान का नाम ही विज्ञान है । इसीलिए ज्ञान ही सम्झने में अन्तर है । पहले में प्राचीन दृष्टि में वस्तु की प्रकृति और संवृत्ति ही पर्यन्त है । दूसरे में प्रयोग और निराकरण के रूप पर विवेकण की आवश्यकता है । यहाँ विज्ञान विविध ज्ञान का उदाहरण है ।

धीरे प्राचीन ज्ञान ? यह भी विविध ज्ञान है । व्यवस्था के सिद्धांती तर्क तो विज्ञान और ज्ञान की श्रृंखला पटती है किन्तु पाते बन कर एक का दृष्टिकोण वास्तविक और दूसरे का प्राप्ताधिक्य हो जाता है । विज्ञान अन्तर्गत-वा करने का वस्तुविरमण में शो देता है किन्तु शास्त्र वस्तुओं के प्राप्ताधिक्य प्रभाव का अध्ययन करना हुआ मनुष्य को धीरे सीट माना है । विज्ञान की सर्वोच्च म गी जीव-विज्ञान या मनोविज्ञान है यहाँ वैज्ञानिक प्रवर्तित प्रतिनिधायता का विरमण है—पर शास्त्र की पराधर्या वर्धन-वास्तव है यहाँ अङ्ग-वेदन की प्राप्ताधिक्य सत्ता का विचार है । विज्ञान बाह्य अन्तर्गत का विरीतण करता है धन उनकी प्रकृति बहुमुखी है—पर शास्त्र अन्तर्गत प्रभाव का मनन करता है धन उनकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है । एक का धर्म बुद्धि प्रमुख प्रवर्त है—दूसरे का बुद्धिविच्छिन्न शास्त्र । पहले का धर्म बौद्धिक प्रभाव है—दूसरे का प्राप्ताधिक्य शास्त्र । एक की प्राप्ता मानवीय ज्ञान के मूर्तकरण में है और लून प्रवृत्ति पर धने विज्ञान-विज्ञान देख कर संभव हो उठता । दूसरे की अज्ञा मूर्त करो के धर्म प्रभाव में है और प्रकृति के साथ एकत्रीयता में रुच माना है । एक बाहर हो जाता बाह्य है—दूसरा सब कुछ भीतर अन्तर्गत बाह्य है । पहले का पूर्णार्थ काम और धर्म में अन्तर्गत है—दूसरे का धर्म और मोक्ष में पर्यवर्तित होता है ।

मध्य में साहित्यिक शास्त्र बाह्य अन्तर्गत में ज्ञान पर्यन्त प्रयाजन की स्थिति वास्तव्य है । धने ही ज्ञान कहा सामान्य हो और ज्ञान विज्ञान । इतिहास रूपान्तरण में विविध ज्ञान प्रयोजन है विज्ञान शास्त्र शास्त्र में विज्ञान ज्ञान । यह अन्तर्गत अन्तर्गत है । सर्वत्र ही ज्ञान पर है अन्तर्गत अन्तर्गत । पर साहित्य का शास्त्रिक प्रयाजन भा विज्ञानीय तन्त्र भावना में संवृत्त रहता है । इतिहास अन्तर्गत कहा गया है । इन प्रकार साहित्य के धीरे साहित्यिक शास्त्रिक प्रयोजनों की वे ही तन्त्रात्मा रहता है जो मानव-जीवन के साथ साथ सर्वत्र एक विद्या में अन्तर्गत रहेगी पर अभी धारण में मिन रही तर्कनी ।



साहित्य का काम मनुष्य के भीतर बैठे हुए पशु को समाना रहा है—उसका रस्ता सोचना नहीं। इतिहास सुयोग्य विज्ञानादि के निर्बल कंबे इस भार को नहीं सम्हाल सकते। ये तो मय से मनुष्य के पशु को रास्ता धीरे दे देते हैं। पहले इसकी हिंसा-शक्ति दस-पाँच या सौ-पाँचास बीबन समाप्त करके ही शान्त हो जाती थी पर प्रायः तो विज्ञान की बरीभत उसके हाथ में शशु-शक्ति है जो एक क्षण में सान्नों के प्राण सूँब सकती है। निस्संदेह साहित्य ही मनुष्य को उस सामान्य भाव-शुक्ति तक पहुँचाता है जहाँ ऐसी साहित्य पाया जाती है जिसमें अभिप्रेत होने से समस्त कन्दु-शक्तियों से उत्पन्न-ज्वर उत्तर जाता है। ऐसे ही साहित्य के लिये साहित्यकार साम्ना करता है। वह मानवमात्र के हृदय में बैठता ही नहीं उससे तादात्म्य कर लेता है। स्वाधर-जयम से विहार ही नहीं करता—उसमें खो जाता है। इस बिगड़ रूप संसार में डुल कर वह स्वयं बिगड़ हो जाता है, उसके हृदय की स्फूर्ति धीरे शक्ति का मानो पाप-बार ही नहीं जिसमें वैयक्तिक सीमाएँ डूब जाती हैं—भारतीय सीमाएँ डूब जाती हैं—पश्चिमी सीमाएँ डूब जाती हैं। वह मनुष्य के भीतर मनुष्य को देखता है। पर नगर प्रान्त देश नदी पर्वत समुद्र उसकी इस दृष्टि के प्रतिबन्ध नहीं बन सकते। टैबोर ने एक अन्तिम कविता में अपने को विश्व के कण-कण में खो देने की बात कही थी सचमुच धमर कलाकार की यही विश्व शशु-शक्ति है। वह सबकी छाती की पकड़न होता है—सबके हृदय की स्वाँध होता है—सबकी आत्मा का स्वात्माराम होता है।

### साहित्य कला के रूप में

प्रथमक भठ्ठाचार्य साहित्याचार्य सौताचार्य अनुबंसी न अपने समीचा सास्त्र में साहित्य को कला के स्वरूप की भाँति भी लेते हुए उसके धय एवं उपायों का वर्णन किया है। संश्रुत की कला-सम्बन्धी व्याख्या है जो धान्य लाने उसे कला<sup>१</sup> कहते हैं। यह व्याख्या पारभाष्य कलापाण्ठी भी छोड़े की कला को परिभाषा से अधिक स्पष्ट है। हमके अनुसार 'क्याकि कला अभिप्रेत है, इसलिये सब अभिप्रेत कला<sup>२</sup> है। इस सुधार कर परि में कहा जान कि व्यवस्थित तथा सौन्दर्य भक्ति मानवीय क्रिया ही कला है तो अधिक उपयुक्त होगा।

१ 'क धान्यं भाति इति कला ।'

२ धान्यं धातु इव एकत्रयोन, देधारधोर धान्य एतत्रेसत इव धाते ।

भारतीय परम्परा में कवि-कर्म या साहित्य-रचना की पराधा कलाओं में ही होने के कारण साहित्य को भी कला के ही रूप में लिया गया। बाद में सखित कलाओं के विवेचन में भी बा० स्यामसुन्दरदास न काव्यकला को अन्य कलाओं से भेद सिद्ध करने की चेष्टा की है। काव्यकला घेष्ठतम कला सिद्ध हुई है। चौसठ कलाओं में जिन कलाओं की गणना है उन्हें देखने पर विदित होता कि उनमें से कुछ तो मनुष्य को मानव देने वाली हैं जैसे चित्र और मूर्ति कुछ कान को जैसे संश्लेष कुछ जिह्वा को जैसे धबुर व्यञ्जन कुछ त्वचा को जैसे कोमल चिकने शीतल पुष्पों की रचना और कुछ नासिका का तुल्य करने वाली हैं जैसे सुमन्वित वस्तुएँ। किन्तु वेप ऐसी हैं जो हमारे मन को प्रसन्न करने वाली या हमारे दैनिक व्यवहार में कुशलता प्रवीणता तथा योग्यता दिखाने वाली हैं। इस दृष्टि से यदि हम कला की परिभाषा करें तो कहें—

“कर्मत्रियों का वह शौचसंपूर्ण नियोजन कहलाता है जो मानत्रियों को तुल्य करवा हुआ मन को प्रसन्न और तुष्ट करता है। इन सब प्रकार की कलाओं में भी साहित्य अथवा काव्य ही ऐसी कला है जो किसी एक इन्द्रिय को हृदित न करके हमारे मन को तुष्ट करती है, आत्मा का उदात्त नैतिक धारकों के द्वारा उन्मा उठाती है विवेक की स्थापना के द्वारा बुद्धि का परिष्कार करती है मूर्च्छियों के संयोजन से बाह्य का संस्कार करती है और बटनाओं के नियोजन से व्यावहारिक ज्ञान सिखाती है। अथवा सब कलाओं के द्वारा हमारी किसी एक इन्द्रिय या दो इन्द्रियों को सुख मिलता है और मन का शैलिक सुख मिलता है। किन्तु काव्य के द्वारा कान को और नाटक द्वारा नेत्र तथा कान को सुख मिलाने के साथ साथ मन का भी संतर्पण और संस्कार होता समता है। काव्यकला परम्परा में साहित्य का पर्याय रहा है।

बहुत से आचार्यों का मिथ्यात्व है कि मनुष्य में जो अपनी सम्पत्ता का इतना विश्वास किया है उसका अधिक अथवा भाषा या शब्द के पराधर्म का ही है। इस दृष्टि पराधर्म में मनुष्य में ही प्रचार का सृष्टि की—एक काव्य और दूसरा शास्त्र। काव्य के अन्तर्गत उसने नाटक कविता कथा चम्पू आदि सब पद्यमय वह सब कवि-कर्म माना जिसे कवियों ने विविध रूप में अनेक प्रकार के बाल्यादिमित योजना के माध्यम प्रस्तुत किया। किन्तु शास्त्र-विधि नियेपरत्यक होता है, जसमें उपदेश भी प्रारम्भित दिया जाता है अथवा वह स्वामाधिक रूप से काव्य से भिन्न है। इसी काव्य दृष्टि का साथ साथ साहित्य दृष्टि के द्वारा लिया जाता है। साथे चल कर काव्य शब्द पद्य-बद्ध रचनाओं के लिये इतना बड़ हो

गया है और पद्य-साहित्य इतने अधिक रूपों में व्याप्त हो गया है कि उसे काव्य कहने की अपेक्षा साहित्य कहना अधिक उचित है, क्योंकि जिस रूप में उसका काव्य नाम पड़ा था उस समय यद्यपि पद्य और पद्य दोनों ही रचनाओं को काव्य कहा जाता था किन्तु पद्यारम्भक रचनाओं की इतनी भरमार थी और गद्य-रचनाएँ इतनी कम थी कि काव्य कहने से साधारणतः पद्य रचना का ही बोध होता था। अतः हम भी व्यापक गद्य-पद्यमय काव्य वाङ्मय को साहित्य कहेंगे और केवल पद्य-वाङ्मय रचनाओं को कविता। इस दृष्टि से हम साहित्य की नई परिभाषा इस प्रकार करेंगे—

‘गद्य-शैली में अभिव्यक्त मानव-अनुभूति ही साहित्य है।

इस अर्थ में भी साहित्य तो मानवीय भावनाओं और अनुभवों का वह विस्तृत अभिव्यक्ति क्षेत्र है। अतः इसके अन्तर्गत कविता के अतिरिक्त भावार्थक अभिव्यक्ति के वे सब रूप भी समा जाते हैं जो कविता से भिन्न हैं या उसके विरोधी हैं। अक्सर मार्टिन्सन ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए कहा है—  
“साहित्य में वह शारीरिक तत्व नहीं है जो काव्य में है। इसलिए वह उचित प्रतीत होता है कि साहित्य तो समझने के लिए हम उसके व्यापक अर्थ का अध्ययन करें और साहित्य को उसी व्यापक अर्थ में समझें।

भारतीय साहित्यशास्त्रियों ने गद्य और पद्य दोनों में ही हुई रचना को काव्य कहा है। उपर्युक्त दृष्टि से विचार करने पर भी यह प्रतीत होना कि कविता अर्थात् छन्दोबद्ध साहित्य और अ-कविताशील साहित्य में कोई भेद नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से उपन्यास की अ-कविताशील साहित्य में अन्तर्गत है, किन्तु अपने तत्त्व प्रभाव विन्यास तथा प्रथम की दृष्टि में यह भी कविता के पद पर पहुँच जाता है। इसीलिये कभी कभी यह कहा जाता है कि साहित्यिक रूप की दृष्टि से उपन्यास की प्रकृति भी काव्यमय हो होनी चाहिये। हमारे यहाँ तो पहले ही गद्य और पद्य में रचे हुए सम्पूर्ण रमय वाङ्मय को काव्य ही कहा है और गद्य को भी वृत्तानुगन्धी बताया है। इन दृष्टि से साहित्य वास्तव में किसी एक जाति के कल्पनात्मक और शैक्षिक जीवन-क्रम का वह परिचय है जो कलात्मक भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है और जिसके विस्तृत माध्यम का छोटा-सा अंश कविता भी है इस समय का बड़ा अंश उपन्यास तथा साहित्य भी है और जिसके सब अंशों में वास्तविकता समान रूप से विद्यमान रहती है।

#### साहित्य के रूप

हमारी स्वाधिच्छित् प्रतिभिन्ना तथा अनुकरण-वृत्ति की प्रेरणा अथवा

स्वात्म प्ररणा में हमारी रचि किसी एक वस्तु, व्यक्ति विषय या घटना के सौन्दर्य अनुभूतत्व या घटाबाधणत्व में घाहृष्ट हाकर उस घर्माकाग करक उसमें इस प्रकार लम्बव हो जाती है कि बहु वस्तु विषय व्यक्ति या घटना उनके पश्चात् हमारे मस्तिष्क में उमड़ने-पुमडन लयती है। पाष ही हमारे मन की स्वतन्त्र शक्ति 'कल्पना' निरन्तर उसके पोषण में प्रवृत्त हो जाती है और उसे पूर्ण रूप देने के लिये उसकी प्रसाधन मायसी कुम्भे सगनी है। उसे देण काल एवं पाष के अनुसार घमिष्यक्ति के योग्य बनानी है। घम में (मानस-भाषन के रूप में उस घमिष्यक्ति को घासमसात् कर बन पर) घमिष्यक्ति के प्रकट रूप के प्रकार का प्रस्न भा उपस्थित होता है। साहित्यिक कलाकार का विवेक उस समय की अवस्था बल-शक्ति की मात्र एवं स्वयं अपने दृष्टिकोण का सामञ्जस्य करके कविता नाटक निबन्ध घषबा उपन्यास की रचना के लमारंब का पीमश्लेष करवाता है।

### साहित्य का महत्व

यदि हम दो बानों पर ध्यान बेकर विचार करें तो हमें 'साहित्य काय में क्या सात्मब है यह बात अपने व्यापक रूप में और ठीक ठीक हमारी समझ में भा जायगी। साहित्य का निर्माण उन पुस्तकों में और कबल उन पुस्तकों में मिल कर हुआ है जो अपने बर्ष विषय के कारण एक विषय के बर्तुन के बन के कारण साधारण रूप में मानव के काम (हित) की है और जिन में (गौणरूप से ही सही) रबरण का तन्त्र और लम्बस्य घामन्त्र दोनों ही बाबरयक समझे जाते हैं'।

- 1 We shall get what for our purposes should be an idea of literature at once sufficiently accurate if we lay stress upon two considerations. Literature is composed of those books only which in the first place, by reason of their subject-matter and their mode of treating it, or of general human interest and in which in the second place the element of form and the pleasure which form gives are to be regarded as essential.'

—WILLIAM HENRY HUDSON *An Introduction to the Study of Literature*—August 1932 Edition—p. 10.

कोई भी साहित्यिक कृति व्योक्ति रचना के अर्थ में प्रथम इतिहास पर मिली हुई निश्चित रचना से बिल्कुल भिन्न प्रकार की होती है क्योंकि एक तो यह पाठकों की खली-विशेष का नहीं बल्कि सभी स्त्री और पुरुषों का स्त्री और पुरुष के रूप में मर्म-स्पर्श करती है और उन से दूसरा भिन्नता का कारण यह है कि जहाँ किसी अन्य साहित्यिक विषय की निश्चित रचना का उद्देश्य ज्ञान-दान मात्र होता है वहाँ साहित्यिक कृति का प्राथम लक्ष्य वह ज्ञान-दान करने प्रथम न करे यह होता है कि वह वर्ण-विषय को प्रस्तुत करने के अर्थ के द्वारा साहित्य-सौन्दर्यात्मक सम्प्राप भी प्रदान करता है<sup>1</sup> ।

हम साहित्य की परभाव इसलिये करने हैं क्योंकि उसमें गहरी और स्थायी मानवता का महत्त्व निहित होता है । एक साहित्यिक महान् कृति सीधे जीवन से बढ़ कर स्वरूप ग्रहण करती है—उसके अध्ययन के माध्यम से हम जीवन के विस्तृत निष्कर्ष तथा अतिरिक्त (उत्तम) सम्पर्क में आते हैं और इस तथ्य में उसकी शक्ति का भेद निहित है ।

#### साहित्य का ऐकीतिक महत्त्व

अब सब से पहला प्रश्न यह उठता है कि क्या जीवन में कोई ऐसा कार्य है प्रथम कोई ऐसा उपयोग है जो केवल साहित्य ही में सम्भव है और नहीं नहीं ? अस्तु के अन्वयानुसार जीवन कविता (उत्कृष्ट साहित्य) को ज्ञान का संचालक समझते हैं । वह काव्य में इतिहास से अधिक शार्सनिवता (विचार शक्ति) के अर्थ में करता है क्योंकि इतिहास जो घटित हो चुका है उसी का निरवर्णन करता है, पर साहित्य जो घटित हो सकता है उसका भी निरवर्णन करता है—साधारण रूप से घटित होने वाली घटनाएँ और नममांकित घटनाएँ भी । अब अब कि इतिहास साहित्य का ही अर्थ तथ्या के अर्थ में

<sup>1</sup> "A piece of literature differs from a specialized treatise on astronomy political, Economy philosophy or even history in part because it appeals not to a particular class of readers only but to men and women as men and women and in part because while the object of the treatise is simply to impart knowledge one ideal and of the piece of literature, whether it also imparts knowledge or not is to yield aesthetic satisfaction by the manner in which it handles its theme.

विपिणता प्रदर्शन करता है, यौवा-मा नियन्त्रण रखता है और वहाँ विज्ञान प्रभावपूर्ण प्रतिष्ठा के रूप में मानने वाला है यह बात बार-बार कही जाती है कि साहित्य उन खाल-खाल वालों के सम्बन्ध में ज्ञान-प्रदान करता है जिन में विज्ञान और शक्ति का कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। जहाँ बाह्यर सामान्य ऐसे विषय विज्ञान विचार कविता को जीवन के माध्यम सत्ता के कोप की मंत्रा देने हैं, वहाँ विविध विचार-वागमों का अनुसरण करके बाले प्राकृतिक सिद्धान्त-सामग्री कविता की विमिष्टता पर बल देने हैं<sup>1</sup>। उदाहरण के रूप में स्टेन कहता है कि घोषणा का बर्षाविषय 'ईर्ष्या' अपने माध्यम व्याप्त रूप में नहीं है बल्कि यह विविष्ट प्रकार की ईर्ष्या है जिसे एक वैदिक को मुन्दरी में विवाहित मोरोको विधानों ही मोच सकता था।

साहित्य में सत्य का साधारण रूप होता है जबकि विविष्ट रूप इन विषय में साहित्यिक सिद्धान्त विषय तथा किसी विविष्ट विचारधारा के सिद्धांतीय लोग कोई भी बन रख सकते हैं क्योंकि साहित्य वहाँ इतिहास और जीवन चरित्र से अपिष्ट व्याप्त होता है वही यह मनोविज्ञान यथा समाज धारण से अनुचित भी होता है। पर इन साहित्यिक सिद्धान्तों में जिन बातों पर बल दिया जाता है उनमें बूढ़ दुःख-पिताम भी होता रहता है। साहित्यिक व्यवहार में साहित्य में साधारणता जबकि विविष्टता का भाव एक प्रश्न में हमारे प्रत्येक और एक युग में बूढ़े बूढ़े तक परिवर्तित होता रहता है। साहित्य के चरित्र निर्माण का सिद्धान्त ही दोनों—विविष्ट (Individual) और साधारण (type) के विषय करण का है—यह विविष्ट म बर्ष के सक्षम और बर्ष के व्यक्ति की विविष्टता दर्शाता रहता<sup>2</sup> है।

1 "While a neoclassical theorist like Dr Johnson could still think of poetry in terms of the 'grandeur of generality' modern theorists, of many schools (e.g. Gilby Ranssen Stace), all stress the particularity of poetry says stace the play Othello is not about jealousy but about Othello's jealousy, the particular kind of jealousy of a Moor married to a Venetian might feel.

—W T STALL, *The Meaning of Beauty* —151

2 "In literary practice the specific degree of generality or particularity shifts from work to work and period to period. The principle of characterization in literature has

इसी प्रकार नाटक और उपन्यासों में प्रत्यक्ष ज्ञान संबंधी मूल्य पूर्णतया मनोवैज्ञानिक है। प्रायः यह कहते हुए सुना जाता है कि मनोवैज्ञानिकों से बढ़ कर उपन्यासकार हमें मानव प्रकृति के विषय में बातें सिखा सकते हैं। हर्नो बोस्तोम्स्की-सेकसपियर-इम्सन और बालजक को मनोवैज्ञानिक तथ्या के घासव श्रोतों के रूप में लोगों के ध्यान-पत्र पर लाया है। ई एम० फास्टर कहता है कि ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जिनके प्राकृतिक जीवन के विषय में धनदा उनके कामों के प्रेरक तत्त्वों के विषय में हम जानते हैं कि पर यह उपन्यास को मानवता के लिए बड़ी भारी सेवा है कि वह चरित्रों के आत्मपरीक्षणपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत करते हैं। यह बात तो मानी हुई है कि उसके चरित्रों का प्राकृतिक जीवन बही है जो स्वयं सजग आत्मपरीक्षण का परिणाम है। कोई भी यह सकता है कि महान् मौप्यासिक कृतियाँ मनोवैज्ञानिकों के लिये तथ्यों का श्रेष्ठ-स्त्राग हैं धनदा उनके चरित्र मनोवैज्ञानिक समस्याओं के समाधान हैं। यहाँ पर हम फिर उसी बात पर आते हैं कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास को केवल साधारण वर्णन चरित्र के रूप में लेंगे। वे 'पिघर गोरिएट' ऐसे विचित्र चरित्र को सम्पूर्ण रूप से मार स धन्य चरित्र के संदर्भ के सहित लेंगे।

#### साहित्येतर, उपन्यासेतर साहित्य एवं उपन्यास

उपन्यास की व्याप्ति—उपन्यास की व्याप्ति का धारण तो मनुष्य की चेतना के धारण से समझा जा सकता है। जिस प्रकार प्रत्येक स्वयंमयी हृदय वासा संवेदना से कुछ मनुष्य मूक व्यक्ति का कवि तो है ही उसी प्रकार प्राकृतिक संवेदना के साध-गाय भासा से देखने वासा और कानों से सुनने वासा व्यक्ति उपन्यास का भी मूक व्यक्ति रचता है। तब ही धार्य बहना बर्तन की दृष्टि एवं अयबाल का ध्यान-उपन्यास का उपन्यास है। ईजिप्ती उपासना हमारे ज्ञान भासना का उपन्यास है। हमारा स्वयं का आत्म-चित्तन व्यक्ति के धारण का उपन्यास है।

always been defined as that of combining the type' with the 'individual'—showing the type in the individual or the in the type"

—AUSTER WARREN AND REBE WALLEK: *Theory of Literature* 23

1 "When one watches constantly the source where this I emanates is called *Tapas Akshari Roman*.

उपन्यास साधारणत्व की कला है और समाधारणत्व वा साधारणीकरण । जो है वही है उपन्यास उमी की कविता है। उपन्यास घटनाओं वा घास है और जीवन वा बकहुरा । उपन्यास बन्धता वा बिराम स्वम (haven) है । उपन्यास ज्ञान और विज्ञान का सामाजिक बन्ध है । वह सामाजिक घासा का छीड़ा त्यल है और मनोविज्ञान की प्रयोगशाळा है । वह सगीत और चित्रकला वा संविम्बन भी है और मूर्तिकला की पैमाइया का बन्दार भी है ।

उपन्यास सर्वैव जीवित वा—मदैव जीवित रहेगा उसका स्वरूप बदल सक्ता है पर उसके अस्तित्व का नाश कभी न होया ।<sup>1</sup> बार्ता दृष्टान्त आस्मान उपास्मान कथा गृहकथा आस्नायिका नवलकथा पितारेस्क रोमांस उपन्यास लघु-कथा परिकथा सब एक ही वृत्ति क मिश्र-भिन्न स्वरूप हैं ।

उपन्यास में जो नहीं है वह वा साजा हो होया है और जो जीवन में हो सक्ता है और है मही उसे भी उपन्यास में खीच लाया जाता है, जिससे वह सोमा को जीवन म भी उमी दिया न खाच सके । उपन्यास में सतह के ऊपर के जीवन के साय-साय सतह के नीच का जीवन भी होता है ।

उपन्यास में जो समय बीत चुकता है उसको हम वर्तमान की सम्पत्ति बनाने हैं और जो जाने वाले समय हैं उनको भी बतमान के भीतर ले जाने हैं । उपन्यास में समय बेबलाओं को मणि सदा घटात के बैभव और भविष्य की संभावना के साथ बतमान में घुसा रहता है ।

श्रेष्ठ साहित्य संयोग वा आबिन्दार होता है । उत्तम उपन्यास में साहित्य की सामना साधारण रूप पाती है । उपन्यास साहित्य वा बिच्छ होता है जो घपने दो पगा में ही साथ बड़ाएय नाय लता है । सब तीसरे पय मे मानव का अस्तम् भवन हा नरवाता है । साध वा दान उपन्यास का अमिदान-सम्बन्ध बन जाता है ।

जब साहित्य की शानिज मे संभावना के पैमान की सीमा एव दून्य के छोरे

- 1 "I am the daughter of earth and water  
And the nursling of the sky  
I pass through the pores of the ocean and shores  
I change but I cannot die.

—PERCY BYSSHE SHELLEY— *Cloud*



के मंदि-स्थल पर कल्पना के विस्तार का धारण होता है तब धीपन्यासिकता का जन्म होता है। वैज्ञानिक वर्क-प्रस्तावी जब तथ्यों की डेम-गुमि को छोड़कर अनुमान से वास्तविकता को टटोल कर दृष्टिमा धारण करती है तब वैज्ञानिक की धीपन्यासिकता का धारण होता है। इसी प्रकार नैति-नैति की भावना एवं 'ब्रह्म' सम्बन्धी विचार दार्शनिक धीपन्यासिकता की काटि में रखे जा सकते हैं।<sup>१</sup> बापक पुराण बाइबिस एवं कुरान के ह्यटान्त एवं धामिब बापाएँ धपने में धीपन्यासिकता के पुष्य प्रवाह का छिपाये जसती है। धीपन्यासिकता का सबसे गहरा धीर जना पुट हमे कुटकुनों में मिलता है। जहाँ धीरजम धीर 'सरदार जी' को लेकर, 'धफीमधी धीर जम्बूबाज' की धकम में तथा धगगिणुठ सामाजिक धधसरों के संदर्भ में न्वाभाविकता की रोचक धाम्बुति समय-समय पर सहज भाव से कही हुई सच्चिया मे हाती है।

एक प्रकार का साहित्य ऐसा भी होता है। जो उपन्यास तो नहीं होता पर उपन्यास के समिकट होता है। धमण बतान्त के धस्यट रोचक-काम्य निक ब्रंस उसके महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं। जब विज्ञान की संभावनाओं पर धधिव्य का वास्तविक सा लक्षता हुआ कल्पनिक बर्लुन हमारे सामने पाता है तब हम उसे भी एक उपयोधी धीपन्यासिक गाथा कह सकते हैं। यथावर्गमुल धादर्शाबाबी रचना के समान। फिर जब हम पत्रों के संग्रह की धीर धाते हैं तो मानो उपन्यास के कश्चे मात का डेर-का-डेर हमारे सामने धा धाटा है जिसे परिधम करके हम जाहे जितने परिमाण में सोला (उपन्यास) निकाम सें। जब मक्त की मीत्र धपने में पुटी होती है तब उसकी धीपन्यासिक-नी, धाध्यात्मिक स्थिति देखने धीर गुनमे बालों के जिने धामम्ब का विधम बन जाती है।

उपन्यास का धारण वातनीष्ठ के रम से लेकर पत्र धीर कथाधियों के धीने धावरण से ध्य कर परियों की कहानियों में उजलपटाका में पूमकर तिसिम के बस्कर में पड़ कर फिर जागूरी के रहस्य में दुपकुप बैठकर सामाजिकता के क्षेत्र में प्रवेश करता है। इतिहास में धरीठ धीर वर्तमान सामाजिकता बला को ही लेकर चलता है। फिर धरान्त मनोविज्ञान मनोविस्लेषण समाजसम्ब राजनैति धादि के संलिपट होता हुआ धागे बढ़ता है। उपन्यास में महाकाव्य

मान्य कहती मिरच और गयेरगाण्यर निरुप मर मिपकर एक शो  
 जाने हैं ।

ज्ञान एक विवेका की प्रायायक मैन्य शक्ति के समान एक सम्भी-रुगे में  
 एक माप लागे रहता है । प्रागे बरौ इ देना की दुर्बलिया पाये पड जाये  
 बाबा दुर्बलियों के माननासूबंक प्राये बरने म महादक होती हैं । प्राकृतिक ज्ञान  
 की विरबध्यापी प्रपति न उपन्यास साहित्य म भी प्रपता प्रभाव रिक्ततावा है ।  
 वैज्ञानिक प्राविष्कारों एवं विभिन्न बाबा की विचार-बाण ने पूरी तौर पर  
 उपन्यास को प्रभावित किया है । बरि के बन्दता जगन में मोहित रहने बाब  
 कतिपय स्यमों को विज्ञान के माध्यम में बाण्यविदता की परिधि में लाया गया  
 है । प्राब उपन्यास वैज्ञानिकों के लिए प्रेरणा हो रही प्रबोरता की बन्धु बम  
 मये हैं । एक० जी० बैन्य के 'माहनं पुनरिष्या' 'दि बार प्राक बन्धन' 'दि  
 मैन इन रि पुन' 'दि एक प्राक विम्व दु बम म्बिबेनर का 'शास्त्र अंकिण  
 एक मिष्टर श्राद्ध' रात्रन-सांभूरसादन का बात्या-मे-गंमा' '२२ की मदी'  
 बपुरमेन माग्नी का "बीसापी की नगर-बद्ध" प्रादि इमी थ एो ब उपन्यास हैं ।  
 जामुने उपन्यासों में तो ज्ञान-ज्ञान म विज्ञान की खोज की उबसाहट रहती है ।  
 प्राथमिक बहानिया म उड़न एडोमा प्राणि बाण सम्भोहताए प्राज की  
 बाण्यविदता बन मये हैं । उपर दूमरी और विचार-जगन में जग्यामकार जग  
 नापारगु के जीवन का दार्शनिक बन रहा है । हुनक रूप में प्रचार का का रूप  
 ना बरन स्थाओं पर जामा जाता है पर प्रबन्ध और पुन-पुन्य प्राईट  
 (Prophecy) का प्रतिया ने प्रसूतन के रूप में भी बह हुये रिगार्ड पड़ना है ।  
 उपन्यासेन साहित्य तथा साहित्येन बाणमय के प्रभाव उपन्यास को प्रागे मा  
 बाते हैं उसके बर्ष-विषया की सम्भावता को प्राये बहाकर और बमी-बमी  
 बाण "माब-जन्म बरि" उपन्यास के मने का पम्पर का पंथ की खीर भी  
 मी बना है उपन्यास को विचारों का प्रांग बुझा माब दमाकर ।

जीवन म ज्ञान-बद्धि का व्यापार बीमे जो बन्दन ज्ञान एवं प्रबन्ध-जगनों  
 की मय्यिनित ज्ञान की बद्धि पर निर्भर रहता है पर नाप-रि जीवन की  
 प्राबन्धकालुमार शास्त्र की सुमी दबाओं की तरह ज्ञान के बुद्ध रूप विप  
 रूप में जीवन के ज्ञान का विपय दर्न में प्राब बहाते हैं और ज्ञान का विपार  
 इन "शास्त्रमिर जोर" में स्व-मेव प्राये रिमरता रहता है बड़ा भाँपि बाबर  
 के ल्पेरी की तरह । जीवन के विपारन में भी प्राबन्ध के विरबविदापनों  
 की बद्धि विज्ञान (प्राये मर विचारों के ज्ञान के माब) रात्रनि बर्ष-जगन

एक समाजशास्त्र विशेष प्रिय विषय है। उपन्यास जीवन को समेटने के साम-  
 धाय क्रम से इन सब विषयों के ज्ञान को अपने में धँकोरता चसता है।  
 उपन्यास में (जैसा पहले कहा जा चुका है) सभी विषयों के ज्ञान का प्रभाव  
 अन-सम कर जाता है पर इन विषयों का प्रभाव सीधे ही पड़ता है।

राजनीति तो समय को गड़ती है—हुप का निर्धारण करती है—एत  
 उपन्यास जब बाहरी जगत को लेकर चसता है तो वह (राजनीति) उस  
 (उपन्यास) पर छार्ई रहती है। डिबरायसी जर्जिन यथापान भादि की रचनाएं  
 इस तथ्य के प्रमाण उपस्थित करती हैं।

धर्मशास्त्र से तो जीवन मापन की विधियाँ बनती-बिभड़ती हैं। जमीदारी  
 उत्पीड़न एव पूर्वीवासी छोपण तथा धर्ममत संघर्ष जीवन में धापी धीर  
 लुफ्तन माते रहते हैं। जहाँ उपन्यास में धार्मिक धबस्था में उत्पन्न बिलोभों का  
 वर्णन है वही धर्मशास्त्र के सिद्धान्तों का प्रतिफलन उपन्यास को इसी शास्त्र  
 का दृष्टान्त बनाता चसता है। उपन्यास का जन्म रोमांस की नक्यता  
 साहित्यिक व्यापारियों की गाथाएँ बिबबभ्रमण करने वाले यात्रियों के वृत्तान्त  
 सभी तो उपन्यास को सामग्री देने रहते हैं। क्य बेस की पंचवर्षीय योजनाओं  
 से संबंधित उपन्यास एम्ह नवायट प्लाज डिज्ञान' और 'बर्जेनस्वामस धपटर्म्ह'  
 भादि इस तथ्य के उदाहरण हैं।

उपन्यास शास्त्र का सबसे बड़ा सहायक समाजशास्त्र है। भादि से एत  
 तक समय के विस्तार में फीसा और पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक की  
 बातों को एकान्तरूप से धारमसाठ करने वाला समाजशास्त्र उपन्यास के  
 'बीजा' की मर्मटी है। हम किसी उपन्यास को समाज शास्त्र का परिच्छेद नहीं  
 कह सकते और न सभी उपन्यासों में समाजशास्त्र के मुर्षों की व्याख्या कुसे दायों  
 में हुई कर निकाल सकते हैं, पर प्रत्येक उपन्यास में समाजशास्त्र की सामग्री  
 और समाजशास्त्र के प्रत्येक परिच्छेद में उपन्यास का अदुर छोज निकाल  
 सकते हैं।

मनोविज्ञान अन्तर्गत का शास्त्र है और धपन सिद्धान्तों के अनुधीनन में  
 बाह्य जगत के कार्य विस्तार में भी छाया रहता है। उपन्यास में जब जरिन  
 की विवेचना यहूधई से होन लगती है तब मनोविज्ञान पूर रूप में जीवन  
 के समस्त घटनाचर्चों एवं कायों पर छा जाता है। प्राधुनिक हुप की यह  
 बिब्यपता है कि उपन्यास पर विशेष रूप से तथा उपन्यासोत्तर साहित्य पर  
 मापारण रूप में मनोविज्ञान का प्रभाव है। धर्विजी के 'स्ट्रीम धाफ बाग्ध-

मनो-के अनुकरण पर फायद के प्रमाण से हिन्दी में भी वैसा-वैसा प्रयोग होना चाहिए। लेखक मनोविज्ञान से अवधिक प्रभावित है। मनोविज्ञान जहाँ विषय की स्पष्टता में सहायक होता है वहाँ तो टीका पर जब वह साहित्य पर हावी हो जाता है तब वह साहित्य की आत्मा को धाँस कर उसके मौल्य को नष्ट भी कर देता है।

वेबर का यह कहना ठीक ही है कि आवश्यक प्रतिभा हो तो वाग्द ही कोई विषय प्राकृतिक उपन्यासकार की रचनापरिधि के बाहर रह सके। उनकी कला इतनी लचीली और प्रयत्न है जितनी कि 'बहु और वाग्द की उपसर्गीय बहु लक्षण घेमी वा बर्तनबर्त तथा अन्य विषय कविया म कोमर्गिज की मराहता का विषय बनी थी। काव्य में ही यह कथा का विकास हुआ उठने पुन काव्य के साथ अपना निरट सम्बन्ध स्थापित कर लिया है। उमरा इतिहास टूटे हुए समा का नहीं प्रपुन एक घट्ट एक रखा मम है।'

बंश साहित्य उपन्यासों पर धारा के धा कुमारबन्धोभाष्याय का भी यही कथन है कि उपन्यास एक बागो वही में नहीं था नवा है। प्राचीन साहित्य के वाग्द भी खोजने से हमसे दीगु लकेत एवं सुदुर इज्जित मिसते हैं। काव्य में बर्तन तथा में व्यंग्य-विङ्गुप की कविता में धाक्यापिता में धीर मस्टक में वही वही भी मरुत की जान से या धनजान में समाज वा एक वाग्दिक धिभ प्रतिरमित होता है जहाँ वही भी इस प्रकार के धिभाकन की केटा केनी जाती है, धपवा माभाजिक मनुष्य का मन्थर्क धपवा निविङ्गु संपाम प्ररुति हो उठता है वही उपन्यास के भावी धापकन वा धामाम प्राप्त हो

- 1 "Given the necessary genius there is highly a theme that a modern novelist finds beyond his range. His art is as flexible and capacious as the neutral style, common to prose and poetry which was the special admiration of Coleridge in Wordsworth and certain other poets. Prose fiction has its rise in poetry: it has reasserted its kinship to poetry. Its history is not a broken but a continuous curve.

—LANCELOT BAKER—*The History of English Novel* Vol. I—  
pp 298-99

जाता है। उपन्यास के जन्म होने के पूर्व ही उसके लक्षण और उपादान संभार साहित्य के बीच में इपर-उपर बिखरे हुए पड़े थे। तदुपश्चात् यथासमय किसी प्रतिभा सम्पन्न लेखक ने इन समस्त बिखरे पड़े हुए उपादान समुदाय को सुसम्बद्ध एवं सुनिर्दिष्ट करके उसे प्रकट किया किन्नी भाष्यात्मिकाकार की रचना के बीच में प्रेम दिया और एक प्रकार से नूतन साहित्य को जन्म दिया और प्रथम चिर प्रवाहित साहित्य-श्रोत में एक नवीन प्रणाली का संचार कर दिया।<sup>१</sup>

### साहित्य-युग के प्रमुख स्वल्प और उपन्यास

धारम्य से ही उपन्यास और इतिहास में अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहा है। इतिहास का प्रयोजन अतीत को वर्तमान में अपने वास्तविक रूप में प्रत्यक्ष करना होता है। इतिहासकार पूर्ण ईमानदारी के साथ समय के काम-बिधेय (पार्टीक्युलरपीरिग्रस) प्रथम कई कामों (मिनी पीरियड्स) को वर्तमान के एवं भविष्य के पाठकों के लिए वर्णन के रूप में प्रस्तुत करता है। इतिहास के अध्ययन से हमें पता चलता है कि कुछ बिधेय में मनुष्य क्या करते हैं और उसके साथ ही साथ यह भी पता चलता है कि मनुष्य जो कुछ करते हैं क्यों करते हैं। उपन्यासकार का ध्येय सत्य पर होता है और उसके लिये वह सब प्रकार के प्रमाणों का संग्रह भी करता है (जो अपने में स्वयं एक विस्तृत विषय है)। पर सब प्रकार के प्रयत्न करने के बावजूद प्रायः इतिहासकार घटनाओं की विधियाँ और उन घटनाओं से सम्बन्धित व्यक्तियों के नाम ही ठीक से प्रस्तुत करने का दावा कर सकते हैं। दूसरे घटकों में समय के बिधेय अन्तर पर इतिहासकार को समय बिधेय का हीचामात्र मिला पाता है और शेष श्रोत उसे अपने अनुमान और कल्पना के सहारे संप्रतिष्ठ करना पड़ते हैं। जहाँ यह व्यापार धारम्य हुआ एक इतिहासकार और घटकों के कलाकार साहित्यिक में कोई जाति-भेद नहीं रह जाता। प्रत्येक महान् इतिहासकार कुछ अर्थों में काल्पनिक कलाकार होता है। प्लूसी डाइडस की नवीन स्पष्टता विधान का निर्माता बार्बे मास्सन की निर्मातृ-शक्ति का गणकीय बल इन सबका मूल उन लेखकों को जन्मता ही में होता है जो यह जानते हैं कि उन्हें प्रस्तुत सामग्री का प्रयान

१ श्रीकुमार बरहोपाध्याय—'नव साहित्य उपन्यासपारा' प्रथम संस्करण

किस प्रकार करना चाहिये—उसे किस प्रकार और किस रूप में पाठकों के लिये प्रस्तुत करना चाहिये ।

उनके कर्मों का दुहना पल होता है—एक तो उनकी हृत्ति का विरलेपण विद्या के लिये के अनुसार करना पड़ता है—प्रस्तुत मामूली विषयमयी है या नहीं निकालते हुए निष्कर्ष मत्प है या नहीं जिस माध्यम तय्य की स्थापना की गई है वे न्यायमंगत हैं या नहीं । परन्तु जब बध्य-विषय व माध्यम करन का प्रश्न उठता है तब कथा-प्रवाह के विषय में मोचना पड़ता है ता कि उनका हृत्तिकोष और बध्य-विषय के प्रस्तुत करन की दीनी मध्यम बन्धना के आधार को प्रकट करते हैं और तब उनका कार्य बन्धना के रूप में माहित्य के अन्तर्गत आ जाता है ।

यब इसी की गुणता में जब हम एक उपन्यासकार की बन्धना करने हैं तब हम उन अनुभव के और बन्धना के व्यक्तिया एक अन्तर्गत में काम लेन हुए पाते हैं । उनका पूरा लेखन बौध्म उनकी मझापना करता है । उनके भीतर एक उदात्त बन्धना भी आरुण हो जाती है और इन सबके मझरत प्रभाव के परिणाम स्वरूप वह एक ऐसी बन्धना-हृत्ति का रूप लेन में मझरत होता है जो वास्तविक जगत में बटित न होने हुए भी मझाबित सगती है । उनके चिरञ् एक इतिहास ग्रन्थ सभी आधार मूल प्रमाणों के होने हुए भी पूर्णरूपेण स्वाभाविक प्रपचा सत्य नहीं भी प्रतीत हो सकता । इसी तय्य को स्पष्ट करत हुए एक प्रपेय लेखन न कहा है कि उपन्यास में नामों और विषयों के अतिरिक्त और सब बातें सची होनी हैं (क्योंकि उनका आधार लेखन का स्वयं का अनुभव होता है और इतिहास में नामों और विषयों के अतिरिक्त कोई बात सची नहीं होती है । यह बात धन ही अत्युक्तिपूर्ण हो पर उसमें उपन्यास माहित्य एवं इतिहास की प्रकृति का ज्ञान प्रबन्ध हो हो जाता है । उपन्यास में जो मझाबित महत्वपूर्ण वस्तु है वह है हृदय की व्यंजना । उनमें विषयों तथा नामादि सभी तो घौरा होते हैं । नाम तथा विषय का उल्लेख इतिहास की वस्तु है ।

जो ज्ञान इतिहास के सम्बन्ध में सत्य है वही दर्शन व सम्बन्ध में भी सत्य है और वही ज्ञान मझेपणात्मक निबन्ध के सम्बन्ध में भी सत्य है । इन सबका मुख्य उद्देश्य उपन्यासक द्वारा है, पर विषय को प्रस्तुत करन में कुछ न कुछ कटीकरी (बहु मझी हो या कुटी) होगी ही । हम द्वारा उनमें माहित्य के उपन्यासक तथा मझेपणात्मक पलों का एक-दुसरे के ऊपर घाना देना जायदा ।

वे कला की विमुक्त इतिहास नहीं होंगी। यदि कलात्मकता हटा ली जाय तो वे विषय की स्वतन्त्रता के कारण निम्न कोटि के साहित्येतर वाङ्मय की श्रेणी में धा जायेंगे। इस प्रकार हमने देखा कि इतिहास वर्णन यथेष्टात्मक निबन्ध अपने विमुक्त रूप में आकर्षण नहीं रह जाते और कलात्मक का समावेश कर देने से कुछ आकर्षण-सिद्ध तो कर लेते हैं, पर विमुक्त कलाकृति के द्वारा प्राप्त ध्यानत्व यथा उसके आकर्षण का सामना नहीं कर सकते। विमुक्त कला-कृति में भी यदि कही प्रयोजन यथा प्रकट उपदेशात्मकता का प्रयोग हो जाता है तो उसका भी महत्व कम जाता है। उपन्यास में ये दोनों बातें अपने सहज रूप में सम्मिलित हो जाती हैं। उसमें प्रसंगवश भाई हुई इतिहास या वर्णन या इसी प्रकार की कोई और बात स्वाभाविकता की सृष्टि करती है और साथ ही उसमें कल्पना प्रधान होने के कारण भाषा-सौन्दर्य तथा शैली की निर्मलता रहती ही है यद्यपि अन्य विषयों का आरोप होने हुए भी उसमें विमुक्त कला-कृति का-सा आकर्षण रहता है।

ई० एम फोर्स्टर ने इस विषय पर इन शब्दों में प्रकाश डाला है—  
इतिहास वास्तविक घटनाओं की शक्ती पर निर्भर रहता है। उपन्यास में घटनाएँ सशक्ती रूप में होती यद्यपि पर उनमें कुछ और मिश्रण होता है या वास्तविक घटनाओं से कुछ निकाला हुआ होता है। यह ऊपर से मिश्राई जाने वाली या उसको सुधार कर काट-छाँट करने वाली यथा प्रभावोत्पादक संस्था उपन्यासकार का स्वभाव विधेय होता है और इसी कारण जो साक्षीयुक्त घटनाएँ होती हैं उनका प्रभाव यद्यपि ही घट या बढ़ जाता है और कभी-कभी तो उन शक्तियों का पूर्ण रूप से पतन भी देता है। इतिहास का सम्बन्ध मानव के व्यक्त रूप से रहता है। उपन्यास की यह विशेषता है कि वह मानव-रूप के घटनाक्रम में प्रविष्ट होकर उनके स्वरूप का वर्णन करता है।

उद्देश्य की दृष्टि से उपन्यास और इतिहास में बहुत बड़ा मौलिक अन्तर नहीं है। दोनों ही जीवन के मत्त का उद्घाटन करने में प्रयत्नशील हैं। उनमें

- 1 " History is based on evidence. A novel is based on evidence. \ the unknown quantity being the temperament of the novelist and the unknown quantity always modifies the effect of the evidence and sometimes transforms it entirely "

घण्टर साम्य का नहीं साधन का है। इतिहास तथ्य पर अधिकारिक आधारित होने के कारण अपेक्षाकृत मीर्य होता है। उपन्यास ऐतिहासिक सत्य के हाँ आधार पर न चल कर सम्भावित सत्य को ही ग्रहण करता है। इस प्रकार उपन्यास अपेक्षाकृत अधिक सरस एवं प्रभावोत्पादक होता है। इस विषय में डा. पुनाबराय का यह कथन दृष्टव्य है कि उपन्यासकार मजबूत की सी ही दिव्य दृष्टि नहीं रखते या केवल 'किजुर्बन्ति' <sup>१</sup> का ही उत्तर बँ सके बरन् 'किवि चार्यन्ति' का भी उत्तर देने हैं। इसीलिए उनकी कथा मीनर-बाहुर बोना घोर से पूर्ण होती है। वे मन्थे कवि का मीति रवि की गति में भी परे प्रमुर्यस्पर्शी मास लाम्क निवासिनी वृत्तियो और भावनाओं का भी धारण हटा कर उन्हे धालोक में ल घाते हैं और हमारे कौतूहल की पूर्ण वृत्ति कर देते हैं। यही ता उपन्यासकार और इतिहासकार में अन्तर है <sup>२</sup>।

जातीय उत्थान-पतन के अन्त और राष्ट्रीय चेतना के विभिन्न स्वरूपों का लेला-बोला इतिहास की वस्तु है किन्तु उपन्यासकार एक वैज्ञानिक के रूप में प्रयोगात्मक रीति द्वारा ज्ञाना बटनाचको एवं विविध परिस्थितियों का निर्माण करता है और उनका द्वारा उस सत्य का दर्शन करना चाहता है जो जीवन का सत्य बन कर मानवता के स्वरूप का अभ्यास कर सके। और इसी रूप में उपन्यास सबैष अर्थ में एक मौलिक कृति हुमा करती है।

### बिज्ञान और उपन्यास

इतिहास बर्लन राजनीति अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि का ही मीनि बिज्ञान की उपन्यास का धारम से ही प्रतिरुद्धी रहा है। बिज्ञान का धारम होते ही अनेक सबसे पहले मानसिक स्थिति का परिष्कार करना धारम्भ किया

१ 'बमस मे कुस्त्र म लभेता पुपुस्तक । मामकाः चान्द्रबाधैर्बदितकवत संजय ॥ १ ॥—(रोता अध्याय १ श्लोक १)

रोता कहा जाता है कि संजय को दिव्य दृष्टि का बरदान मिला था। वह अपने स्थान पर बैठ-बैठे पुत्र मुनि में जो कुछ हो रहा था उसके दृक् दृक् प्रीति देखे हाल की तरह बर्लन कर लभे थे। अन्त में उत्तराष्ट्र के कारण यह मुनिवा मिली थी।

२ डा० पुनाबराय—'उपन्यास का शरीर बिज्ञान'—साहित्य सम्बन्ध घापर उपन्यास ग्रंथ (अक्टूबर-नवम्बर १९४०)



वैज्ञानिक युग के उदय होते ही प्राचीन मान्यताओं को चुनौती दी गई। सामाजिक कृत्रिमों पर भी धक्के पर धक्के मने। समाज के कुछ भागों में नई नई बातों में रुचि बढ़ने लगी थी। बौद्धिक लोगों का ध्यान पूर्णतया वैज्ञानिक धारा-कार्य की ओर चला गया। उसी शोध कार्य की प्रवृत्ति ने साहित्य पर सबसे पहला प्रभाव उसके संवाहक मध्य पर डाला। इंग्लैण्ड में वैज्ञानिक युग के उदय के साथ ही प्रसिद्ध रायल सोसाइटी की स्थापना हुई। इसके सदस्यों में विद्वान्मन धर्म पुरु शोध विचारक तथा प्रयोगात्मक शोध में लग वैज्ञानिक लोग सभी तो थे। उन्होंने अपने ऊपर वैज्ञानिक धारा-कार्य के नवयुग का नेतृत्व करने का दायित्व स्वीकार किया। सबसे पहला काम इस सोसाइटी का यही हुआ कि इसने प्रचलित गद्य का संस्कार कर समवाचित प्रकार के सादरी के गद्य को अन्य दिया और इसी गद्य का मुख्य भाग बन कर कथा साहित्य के सिद्ध महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

गद्य के परिष्कार के सम्बन्ध में यह ध्यापक धारणा है पर लेकर क अनुसार 'क्रेकटरी क लक्षकों न उस समय के कल्पनात्मक साहित्य को सुधारण तथा तदनुकूल गद्य का निर्माण भी किया। अनेक डायरिया तथा जीवनियाँ मिली गई। विज्ञान का प्रभाव फिन्धन को इससे मात्र मही से धारा।

भारतवर्ष में भी उपन्यास के प्रकट होने के समय तक पारंपारिक विज्ञान का प्रभाव पुरा-का-पुरा विचार एवं साहित्य के जगत में प्रतिफलित हो चुका था। पहल सोच प्राचीन धर्म कथाया में रुचि लते थे। धार्मिक एवं धार्मिक धरित लोगो की रुचि का धारण थे। इसी की प्रवृत्तारुहा भारत में उपन्यास के उदयकाल में ऐतिहासिक उपन्यासों के रूप में हुई। उसमें धर्मीय के नीरस की प्रतिष्ठा एक बार फिर की गई थी। परन्तु विज्ञान के प्रचार ने रोमांत एवं ऐतिहासिक उपन्यास दोनों का ही निष्क्रियता का प्रमाण मान कर सोचा का ध्यान विज्ञान के नीरस पर धरतुल और धर्म की धार धारणित किया।

धार्मिक की कथाधर्म के बाह लोग फिर एक बार विज्ञान एवं काव्य का तुलनात्मक धारण करने की मानसिक स्थिति में धार। यह मुक्त मंड ने स्वीकार करता पड़ता है कि विज्ञान ने बहुत ही लोगों का स्वरूप न बनना के सम्मुख रखा। पर धर्म मत्र प्रवृत्तों की धरम उपलब्धि के रूप में प्राकृतिक तत्त्वों की बीच उभरी लुकी का निर्माण तथा उनका स्वरूप करने की धमता ही ली जा सकती है, पर धर्मने साधारण मानवीय व्यवहारों में हन हमने इस रूप

में भी स्वीकार नहीं करते। मने ही विज्ञान हमें उनका सुता हुआ ज्ञान सुलभ कर दे पर तो भी उनके प्रति हमारा सौन्दर्यमय तथा रहस्यात्मक भाव रहता है। यह बात भी ठीक है कि उनके प्राथमिक सौन्दर्य का दर्शन तथा स्वल्प मात्रा में रहस्य मेहनत विज्ञान को महापता से भी किया जा सकता है पर बहु धन्य पुरे रूप में तथा धन्य में निहित सौन्दर्य एवं रहस्य का पूरा रूप में स्पष्ट करते हुए हमारे जीवन के सीमित क्षणों में हमारे अनुभूति के माध्यम से प्रकट होते हैं। उन्हीं क्षणों में हम धन्य अन्तर में आन्वित होकर हर्ष धन्यका विस्मय वृत्तता धन्यका अज्ञान-मिथिल भय के भावों की उच्चतम मानसिक स्थिति में पहुँचते हैं। इन्हीं क्षणों में साहित्यिक वृत्ति का सम्भ होता है। वा ज्ञान की स्पष्टता में नहीं मिलता उसकी उपलब्धि साहित्य द्वारा प्राप्त होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि विज्ञान का प्राथमिक उपलब्धि की पूर्णता के पूरक रूप साहित्य का उल्लेख ही सा म्यान देना ही होना।

इस सब में 'बेहूष' का कविता और विज्ञान का अन्तर एक पुरुष क क्षण को मिश्र-मिश्र मोषों (मापी वैज्ञानिक एवं कवि) के क्षणों में प्रकट किया गया है। इसी प्रकार हम विज्ञान एक अन्वयन के विषय में यह तथ्य स्थापित कर सकते हैं। समार में प्राकृतिक सौन्दर्य जीवनरहस्य तथा सामाजिक समस्या का विस्मयण विनयी वा उच्चतम वैज्ञानिक प्रक्रिया द्वारा स्पष्ट क्या न किया जाय उनके माधुर्य सौन्दर्य रहस्य तथा स्वरूप का निर्माण यथा के माध्यम से वाच्य में ही हो सकता है। इस तथ्य के विज्ञानिक रूप का निदर्शन जोमा के अन्वयनों के माध्यम से किया जा सकता है।

विज्ञान न इतिहास एवं सामाजिक धर्मशास्त्र के माध है तथ्य कथात्मक साहित्य का भी धार्मिक आचार प्रदान किया है। इसका प्रभाव के कारण नवीन रचनाया में आध्या के आन्वयन शक्ति सम्बन्धाया और नस्याया के विज्ञान का स्पष्टीकरण कार्यात्मक के द्वारा प्रतिपादित धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार नहीं प्रस्तुत किया गया प्रस्तुत उसे भीतिक परिस्थितियों के धर्मिक परिणाम के रूप में उपस्थित किया गया। मिश्र-मिश्र देशों साहित्यिक धर्मशास्त्र का विकास उन देशों की राष्ट्रीय प्रकृति के अनुसार हुआ। यथा जर्मन में धर्मिक के सर्व-धीन स्वभाव न प्लास्यन के सैडेनबाघरी (१८२६ई) का जन्म दिया उनका यह सर्वोत्तम धर्म धर्मशास्त्रिया का वेद-पुराण बन गया। उनका अनुमाना बानरौट बन्धु और जाला बन्धु का भीतिक प्रभाव जन्म होने के निदानों की ज्ञान न वाचन के धर्मशास्त्री निज हुये। जोमा तो धर्म 'स

रोमा एक्सपेरिमान्ताल' धीर्वक लेख में उपन्यास की परिभाषा ही मानवीय जीवन में वैज्ञानिक प्रयोग के रूप में की। यह निरोक्षण की परिधि में घाये हुये लघुओं का सेता है, उनको मौसिक पदार्थों की जोड़-पड़ताल की प्रक्रिया में प्रयुक्त रूप से एक-दूसरे से मिलता है और ठीक तथा ठर्क सम्मत परिणामों तक पहुँचता है। उसने यह स्थापना की कि वे वैज्ञानिक के कार्य को घाये बनाते हैं घारे यूरोपीय देशों में एक समय में इन प्राकृतिक-बाधियों के सिद्धान्त का बोस वाला था यद्यपि वहाँ तक जोसा के द्वारा प्रति की सीमा को पहुँचाए हुए प्रति बाद की भाँति न था<sup>१</sup>। न्यू लेखक बेकोव न इस सिद्धान्त का विष्टपेपल करते हुये कहा है कि प्रकृतिवादी भीतिकता (matter) मे सत्य की खोज करते हैं। उस के अनुसार और नही उसे खोजा भी नहीं जा सकता क्योंकि वह केवल जड़ पदार्थ को ही देख सकते हैं, सुन सकते हैं और उसका माल प्राप्त कर सकते हैं—जड़-पदार्थ के बाहर न ता ज्ञान है न अनुभव और परिणामतः सत्य भी नहीं है।

इंग्लैण्ड में इस सिद्धान्त का धाधिकारिक डम से प्रबलता से तीव्र विरोप किया गया। यह सिद्धान्त धार्मिक भावना को भी ठेस पहुँचाता था—इस सिद्धान्त में मनुष्य के ध्यष्टित्व की पूर्ण प्रबहेलना थी। सब से बड़ी बात जो थी वह यह थी कि प्रकृति की मनुकृति की पूर्ण पराकाष्ठा होने हुये भी उनमें उसका उल्लेख होने से वह बच रहा था जिस को मौसिक पकड़ में नहीं जा सकते थे। उपन्यास में इसी 'धनमेन्तनेबुल' का शब्दों में उल्लेख करने का प्रयास रहता है और यही उपन्यास विज्ञान से बाजो मार में जाता है। जब

1 " Science furnished a philosophic basis for history and social economy as well as for fiction. Zola indeed, in *Le Roman Experimental* defined the novel as scientific experiment in human life. It takes observed facts and combines them, as in the process of physical investigation arriving at an exact and determined result. We novelists' he declared, continue by our observations and experiments the work of the physiologists, do continue that of the physicist, and chemist

— R. N. LOVETT AND H. S. HUGHES. *The History of the Novel in England.*



दूरस्थ क्षेत्रों के साथ मानव के सम्बन्धों की अपेक्षा सामाजिक सम्बन्ध का उप-  
न्यास था। जब रोमानी काव्य की प्रकृति की उपन्यासों पर प्रतिक्रिया प्रारंभ  
हुई जिस समय वह काव्य अपनी इहलोला समाप्त करता था जान पड़ता था  
एक बहुत समय से खोई हुई वस्तु की पुनः प्राप्ति हुई। कथा पुनः काव्य के  
निकट सम्पर्क में आ गई और ऐसे काव्य क साथ जा उससे कहीं अधिक  
वार्षिक एवं कल्पनाशील था और जिसने प्राचीनकाल में रोमांस को जन्म दिया  
था। बाले से मेरेडिथ हार्डी एवं कालराड तक प्राकृतिक उपन्यास अपनी  
प्रतिभ्यक्तियों में सगम्य काव्य के समान ही बहुकल्पकारी विस्तृत-परिधि वाला  
साधन बन गया। कल्पना मन्तव्य से बैठन वाली प्रत्यक्ष दृष्टि से अधिक व्यापक  
एवं गहनतर दृष्टि समता वही एक वह वेतना के अधिक विस्तृत क्षेत्रों का  
चिन्तन करती है उपन्यास में पुनः प्रतिष्ठित की गई केवल स्वच्छन्द रोमांस में  
बरबाद होने के लिये नहीं प्रस्तुत तर्क और सुषणात्मक शक्ति के सस्तेबसु में  
उपयुक्त प्रतिभ्यक्ति पाने के लिये।<sup>1</sup>

भारतीय उपन्यास के विकास में उदरणी हुई। बंगला यराठी एवं हिन्दी  
में बंकिम के ऐतिहासिक तथा बटनापुरी उपन्यास तथा हरिनाथमणु झाटे के  
इतिहास के विविध रूपों से कुछ उपन्यासों के अनुकरण पर उपन्यास लिख

1 "Medieval romance was the blood relation of contemporary  
poetry. There was not much in common with poetry in the  
novel from Fielding to Thackeray. The modern novel from  
the Brontës to Meredith, Hardy and Conrad became an  
instrument of vast compass almost as Protean in its manifesta-  
tions as poetry itself. Imagination a faculty of wider and  
deeper vision than the penetrating insight into motive which  
Fielding called discovery and invention in as much as it  
contemplated wider regions of consciousness, was restored to  
the novel not to waste itself in mere libertine romance, but  
to find adequate expression in a synthesis of reason and  
creative energy of the Prose and poetry of life. prose  
fiction had its rise in poetry it has reasserted its kinship to  
poetry."

गये । आरम्भ में विगोरीनाम गोस्वामी के ऐतिहासिक उपन्यास नाम मात्र को एतिहासिक है । मनीरंजन और कुतूहल का सृष्टि उल्लास एकमात्र उद्देश्य था । यमोद साहित्य के विनायक के रूप में उनकी व्यवहारणा हुई थी । पर प्रमोद का प्रवेश करते ही उपन्यास में संतुष्टि का माप साहित्यिकता और वाक्यमयता होना के ही कुछ धार । यमोद का रमेशचन्द्र रत्न और रत्नायक बाहु के उपन्यासों के अनु रूप संशोधन 'हृदय' ( मगन प्रभाव ) तथा प्रभाव जी के उपन्यासों में वाक्यत्व बलि का व्यक्तित्व बन उभरा और उपन्यास इन लोगों के हाथ में वाक्यत्व में गण का वाक्य ही बन गया । उपन्यास धर्म साहित्यिकता के रूप में ( मगनतावरण बर्ना— चित्रनशा' पत्राणाप रेणु 'परला परिकषा' अनुत्तमान नागर कुट और समुद्र' ह्यादीप्रभाव त्रिवेदा—'बाणमट्ट की वाक्यरूपा' प्रादि) का वाक्य का स्थानान्तरण बन गया है । इन्हें हम अपने धर्मों में मधुसूत के वाक्य रूप कह सकते हैं । सब पुद्गल का बलिता में प्रयोगकार की परम्परा में उप वाक्यत्व से गणत्व की ओर लौटा है और धर्म का वाक्य साहित्यिक उपन्यास ( मीना प्रांचल बनचनमा बलिता गया ) भरता है मीना ( धर्म-मीनों ) का-या वाक्यवरण नियत रूप वाक्यत्व के वाक्यिक निरूपण का गया है ।

उपन्यास वास्तविकता का संसार में अनुभव होता है । वह धर्म का प्रभाव करता है या ऐसा वाक्यों का प्रयोग करता है या उपन्यासकार यमोदिक रूप के मध्य बना सता है । उसका उद्देश्य होता है मीना संसार है मीना ही संसार धर्म प्रपन्न में प्रस्तुत करना । उसका उद्देश्य धर्म मन के नव संसार का धर्मो रचनाओं में प्रस्तुत करना मग होता । बलिता का नकार इस संसार का उदा-दानों से बना मग होता वह तो भावना का संसार होता है । वह धर्म सोक में मग्न नहीं होता बल्कि वास्तविकता उपाशाना से निर्मित होता है । वह धर्म नामी विचारों का संसार होता है यमोद दूर यमोद का ही उपादानों का सकार मीना भी चाहे बलि उस बना है । इस प्रकार बलिता सुखमय है होती है जब कि उपन्यास विमलपरात्मक होते हैं ।

जबन बलि के पाठे रहता है जहाँ से वह उसकी वाक्यता का प्रतिफल करता रहता है और उसे मापे रहता है ? यह मधुसूतक वाक्यकार के मानने रहता है और उसका वाक्यमयता उसकी उपाशाना तथा उसके विचारों का वाक्य बना रहता है । अब यह उपाशाना करता है का उपाशाना यह उद्देश्य होता है कि वह उस धर्म ( धर्मिणाव ) को बाहर निकाल कर मा' जो संसार में उसका विचार निहित रहता है । बलि ने मा' मन ही संसार में यह कर म' वाक्यों की शोध कर ली हो मने हो उनसे मात्र की हुई वाक्यों पर विचार भी कर लिया

हो मने ही उसे विज्ञान एवं व्यवस्थित अनुभव का अभाव न हो पर इन सब से वह अपनी धारों को रीता है और जो उसके स्व के अन्तर्गत होता है उसी को चित्रित करता है ।

कविता में लीन को आलोचना नीरुरूप से होती है क्योंकि यह एक ऐसे आदर्श संसार का चित्र प्रस्तुत करती है जिससे हम आब के जीवन की परब किये बिना नहीं रह सकते । इसी अर्थ में सभी आदर्श वास्तविकताओं की आलोचना होती है । इसके विपरीत उपन्यास जीवन की सीधी व्याख्या प्रस्तुत करता है, और साहित्य की सभी विधाओं में एकमात्र यही (उपन्यास की) विधा ऐसी है जिस पर मैथ्यू आर्नेस्ट की प्रसिद्ध मुक्ति सबसे अधिक ठीक रूप से लागू होती है ।

ईश्वर अकेला था । उसने संसार रचा । कलाकार ने एकान्तिक अकेलेपन का अनुभव किया और उसने उपन्यास की रचना की । जीवन में सब रस हैं, विविधता का बीज है । वह ईश्वर का महाकाव्य है । उपन्यास में भी सब रस हैं, वह जीवन का महाकाव्य है । महाकाव्य आरम्भ में लोक मोठा में पसता है और परम्परा के पैरों से घुटनों के बल चल कर धीरे धीरे की चेष्टा करता है । उपन्यास अपनी आरंभिक अवस्था में जनश्रुतियों में बाध करता है । महाकाव्य प्रतिभा को अपेक्षा करता है । अर्थ-काव्य तो महत्त्व के सामारख्य का व्यवस्था होता है । उपन्यास प्रतिनिधि प्रतिभा का सफल आस्वादन होता है । अन्य कहानियाँ साधारण कुतूहल की भाषा ।

कविता का जो रूप उपन्यास के कुछ समीप है वह है महाकाव्य । उपन्यासों को गद्य का महाकाव्य कहा भी गया है । इसी प्रकार महाकाव्यों का भी हम पद्यमय उपन्यास कह सकते हैं । उपन्यास और महाकाव्य दोनों में ही व्यक्ति तथा उनसे संबंध घटनाएँ दोनों के चर्चित होने का अन्त-विषय होता है । दोनों अलग प्रपात होने हैं और विषयप्रधान भी । दोनों में अलग कृति में घुमा-मिसा रहता है । दोनों तरह के काव्यों में जीवन की विविध दशाएँ सामन सामने आत घटनाक्रम वस्तु-वर्णन और भाव-व्यञ्जना के ठीक-ठीक परिमाण की व्यवस्था प्रोत्सहित होती है । कथा प्रवाह या संक्षेप-निर्वाह उपन्यास और महाकाव्य दोनों की प्रपात आवाक्यप्रथा है ।

उपन्यास और महाकाव्य इतने समीप होते हुए भी भिन्न-भिन्न इतियाँ हैं । महाकाव्यों का अन्त ही आदर्श होता है । महाकाव्य में उदात्त चरित्रों के महाकाव्यों की प्रतिष्ठा की जाती है । वर्णन-विषय काव्योचित दुर्गों का

समावेश तथा अद्भुत धार्मिक तथा अनिमानवीय तथ्यों का समावेश भी महाकाव्य की अपनी विशेषता होता है।<sup>१</sup> उपन्यास इतर जन को भी अपना 'हीरो' बनाता है और साधारण जीवन-क्रम में रोचकता का सन्निवेश करता है। उसमें अधिजनक यथार्थ का चित्रण होता है और मनोरंजन हा उसकी मकसद का रहस्य होती है। 'तुलसी' के राम का शासन समुद्र की लहरा पर भी है वहाँ पानी पर पत्थर ठहरने है और साधारण मनोरंजन होने है तथा एक कुम्भ में समुद्र उन्नीच दिया जाता है। परन्तु यदि कोई 'प्रेमचंद्र' या 'कोटिक' ऐसी विशालकाव्यों का सन्निवेश अपनी रचना में करे तो 'चन्द्रबाला' की भाँति उसकी रचना साधारण जन के लिये अपार्यक मने जा हो चाय किन्तु उसे सम्पूर्ण साहित्य की कोटि में नहीं रक्खा जा सकता। उपन्यासकार की कल्पना के पंगव कवि-कल्पना की भाँति उन्मुक्त नहीं होने उनके पैर पर यथार्थता का बंधन (निषेध) होता है। उपन्यासकार की दिव्य-दृष्टि रवि-रश्मि में स्पर्शा नहीं करती वह तो धवन धर को ही धरने जयन की ही मनी भाँति देख कर मल्लुट होती है।<sup>२</sup>

बाबू गुलाबराय भी इसी प्रकार उपन्यास और महाकाव्य के धन्तर को बताने हुए बहने हैं 'उपन्यास में महाकाव्य का-मा वर्णन धरत होना है किन्तु वह महाकाव्य नहीं। महाकाव्य के नायक-नायिका बुद्ध धार्मिक महत्त्व रखते हैं। राम या हृषीकेशादि महाकाव्यों के नायक कानि भी भावनाओं और संज्ञा की प्रतिनिधित्व करते हुए हमारे सामने आते हैं। उनका व्यक्तित्व जाति के श्रेष्ठतम माया में बनता है। उपन्यास और नाटक में व्यक्ति का प्राधान्य रहता है।'<sup>३</sup>

पिबनारायण श्रीवास्तव भी इस सम्बन्ध में एक विचार बाण की धार ध्यान धार-विन करने हैं — "यहाँ (महाकाव्य और उपन्यास के सम्बन्ध में) यह ध्यान रखना चाहिये कि महान् व्यक्तियों और महान् पन्थाओं का बहुत महाकाव्य का मजल नहीं उतलसारा माह है। यदि 'उपन्यास' के वर्णमाल रूप का विचार

१ विचाराय—'साहित्यदर्पण सूक्त परिच्छेद इत्येक (३१३ ३०४)

२ पिबनारायण श्रीवास्तव—'हिन्दी उपन्यास' पृ. ४

३ बाबू गुलाबराय 'उपन्यास का धारो-विचार' साहित्य-संश्लेष (उपन्यास धर) पृ. ४८ (दर-दर-बदल १९४०)



महाकाव्यों के सुदूर युग में हो गया होगा तो संभव है कि महाकाव्यों में भी इसी आदर्श की स्थापना होनी। आज दिन तो महाकाव्यों का दर्ब ही बन्द-सा हो गया है परन्तु महाकाव्य में भी अब सामान्य व्यक्तियों के जीवन की बटनामों के परिबेध की रश्मि लक्षित हो रही है। इसलिये महाकाव्यों की अवलति का प्रधान कारण उपन्यासों की वृद्धि भी बताया जाता है।<sup>१</sup>

वर्तमान समय में पद्य के माध्यम से महाकाव्य में प्रकृतिमत्ता का-सा समावेश करना प्रयत्न होता है। पद्य के युग में उपन्यास में पद्य के माध्यम को छोड़कर उसकी सब विशेषताएँ पाई जाती हैं। जिस प्रकार प्राचीनकाल में महाकाव्य बुन-मुक्य की कवि-वृत्ति के रूप में बुन के संवेद्यवाहक होते थे उसी प्रकार अबिष्य में उपन्यास ही दुर्लभतना का नियामक होगा और उपन्यास के 'प्लॉट' पर ही युग-प्रवर्तक का स्थायी 'प्लॉट फार्म' बनेगा ऐसा विश्वास एक होता जा रहा है।

साहित्यिक विचारों के ऐतिहासिक अध्ययन में निश्चय ही नाटकीय विद्या अत्यन्त प्राचीन सिद्ध होती है। भारत भुनि का नाट्य शास्त्र इस रूप का प्रकट्य प्रमाण है। संस्कृत-साहित्य में तो नाटक ही काव्य का सर्वस्व मत्ता जाता था। अंग्रेजी साहित्य के स्वर्ग-युग का इतिहास और उस साहित्य में शेक्सपियर का शीर्षस्थानीय होना उस समय के विश्व-साहित्य में नाटक की महत्ता का साक्ष्य प्रमाण है। आधुनिक साहित्य की दो प्रमुख विधाएँ नाटक और कहानियाँ उपन्यास के अत्यधिक निकट हैं। स्पष्ट रूप से बाहर से देखने पर नाटक और पद्यात्मक कथा-साहित्य में एक ही प्रकार की साहित्यिक कल्पना की सामग्री का उपयोग होता है। पर उसके साथ ही साथ बहु-बात भी उसी ही स्पष्ट है कि उस आधुनिक सामग्री (कल्पना) का उपयोग नाटक और उपन्यास में अलग-अलग ढंग पर होता है।

यह तो पहले ही बसा का चुका है कि उपन्यास के अस्तित्व का आधार है मनुष्य की वह प्रवृत्ति जिसके कारण सर्वत्र और सर्वत्र पुन्य और स्थिरा प्रवृत्त मानवीय मनोवैश्यों एवं आर्थात्तों तथा इतिषी क सामने फैले हुए विश्वा में दूसरे स्त्री-मुक्तों में रश्मि लेते हैं। साहित्य के पीछे यही प्रवृत्ति सर्वत्र व्यापक तथा सब से अधिक अक्षमती प्रेरणा रही है और यही प्रवृत्ति परिवर्तित होती हुई सामाजिक एवं कर्मात्मक परिस्थितियों के कारण अक्षमति के विविध

प्रयोगों का उपयोग भी करती है। एक म्यान पर बहु महावाक्य के रूप में प्रकट  
 होती है तो दूसरे म्यान पर बहु नाटक के रूप में दिखाई देती है। सभी बहु मयी  
 वाक्य इतनी ही माया 'बैत' के रूप में दिखाई पड़ रही है ता कुछ समय के  
 पश्चात् बहु रोमांस का रूप धारण करके हमारे सामने आती है। अतिशक्ति  
 क विभिन्न प्रकारों में सब के बाहर विकास स्थिति में आने वाला उन्मत्त ही  
 है। यह साहित्यिक विद्या इस समय सबसे बड़ी भी है और पूरा भी। बिम्बार  
 और व्यापकत्व की दृष्टि से यदि कोई अन्य साहित्यिक विद्या उन्मत्त का तुलना  
 में भी आ सकती है तो वह नाटकीय विद्या ही है। पर और सब बातों को  
 छोड़ने हुए (बिना किसी विशेषण के) यह बात म्यान में रखनी  
 है कि नाटक विद्युत् नाटकीय विद्या के रूप में नहीं पिया जा सकता। यह एक  
 मिश्रित कला है जिसमें साहित्यिक कला सम्मिलित तथा अतिशय न कला के साथ  
 बुने गिये हैं। उन्मत्त इन दोनों समाधानों से स्वतंत्र है, उन्मत्त ही है कि  
 मीरिन्द-बापटोई ने बड़े शब्दों में कहा है, 'एक वैश्वी कला' होता है जिसमें  
 न केवल व्यापक एक अतिशयताओं का अतिशयता होता है, प्रकृत वेग-दूरा  
 रूप तथा नाटकीय प्रदर्शन को अन्य महावाक्य-रूपों का समावेश भी होता है।  
 यह बात उन्मत्त और नाटक के तुलनात्मक अन्वय पर बहुत महत्वपूर्ण  
 प्रमाण बनाने वाली है। स्पष्ट है कि बिना नाटक कला के नियमों तथा नाट  
 कीय परंपराओं में नाटकीय विद्या नहीं बसित रहती है। इनसे कुछ होना क  
 कारण उन्मत्त को अतिशयतात्मक वर्गीय महावाक्य और एक प्रकार का अतिशयता

१ उन्मत्त एक प्रकार की कहानी है। या यों कहें कि उन्मत्त में  
 और बात हो या न हो उसमें एक कहानी बसती रहेगी। यह म्यान देने  
 योग्य बात है कि जिसे हम आज तक 'कहानी' कहते लगे हैं उसमें  
 'कहानी' का अर्थ अभी-कभी इतना कम हो जाता है कि उसे 'कहानी'  
 कहने में लजब होना है। नाटक में कहानी होती है पर नाटक  
 विद्युत् साहित्य नहीं है उसे स्टेज की सहायता लेनी पड़ती है पर कि  
 उन्मत्त विद्युत् साहित्य है और अपनी परिधि में स्टेज गिये बिरता है।  
 'इसी बात को बिम्बो ने और इस से कहा है कि नाटक अत्यन्त टोन  
 जति का साहित्य है और उन्मत्त अत्यन्त टोन जति का। (वाचार्थ  
 हजारी द्वारा प्रिंटेरी 'उन्मत्त 'साहित्य-समवेत' भाग ४ पृष्ठ २३  
 (उन्मत्त अर्थ) अक्टूबर-नवम्बर १९४० पृष्ठ ४२

पन मिलता है जो नाटक का अन्धे-से-अन्धा विकसित रूप भी प्राप्त नहीं कर सकता। दूसरी ओर उपन्यास अभिनयात्मक प्रदर्शन के स्थान पर बाह्य प्रकाश-कर्मन के प्रयोग के कारण वास्तविकता तथा बीबान्त स्पष्टता को खितना छाटा है उससे कहीं अधिक अभिव्यक्ति के गुण दूसरे प्रकार से पा लेता है। यह भी एक कारण है जिससे कि उपन्यास में जिस प्रकार अभिव्यक्ति के धर्म माध्यमों को अपने से पीछे छोड़ लिया है उसी प्रकार बहुत मानवीय जीवन में साधारण बचि रहने वाले घंघों में नाटक को अपने ही स्वान से हटा दिया है और अपने को हमारे पेशीदे तथा बहुपक्षीय धाधुनिक संसार की प्रमुख साहित्यिक विधा के रूप में अपने को हड़ता से स्थापित कर लिया है। यह भी समानरूप से स्पष्ट है कि नाटक और उपन्यास में एक और बड़ा अन्तर है जो दोनों ही विधाओं का अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिये अत्यावश्यक है। नाटक साहित्य की सर्वाधिक नियमित विधा है और मंचात्मक कथा-साहित्य उतना ही उन्मुक्त। इस तथ्य से समी सुपरिचित होने कि नाटक के प्रणयन के लिये विन्य-विधान को हृदयवधम करने का लम्बी पथचि का अन्त्यास और रंग-अंश के पूर्ण ज्ञान की अपेक्षा होती है, जब कि दूसरी ओर जिस किसी के हृदय में अन्तम-आगम और स्वाही हो और छोड़ा सा अककाय तथा धर्म भी हो तो कोई भी उपन्यास लिख सकता है। इस का एक दूसरा पक्ष भी है कि नाटक रचना के नियमों का निरूपण और उसकी जीव की नसीटी स्थिर करना सरल है। परन्तु वही बात उपन्यास के सम्बन्ध में स्थिर करना उतना ही कठिन है। अपने अन्त्य के रूप में नाटक और उपन्यास पर विचार प्रकट करते हुये बाबू अनाकराय लिखते हैं:— 'नाटक के पात्र कुछ घण्टों द्वारा व्यञ्जित करते हैं और कुछ भाव-अंशों द्वारा। अर्थक को अस्पता पर अधिक धोर नहीं देना पड़ता। अ-काल और परिस्थिति भी सीन-सनरी द्वारा अकन हो जाती हैं। नाटककार के इन सुमीतों के ल होठे हुए भी उपन्यासकार को जीवन का सजीव चित्र अकन करना पड़ता है। उपन्यास एक प्रकार का 'जिबी विदेन्ट' बन जाता है। अपने लिए पर स बाहर ज्ञान की आवश्यकता नहीं। पर के भीतरि मान में और बन उपन्य में सभी स्थानों में उक्ता अानन्ध लिया जा सकता है, किन्तु उन अानन्धदान के लिए उपन्यासकार को अकथितों का सहारा लेना पड़ता है। उपन्यासकार को नाटककार की अति समय और अककार का भी प्रतिबन्ध नहीं है। नाटक में उपन्यास की अपेक्षा सामाजिकता अधिक है।

'उपन्यास और नाटक में एक विशेष अन्तर यह भी है कि उपन्यासकार

अपनी कृति में समय-समय पर प्रकट होता रहता है और स्वयं पात्रों के चरित्र बयान उनके कार्यों पर प्रकाश डालता रहता है। नाटककार ईश्वर की भांति अपनी सृष्टि में व्यक्त हो रहता है। वह प्रत्यक्ष रूप से कुछ नहीं करता जो कुछ उसे कहना होता है वह पात्रों द्वारा ही कहलाता है।<sup>१</sup>

उपन्यास में अपने सब तक के विकास में समस्त साहित्यिक विधाया को धारण कर लिया है। 'दुर्गा सप्तशती'<sup>२</sup> की दुर्गा की भांति वह सब साहित्यिक विधाया की सृष्टि के सम्पन्न चेतना की बाणी बन रही है। हम उपन्यास में जहाँ एक घोर बीवनी (केवल एक बीवनी) और धारणकृता सम्पन्न (व्यतीत बीवनी) को बुला-मिला देखने हैं, वहाँ हमारी घोर पत्र घोर बायरी (नदी के द्वीप पामना) को उपन्यास का ध्वनिमूत्र होना हुआ पाते हैं। कहानी तो मनु-कथा (बर्म कीर भारती का 'मूरज का सानबा जोड़ा जीत का 'स्ट्रेट इज व य') के रूप में उपन्यास की विधा से मंथित हुए रह गई है। काम्यारम्भता तथा महाकाम्यम्भ तो युग प्रवर्तक औपचारिक की प्रमुख कृति ('गादान' 'जीम विरतोषी') को अपनी विधेयता सिद्ध हो रही है। नाटकीयता अर्थात् उपन्यास ('मृगयनी' 'मप प्रस' 'बुरिय हाइट') की प्रमुख विधेयता सिद्ध हो रही है।

सरोप में हम यह कह सकते हैं कि साहित्य की अन्त्या विधाया की अनेका उपन्यास अर्थिकाधिक धातुनिक्रम सृष्टि की मुन्दर कृति है। इसके विकास के परिणामस्वरूप काव्य अथवा नाटक के प्रकार में एक प्रकार का वैधित्य उत्पन्न हो गया है। उपन्यास की इस अफमता का कारण यह है कि हमने प्रत्येक साहित्यिक विधा से विधेय-विधान की प्रमुख विधेयताओं को धारणमाद्-ना कर लिया है।

१ बाबू गुलाबराय 'काव्य के रूप' प्रथम संस्करण (सं० २००४ वि०) पृष्ठ १२२—१२३

२ 'एकैवाह उपन्यास द्वितीया का समापन।  
 चर्यता दुष्ट मय्यव विजयो मद्रिभूतय ॥३॥  
 तत्र तमस्ताता द्वेष्यो बहूलो प्रमूनातयम् ।  
 तस्या द्वेष्यास्वनी अम्बुदेवैवासीन्तदाविदा ॥६॥  
 अहं विभूत्या बहुभिरिह वयवरासिपना ।  
 तन्महर्षे चर्यैव तित्ताम्यात्रो स्मिरोत्तव ॥७॥

## उपन्यास के प्रेरक तत्व

उपन्यास का स्वरूप और उसके निर्देशक तत्व

किसी भी साहित्यिक-विधा का तात्त्विक अध्ययन उसके बाह्य-स्वरूप विस्तार एवं उसके अन्तर्गत के उपकरणों के विवेचन की अपेक्षा रखता है। उपन्यास नामक साहित्यिक विधा अपेक्षाकृत नवीन होने के कारण अनुनापि प्रयोग-बन्धा में है। अतः उसके स्वरूप के सम्बन्ध में निःसन्देह रूप से कुछ कहना संभव नहीं है। उपन्यास साहित्य की अन्य प्रतिष्ठित-विधाओं तथा काव्य तथा नाटक को प्राचीन परंपरा की सुविधा प्राप्त है। हिन्दी में संस्कृत साहित्यशास्त्र की भाषासूत्र परंपरा के कारण काव्य एवं नाटक के स्वरूप उनके प्रकृत्यों तथा उनके उपकरणों आदि पर बहुत प्राचीन काल से विवेचनात्मक ग्रन्थ मिले जाते रहे हैं। उनकी स्वयं की अपनी एक स्वतन्त्र परंपरा भी स्थापित हो गई है। विश्व साहित्य में भी काव्य एवं नाटक की प्राचीनता इतिहास-सिद्ध-वस्तु है। वहाँ भी आदि समीक्षक अस्तु से लेकर अर्वाचीन संसृष्ट आर्द्रे ए० रिचर्ड्स तथा टी एच० इलियट प्रभृति समीक्षकों की रचनाओं में काव्य तथा नाटक के विविध विकसित रूपों की विवेचना प्रस्तुत की जा चुकी है। उपन्यास-विधा पारश्चात्य देशों में भारतीय उपन्यास-विधा से अताभिद्यों पूर्व प्रारंभ हो चुकी थी पर तब भी अन्य प्रतिष्ठित साहित्यिक विधाओं की तुलना में वह नवीन तम ही है। पारश्चात्य साहित्य (अथवा अंग्रेज इत्यसियन वर्मन इंग्लिश) में इस बीच में उपन्यास विधा पर बहुत-कुछ लिखा जा चुका है, पर वहाँ इस विषय में कुछ भी नहीं कहा गया क्योंकि इस विधा के पारश्चात्य देशीय समीक्षकों को भी इसकी सतत प्रवृत्तमानता का मंदैव आश्चर्यापूर्ण भाव रहा। उपन्यास विधा संबंधी पारश्चात्य समीक्षा-साहित्य का आचार मित्र मित्र लेखकों के ग्रन्थ ही रहे। यहाँ भी हिन्दी उपन्यास के स्वरूप को स्थिर करने में पारश्चात्य देशों के विविध प्रकार से उपन्यासों और उनकी समीक्षा तथा अब तक प्रकाशित हिन्दी उपन्यास एवं अनुसंधानी आलोचना साहित्य का ही आचार रूप में प्रयोग किया जायगा।

जिसी भी साहित्यिक-विद्या के स्वरूप का औचित्य उममें व्यक्त मंगल्य प्रार्थनं प्रथवा अनुभूति के साथ उमकी तात्काल्य अनुकूलता तथा विविधितम रूप में सम्यक् प्रतिबन्धित से ही प्राप्ता जाता है। उपन्यासकार का भी अपना एक विविध कर्तव्य होता है। प्रसिद्ध डॉक्टर उपन्यासकार मार्गम प्रुप्त न प्रसन्न महत्त्वपूर्ण धर्मों में अपनी प्रकृत का मोक्ष (Quest of Eternity) के सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से प्रथमा मत्र प्रतिबन्धित किया है— मैंने विचारण कि जो इस प्रकार की पुस्तक लिखने में समर्थ होगा वह मनुष्य विजिता मुन्नी होगा उसके सामन विजिता महान् कार्य होगा। वह कैसा होगा इसका अनुमान करने की क्षमता प्राप्त करने के लिये उच्चानिर्देषण एक एक कूठरे में ध्येयविक्रम सिद्ध बनाओं से तुम्हारा मुखक उद्योग्य उचार करने पड़त—क्याकि उम लयक का (जिसे प्रत्येक चरित्र के सर्वाधिक विरोधी चरित्रिक पक्षा को प्रकट करना पड़ेगा) त्रिमय उमके दृश्य में ठोस ज्ञान का दृग्य या ज्ञान। अपना हृदि की सर्वा मध्य में मार्ग हृदय मध्य विद्यया को ध्यान न करने का और उपन्यास धर्मियों का निरन्तर प्रावण्यव्यक्तानुसार वर्गीकरण करने का नैवार करना चाहिये। इस कार्य में र्मनामियन का-मी मन्वता बरतना चाहिये जो धार्मिक कर्म के ध्यान पर अपनी मारी शक्ति समा देता था। इस हृदि के प्रस्तुत कर्म के प्रदान को उमे उम प्रदान की तरह मैलना चाहिये जिसकी परि कमानि काय की सत्यता में होती है, उम हृदि के प्रस्तुत कायमार बाह्य को इसी प्रकार स्वीकार करना चाहिये जैसे वैशाल-विधि प्रथवा बाह्यिक के सम्बन्ध में प्रुप्त की सर्वनोमायेन स्वीकार करते हैं, उद्यका निर्माण उमकी उमी अज्ञानुक्त भावना से (एक ईंट पर दूसरी ईंट इस प्रकार रखते हुए कालो देवविद्वह पर पुष्प के ऊपर पुष्प बना रहे हों) एक बाष्पुवला-मुष्ण कारोपर देव-स्वान का नियमित करता है, उमका उम हृदि का दिन-प्रतिदिन उमी नियमित रंग में प्राये बसाने का कार्य जैसे त्रिम प्रकार इस प्रकार करने के प्रकृत कर्म का पानन करने प्रत्याहृदिक जीवन में करने हैं और हम अपनी उमा सर्व-शक्तिमता की भावना के प्रतिबन्ध होकर उमकी मष्टि करें त्रिम सर्व-शक्तिमता की भावना के स्वयं विधाता संसार का मष्टि करता है। इतना कर कर्म का भी हनें इस बात का ध्यान रहे कि कहीं के गृह्य एक धार न हूँ कार्य विधता प्रकृत्य कर्तव्य प्रथम मोर्षों की छोड़ कर और कही न जारी और त्रिमका पूर्ण दाग्गा ही कर्तव्य होने जीवन एवं कला न लक्ष में सबसे अधिक प्रगति करती है।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी है। वह यह कि जिसी कर्म-हृदि के

सामने हम किसी भी प्रकार स्वतन्त्र नहीं होते हैं और न हम उसे वैसे चाहें वैसे मनमाने ढंग से बना ही सकते हैं। उसका अस्तित्व हमारे अंतर में पहले से ही होता है और हम उसको खोजने के लिये इस प्रकार विवश होते हैं मानो उसका खोजना कोई प्राकृतिक नियम हो क्योंकि वह हमसे किया है और उसका प्राप्त करना आवश्यक है। किन्तु यह वह खोज नहीं है जिसे हम कला की सहायता से पूरा कर सकें। सब से अधिक मुख्यतः खोज तो यह है जो हममें से बहुतों को सदैव अज्ञात ही रहती है—हमारा अपना अस्तित्व—एक ऐसी वास्तविकता जिसकी स्वयं हमें अनुभूति हुई है और जो हम जो सब तक जानने हैं उससे इतनी मिश्रता रखती है कि जब संयोग उसे हमारे लिये अधिकारिक ढंग से अकस्मात् ईश्वरीय ज्ञान की तरह प्रत्यक्ष करता है तो हम भावनाय से भर जाते हैं।

इस कला की खोजना का प्रतिफलितरूप हमें हरिदास ठामसेल बँडूबाबरा बाल्पोल (फ.ब.) बाबोयेन (बर्मन) आदि के संगीत में अपने ध्यानदार रूप में मिलता है। इन सब गीतकारों एक संगीतज्ञों का असब-बसग अनुभव यही रहा है कि उनका संकीर्ण केवल सम-कामोन अन्व संकीर्णता के संगीत से ही निपट नहीं रहा बल्कि स्वयं उनके अपने संगीत में भी प्रारम्भ में वैसे कोई खोज नहीं रही। उनको स्वयं नहीं मान्य पड़ता कि कहीं से वह संकीर्ण प्रवाहित हुआ। इस प्रकार प्रत्येक कलाकार किसी ऐसे अज्ञात प्रदेस का निवासो प्रतीत होता है जिसे कि वह स्वयं सूझ गया है। अपने परिपक्वताय की कलाकृतियों के माध्यम से वह मानो अपने ही प्रदेस से संबंधित हो जाता है और फिर यावज्जीवन वह उस धार्मिकलोक से संबंधित रहता है। यह बात अक्षर्य है कि इस अज्ञात प्रदेस की स्मृति उसे ही न रहे पर उनका हृदय के तारों का सम्बन्ध उन प्रदेस से जुड़ जाता है, और फिर जो भी इति उनके द्वारा रचो जाती है उसको दुःख निग उभी अज्ञात् प्रदेस के संकीर्णतमक बाताबरतु से ही होना है और जब वह उक्त अज्ञात् प्रदेस के संकीर्ण को पकड़ पाते हैं तब वह हर्षतिरेक से मान विमोह हो जाते हैं। इस ढंग से वे कलाकार अज्ञान के संगीत-तरंग को पकड़ लेते हैं और जो वे अपने सबे हुए अन्तर के अखण्ड-रग्यों में गुन पाते हैं उसे ही वह अपने संगीत के माध्यम से प्रकट करते हैं। इस विचित्र प्रकार का संगीत हमें इन ईश्वरदत्त प्रतिभा सम्पन्न कलाकारों के अतिरिक्त और नहीं मिली पड़ता।

इसमें हमें जो बातें या कला अमता है—कला के माय के अन्त और आत्मा

के समरत्व का छत्र । यह कदापि सम्भव नहीं है कि किस कला-कृति-विशेष परबरा संवीर के पर से हमें उस नाबना का अनुभव होता है, जो जितना हमने देखा सुना या अनुभव किया है उससे कहीं अधिक उच्चकोटि का कहीं अधिक पवित्र अधिक सत्य हो और जिसका सम्बन्ध निरिच्छत रूप में साम्प्रतिक वास्तविकता से न हो । यह निरूपण ही साम्प्रतिक यथार्थ का प्रतीक होता है, क्योंकि यह नग्नीरता और शक्ति का धामास होता है । जब हम दमिण के किसी मन्दिर को देखते हैं पुराण के पुराने स्टीपेल (पिरामिड) को देखते हैं अथवा मार्स के बनों और छोटी हुई वृष्टों की पंक्ति (काश्मीर में चितार वृष्ट की पंक्ति) देखते हैं तब हमें कुछ इस प्रकार के धामन्द का धामाम मिलता है । दूसरी बात यह है कि जब हम पूरुंरुण्ड विस्नेपल करम में समर्य नहीं होत हैं ता हम किसी भी कला-कृति द्वारा अस्तिष्क पर बने हुए प्रबाव को बहुत महत्व देते हैं ।

टीयोर के बीजम की पंक्ति प्रूट के जोबम में भी एक अणु धाया या जब उसकी माँ ने एक रूप चाय और मेटेलाइन उसे दिया था । उस धरा में उसको जैसा कुछ अनुभव हुआ था वह विविध था । प्रूट में जितना अण्ड विस्नेपला टीयोर की ही नाति उस लणु का किया है और किसी संतक के बीजे ही अनुभव के शणु का नहीं किया है । वह कहता है—“एक उत्तम प्रकार का धाहाद न

1 "Two hypotheses, "he says, suggest themselves in all important questions, questions of the truth of art of the immortality of the soul. It is not possible that a piece of sculpture a piece of music which gives us an emotion which we feel to be more exalted, more pure, more true, does not correspond to some definite spiritual reality. It is surely symbolical of one since it gives that impression of profundity and truth. Thus nothing resembled more closely than some such phrase instead the peculiar pleasure which I had felt at certain moments in my life when gazing, for instance at the steeples of Martunville or at certain trees along the road in in Balbec—The other hypothesis being that we magnify the importance of impressions which we are not able to analyse



मेरी इच्छियों को अधिमूर्त कर लिया था। वह धान्य कहीं से आया था, इस श्रेष्ठ का कुछ भी पता न था। वह महान् शक्ति-मय धान्य कहीं से आया होगा? मुझे यह ज्ञान था कि उसका सम्बन्ध चाय और केक के स्वाद से था। पर वह स्वाद साधारण स्वाद से कहीं अधिक बड़ा बड़ा था और उसमें विष्य स्वाद का आभास भी मिला।

दूसरी बार चाय का बूटै पीन पर वह धान्य नहीं आया फिर पहले के धनुमय का स्मरण करने पर फिर वह ऐसे स्मृति-पटल पर उसी प्रकार उभर आया जैसे पीसिभेन बाब के पापी में जापानी कागज पर हृष्यादि उभर आते हैं। चाय के प्यासे का सत्य वह सत्य था जिसमें इच्छियों पर पड़ा हुआ प्रभाव प्रसाधारण शक्ति से भरीत को लौटा लाया था और विदय सुनिष्ठा के सत्य सत्य इसी प्रकार के थे।

य सब बातें स्मृति में इसलिये आती हैं कि जब होने पर हम उस दैव को सुन जाते हैं, लेकिन पूरी तरह पर उसे कभी नहीं सुमते। संश्लेषः एता रिचरेंडु टापडु (Als Recherche du Temp perdu) को मानवीय नाटक (Human Comedy) के स्वात पर विष्य नाटक ही कहना ठीक होगा। उसमें नरक का भयानक रूप से और बिना कुछ छिपाए हुए पूर्ण वर्णन दिया गया है, पर स्वर्ग का वर्णन भी पूर्णतया अनुपस्थित नहीं है और यद्यपि एम० मारिस ने यह चिया है कि समूचे महान् उपन्यास में ईश्वर अनुपस्थित है और यद्यपि यह भी सत्य है कि उपन्यास का कोई भी पात्र उसके आदेश को पालन करने को तत्पर नहीं है—तथापि एम० मारिस का यह कहना ठीक है कि कथा की प्रवक्ता की दासी ओर माँ किसी भी भौतिक सिद्धान्त के हिसाब से न तो पवित्र है और न भले ही—तथापि स्वाम (प्रधान पात्र) और कथाकार उमी बाल की अधि सापा करते हैं जो वह (अवधान) मानवमात्र के लिए बना चाहता है और कथाचित मोहबी सही में अर्धोत्पत्ता का यह बड़ा दुर्मम चिह्न है। उनमें से अमर अधिसायाएँ ही नहीं हैं बरन् उनम इस बात की मान्यता भी है कि उनमें दिवाहन बस की प्राप्ति की अमर अधिसाया है।<sup>1</sup>

हम यह भी जानते हैं कि जब उपन्यासकार एक उपन्यास लिखता है तो वह क्या करने का उपक्रम करता है। अन्य कथाकारों की भाँति उपन्यासकार भी निर्माणकर्ता होता है। वह एक अनुकरण वस्तु का निर्माण करता है—वह

1 Robert Liddell—'Some Principles of Fiction' pp. 158.

धनुकरण करता है मनुष्य के पृथ्वी पर के जीवन का । यह कहा जा सकता है कि बीसा वह बैजता है और धनुमन करता है बीस ही जीवन के काम में धान काम धान्यों का निर्माण करते हुए बनता है ।

यह सभी शब्दों उपन्यासकारों के चरित्रों के विषय में सत्य है । उपन्यासकार की कला का एक पक्ष तो है चरित्रों और पाठकों के बीच मध्यस्थता का कार्य करना-और यह कार्य वह काबज पर समित्त किए हुए प्रत्येक शब्द के सहारे करता है, क्योंकि जो भी शब्द वह लिखता है, उसमें से प्रत्येक शब्द अपने चरित्रों के प्रति उसके दृष्टिकोण की व्यक्तिगत को ध्यान बढ़ाता है और साथ ही साथ उसके द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली परिस्थिति की संपूर्णता को भी ध्यान बढ़ान में सहायक होता है । यह स्पष्टरूप से कीर्तिमान पढ़ते, संवेदित हुए प्रथम शरीर प्रसार' धारि के विषय में सत्य है । प उपन्यास के बीच में धर्म व्यक्तित्व के माध्यम से कथा की सृष्टि करने जाते हैं और साथ ही चरित्र एवं घटनाओं की गति-रस पर व्याख्या भी प्रस्तुत करते रहते हैं । यह बात किफो रिचर्डसन की किफो मयबतीचरण बर्मा फ़ोलीमनाय रेणु तथा फ्लावेयर और जेम्स ज्वाएन एमे मैककों में भी पाई जाती है जहाँ ललक प्रयत्न करते धर्मन द्वारा बखिण घटनाओं के गतिधर्म से धर्मन का धर्मन रखते हैं । हम कहते हैं कि वे अपने से बाहर भी जाना पर ध्यान देन जान हैं, बालन में धर्मन चरित्रों और परिस्थितियों पर धर्मन मन धर्मने चरित्रों और परिस्थितियों पर धोख में प्रकट सा कर देते हैं । ऐसा है उन चरित्रों के चुनाव के माध्यम में और धर्मन प्रस्तुत किए हुए बिचारों और भावनाओं के माध्यम से करते हैं । धारम्यता पहले पर वह चरित्रों के उन धारण और मन्थनों को जो लेते हैं जिन्हें हम उन पर मैकक द्वारा धारोपित रूप में ग्रहण करते हैं ।

तब यह बात स्पष्ट हुई कि प्रत्येक उपन्यासकार धर्मन व्यक्तित्वान बिचारों यहाँ से प्राप्त नमनार के धारम्यता के स्वल्प को देखता है । इन स्वल्पानों के धनुमन का धर्मनय पुरुष और रिचरों की धर्मन के माध्यम में जाता है । इसका हम या कहें कि वह उपन्यासकार के द्वारा बनाया जाता है और इसी कारण हम उसे नियमन उपन्यासकार की धर्मन का धान वह मन्थने हैं । नमने उनके धरानों के उन संतुर्ग नमनार के बीच होता है जो वह धर्मन के सहारे धारम्य पर उजाहता है । और यह बात नमने होने हुए भी कि वह धर्मन का नमनार है वह धर्मन में पूर्ण होता है, उसमें धर्मन प्रवर्ग की धनुमनता रहती है और

उस संसार में सब बट्कारों ऊन्हीं मनोवैज्ञानिक नियमों से निश्चित होती है जो उसके निर्माता की कृत्तियों को घोर जीवन के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं को भी नियंत्रित करते हैं। ऐसे कल्पनात्मक संसार की सृष्टि करना ही उपन्यासकार का उच्चतम प्राप्तिव्य गही है।

नवात्मक कथा-साहित्य की भारत प्रायः बहुत थोड़ी घोर विस्तृत रूप में प्रवाहित हो रही है। कहीं-कहीं तो बयों का बाह की जल-मारा की भाँति यह मटमैले पानी बाली भी है। यह तो एक स्वयंसिद्ध तथ्य है कि सारबस्तु तथा उसका स्वरूप दोनों ही प्राण घोर घरेर की भाँति परस्पर सम्बद्ध हैं घोर महान् कृत्तियों में तो उन्हें एक-दूसरे से पृथक् किया ही नहीं जा सकता। तथापि सारबस्तु के प्रस्तुत करने का ढंग या उसका सिल्य-विधान केवल एक निश्चित सत्य-प्राप्ति का साधन-मात्र है घोर यदि यह कौशल इस विचार द्वारा अनुपासित नहीं होता तो वह सिलबाड़ मात्र रह जाता है। जो कुछ भी हा जाड़े साहित्यिकता की ध्वि का उन पर से प्रायःकथा से अधिक प्रदर्शन करने वाला व्यक्ति हो सक्ता सीधा सारा पाठक से उपन्यास से मुख्यतः सुन्दर स्वरूप या जीवन का कोई दुर्लभ सारब मात्र नहीं चाहते बल्कि जीवन की कोई ठोस व्याख्या चाहते हैं जो किसी प्रतिनिधि कथात्मक के द्वारा अभ्यक्त रूप से अभिव्यक्त होती है सक्ता महापारदर्श-गुण सन्धेय के द्वारा स्पष्ट रूप से व्यक्त की जाती है। इसलिये हमारी विचिन्ता के विषय का यही परिचित स्वरूप है—उपन्यासकार का जीवन का स्वरूपामोक्ष वह स्फूर्तिमय भावैय जो उसकी सामग्री के जयन एक रूप-विधान क अनुप्राणित करता है।

यहाँ पर हम प्राकृतिक उपन्यास घोर इस समय की साधारणतः मौलिक समस्याओं के सम्बन्ध का भी अपने विचार-क्रम में स्वाम देने। प्राय की समस्या है मानव की नए ज्ञान की समस्त उपलब्धि को अपने साहित्यिक विधान में समेटना। एक कारण से यह समस्या अल्पकाल कटिग हो जाती है घोर वह कारण यह है कि अनुप्य अब तक अपने नए ज्ञान का अपने में पचा नहीं सका है। इसलिये वह इन समय तक अपने नए ज्ञान के संसार के अनुकूल नहीं बना पाया है। मानव प्रादि बात से अपने को इस प्रपंचात्मक संसार से मुक्त करने का प्रयत्न करता रहत है पर सृष्टि के इतिहास में किमी भी समय उसके प्रयत्न का अभिमान इनकी पेशीरती से पूर्ण समस्याओं के बीच से होकर नहीं हुआ जितना प्रायःकत है। सारम्भ में इससे जीवन

सम्बन्धी निष्कर्ष उसके द्वारा प्राविष्ट चरित्रों के माध्यम से प्रकट होने रहने हैं। वे उन परिस्थितियों के माध्यम से भी प्रकट होते हैं जिनमें वह चरित्रों का रचना है। वे कभी-कभी उन शब्दों के माध्यम से भी प्रकट हुए हैं जिन्हें वह चरित्रों एवं परिस्थितियों को प्रस्तुत करने में प्रयोग करता है। निष्कर्ष शब्द से हम बच नहीं सकते यद्यपि हमसे यह बात नहीं निकलती कि निष्कर्षों पर जानबूझ कर पहुँचा जाता है। हो सकता है कि उपन्यासकार का कुछ प्रकट रूप से चाहता है वे उसमें भक्त न जान हों। उपन्यासकारों न उपन्यास सिंगन न बनकर हेतु बतसाए हैं। संघर्षों के प्रारम्भिक उपन्यासकार रिचर्डसन का विश्वास था कि वह महाभारत की प्रकृति हट करन के सिंग उपन्यास की रचना करता था हिन्दी के प्रारम्भिक काल में सख्तवाचन की का उद्देश्य यही था। संघर्षों उपन्यास का जन्मदाता फ्रिड्रिख युग की रीतिवा के लिए उपन्यास सिंगना था हिन्दी के प्राथमिक उपन्यास के जन्मदाता बीनिबाम दास इसी मत के समर्थक थे संघर्षों साहित्य का सर्वप्रथम उपन्यासकार डिबेन्स उपन्यासों का उत्पादन (घोर बहू भी एक बड़ी संख्या में घोर लीजगति से) सामाजिक कुरीतियों का पर्दाफास करने के सिंग करता था प्रेमचन्द भी जो हिन्दी साहित्य में उपन्यासकार के रूप में डिबेन्स के समान ही घोर किन्हीं प्रथा में उनमें भी अधिक साफ़प्रिय हुए, जन-समाज में व्याप्त कुरीतियों के उन्मूलन के लिए घबरे कृतिवा द्वारा उत्तम प्रयत्नशील रहे। दोस्रोप को काटि न उपन्यास लेखक बचन पैसा पैसा करने के सिंग मिलने थे। हिन्दी में मोराराम राम महमरी का भा यही ओबनाम व्यवसाय रहा। यही कारण युक्ति समन प्रतीत होने हैं पर यदि हम इनका बुझीकरस करें तो हम उपन्यास रचना में निहित सामाजिक प्रकृति की तरह में पहुँच कर वास्तविक बात का पता पार्ये। उस अनुकरण कृति बाप उस समार की निर्मात्री प्रकृति का सादिक तथ्य तो यह है कि उसे उसके ध्यान के योग्य में हा ध्यान की उपस्थिति होती है। उससे सम्बन्ध के दोष लक्ष्यांक ता इन बात में हैं कि वह ध्यान समाज के निरीक्षण को गन्द-गन्ध में विभाजित करता है घोर विर उनको मिया कर एक में कर देना है घोर इन मत के निरन्तर करने में उन महज ध्यान की ओमी परतीति होती है। जिस प्रकार एक छोटा बच्चा ध्यान का नेलने से रोह नही मरना उसी प्रकार वह भी इन मत की लीड़ा में धरने का रोह नहीं मरना। इस सम्बन्ध में एक बात घोर ध्यान देन का है। बच्चे धरने को मरने से रोह नहीं मरने पर वह ध्यान भी है यह उनके चतन निरन्तर के

बाहर की बात है—यह अंतिम बात ऐसी है जिसका उपयोग साइकियाट्रिस्ट्स बच्चों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में बहुत अधिक करते हैं। जब मैं बच्चा विश्व क साथ अपने भावात्मक सम्बन्ध को खिलौना की व्यवस्थाक्रम में प्रतीक रूप से प्रकट करता हूँ। उस ही खेल में वह अपनी वैयक्तिक कहानी का सम्भावित आधार प्रस्तुत कर देता है। उपन्यासकार भी अपने चरित्र के चुनाव में और उनके कृत्यों के माध्यम से बहुत कुछ यही बात करता है। इस रूप का प्राथमिक प्रयास तो इसी बात में देखा जा सकता है कि जितने मा विद्यालय खेल में बिस्तृत मानवीय चरित्र के प्रकार और उनके पारस्परिक सम्बन्ध और उन सबके समाज से और ईश्वर से सम्बन्ध कात्मिक रूप से हमें ज्ञात हैं, अपेक्षाकृत उसका प्रत्यक्ष भाग बड़े से बड़े उपन्यासकार की कृतियों में स्थान पाता है। उदाहरणार्थ टालस्टॉय के ( 'वार एण्ड पीस' ) तथा प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' के बहुत बिस्तृत रंगमंच क्षेत्र पर भी जीवन के कार्यक्षेत्र के विस्तार की तुलना में वे बहुत छोटे लगते हैं। यह भी सबके द्वारा निरीक्षण करने वाली एक साधारण बात है कि बड़े से बड़ा उपन्यासकार भी मानों एक ही प्रकार के सोचों और परिस्थितियों की शोख एक उपन्यास से दूसरे उपन्यास में बहुरूप के साथ करता जमा जाता है। इस दृष्टि से हम संघर्ष के हार्डी बवसा के चरित्र तथा हिन्दी के 'जनेन्द्र' का नाम ले सकते हैं। ऐसा मामूल पड़ता है मानो लक्षक पर उस शोख करने का एक मूतसा मबार है। बात वास्तव में यही है। उपन्यासकार का मानसी चुनाव का अधिकार केवल सीमित धर्मों में है और उसका चुनाव उसके व्यक्तित्व की सम्मीरितम विवसताभा द्वारा नियन्त्रित रहता है। यही विवसताएँ उनके उपन्यास की प्रवृत्ति तथा उपन्यासों के माध्यम से व्यक्त मिश्रणों को निर्धारित करती है। यही कारण है कि किसी उपन्यास का समसूच्यक करत समय हम लक्षक की चरित्रा की सृष्टि करने की साम्यता का ही मुख्य गृही धारणा पड़ता वरन् उन चरित्रा एवं उनका साधारण म अन्तर्निहित मूर्त्यों का भी धारणा पड़ता है। इन अन्तिम बात का विचार ही प्रथम कोटि और द्वितीय कोटि के उपन्यासों का अन्तर स्पष्ट करता है —यथा संघर्ष में जीवन धार्मिक तथा धार्मिक जीवन के उपन्यास का अन्तर बवसा हिन्दी में जनेन्द्र और विद्याधरधरणा के उपन्यासों का अन्तर।

कुछ धार्मापकों की चरित्र और उनका साधारण की बात धर्मपत्नी जाती है। एम० सी० मादरम अपने अन्वयात्मक तीर्थक वाले लोगों के मरत मेरी वीरवेय से जितने मड़के से ? में लिखता है, 'यह मान्यता कि धर्मकाय के लेखकों को छोड़ कर अन्य किसी लेखक का यही प्रमुख कार्य है कि वह

चरित्रों की सृष्टि करे—इसका धारण बड़ी बुनी तरह से उपन्यास के धारणका षेक म मी हुआ। विचाररूप में यह कहा जाता है कि चरित्र पात्र को सृष्टि होनी है तत्काल की नहीं। निम्नलेह यह कहना बार्त्त नहीं कहा है कि उपन्यासकार स्वयं इस बात पर साधारण रूप से विचार करते हैं कि चरित्र की सृष्टि करना उनके लेखन-कार्य का महत्वपूर्ण धर्म है। एक उपन्यास एक संपूर्णता होती है जो उनमें प्रयुक्त मध्यम शब्दा में मिल कर बनती है और संपूर्णता के ही रूप में इसका व्यवस्थित होना चाहिये। चरित्र चित्रण इस संपूर्णता का एक अंगमात्र है, पर माप ही यह भी स्पष्ट है कि यह एक आशयक शब्द है और महत्व की दृष्टि से प्रथम-स्थानीय है क्योंकि यहाँ तक पात्र का व्यवहार होता है इन (चरित्र-चित्रण) के बिना मानव के भाष्य-मन्त्रणा सम्पन्नतम धार्मिकता का बल भी दृश्य नहीं रह जाता। उपन्यासकार की मानव के भाष्य-मन्त्रणा धार्मिकता की धर्मिकता, चरित्र के माध्यम से ही सम्भव है।

उस धीमेनी कीविम धर्मो पुनश्च 'दिव्यता ऐम् दि गीर्द्धि चरित्र' से कहती हैं कि उपन्यासकार का वाक्य बचन मोटे तौर से रूप रेखा (परिग्रहमान्य) प्रयुक्त कर बना है और पाठक का उसके साथ महामोग करना धर्म म इस विधान का अन्त कर बहु 'व्यक्तिगत लोगों' के सम्पर्क म है। तब यह उस प्रक्रिया का वर्णन करती है जो किन्तु प्रकार की उद्वेगित बाध और कम पहुँचायीया बाध उपन्यास के पढ़ने में सम्भव होता है। किन्ती ही उच्चकोटि के रूप में उपन्यासकार चरित्र का सृजन करता है उनको बड़े तौर पर केवल आदर्श-आत्म में प्रयुक्त करना उतना ही बटित जाना है और चरित्र का संवत्त वर्णन के रूप में उपन्यास म जो बुद्धि होता है उस तब के द्वारा प्रभावित होता है। उदाहरण के बिने हाँके के चरित्र एवं उच्च म चरित्र रंगने से साधारण म बनने हैं, वैविध्यमान्य मन्त्रण बाधाबाधावर्द्धि म दृष्टा सांस्कृतिक विराटी के बिचर में विचार रूप से बार्त्त दूर धार नहीं है पर विमः इस में हम उन्हें रंगन को वाच्य जान हैं बहु इस बात पर निर्भर नहीं रहता कि हाँके या उच्च में उन्हें विम प्रकार में प्रयुक्त किया है। बरन् बहु उनके उपन्यास की संपूर्ण रूप में प्रयुक्त करने के रूप पर धारित रहता है। जान हाँके में कि विचारगम्य मन्त्र' मायक विचर्य में यह निगाया है कि विम प्रकार हाँके बस्तुता का प्रवृत्ति के उस विषय को रचना है उनके माती और विचार उनके चरित्र ही हान है। उनके लेखन-व्यंग्य की यह विचरता है—

कथानक के बीच में घासे हुए प्राकृतिक बर्खन एवं समूर्तिका मूलिकाय धारि समी प्रयोगों द्वारा बहु धपने धनीसिष्ठ धमिध्यधि को ही पाठक की सहजानुमृति बना देता है । हाथों का जीवन के प्रति टप्टिकोरा को उमके धरिध के प्रति हमारी प्रतिक्रिया को निर्धारित करता है उसके सिधन हुए प्रत्येक बाधम में धध्यल भाव से स्पष्ट होता है । जैसे कि धीमती सिधिस के कबल से प्रतिधन निठ होता है कि पाठक किसी भी भांति मनमाने ढंग से धरिधों की बाध धाकृधि की सीमा रेखाधों में रंघ धरने में स्वतन्त्र नहीं है । यही बाध धैनेत्र धधवा धरिध का गहुरार की सुधि करल बासे किसी भी धौपध्यासिक के धिधय में कही जा सकती है । बिना इस प्रकार की कर्तध्यधुति के सधेष्ठ प्रयत्न के ही सेधक धपनी मीध में मनोरंजन के सिधे लिखत हुए भी धीधन की ध्याध्या प्रस्तुत करते रहे हैं । पर धाककत तो धीधन की ध्याध्या प्रस्तुत करल का धिधाररुत की भांति धाधुनिक उपध्यासकारा के सर पर बधा रहता है । धधि काधठ पाठक उपध्यास से बाधनिकठा को धानन की धयेठा नहीं रखते । वे तो धीधन के ध्यधहार की धिधामात्र धानना चाहते हैं, वे उसस धीधन के स्वध्यामोक के प्राप्ति की कामना नहीं करते बरन् एक धीधन-धिधि में धारिधिव होना चाहते हैं ।

हमें उपध्यास की प्रेरक धृत्तियों तथा उमके धिधिष्ठ उपकरधों की धिधेधना करने के धुरं उपध्यास के इमी स्वधध को सिधर करना है । धधीर प्रकृति कि धाहिधिक की तथा मोक-रिधत का ध्यान रखन बासे धामोधक की धाध की ममध्या यही है । धाककम बसुध्या क प्राधीन स्वधध बधन रहे हैं—धारिधायिक धधधों के धधध भी धरिधरिधित धीर धरिधरिधित हा रहे हैं धीर इन धामा धाठों के धरिधामधधध स्वधं धीधन के धुध्या का धी धुधार धधवा धरिधरिधन हो रहा है । इस ध्रम में उपध्यास की धरिधायी का धी धिधाम हुआ है उपध्यास धिधिष्ठ ढंन में—बाइ बहु धाधिक धधध म हो धधवा धाधरी धध म—धाकक क धनुधध का धरिधनिधिव धरता है धीर इधीनिध बहु धरिधधधधधध धे धीधन की ध्याध्या भी प्रधुत करता है । उपध्यास हमें धपन भाध के मनुध्या की प्रधुति को धमधधम म सहामक हाता है बाधनिकठा का ध्यधहार में धामे के धधध को प्रधधधित करता है । ह्य उमके प्रधधध क धरिधाम धी धाध नहीं कर सकते । यह धधध केधल इध धमय क उपधधध धाक को धधधध धिधधि का प्रधधध ही है, इससे यह निधधधं मही निधधना कि इध उधको ध्यध कधम के धधध से धरिध हो धायें । हां इस धरिधर क धधध कधमे में यह ध्यान रखना

पढ़ना है कि जैसे ही माया की धमिधार्य शक्ति की सीमा छू जाय और प्रपान रूप में भावनात्मक पुण्य ग्रहण कर स तब उनाम धमिधाम को विचारों का बाह्य न बनाया जाय बल्कि अपरिहार्यरूप से प्रयुक्त हाय नाम अस्पष्ट प्रतीक नामक पारिभाषिक शब्दा की यथामयब संयत एवं निहित अम में प्रयुक्त करने की श्रुता करें ।

अतः में एक बात पर और विचार करना है और यह यह है कि हम इस समय के विचारों के संसार में जहाँ विरोधी भावनाया वा बाल-बाला है जहाँ अक्षरचरे विचारा का समर्जन कीचित्नीति में होता है—अर्थात् किसी भी साहित्यिक मिश्रण को बलगत समर्जन में अथवा आश्रयक रूप की श्रुतावली व प्रयोग से पुण्य नहीं करता है । इस सम्बन्ध में हमारा के मना को समझने का महानुभूति पुण्य वृत्ति एक युवानुरूप साहित्यिक जननाया का समन्वय करने की प्रवृत्ति हमारे इच्छिकमनु का उगार बनाययो और तभी हमारा सम्पापनाया की उपन्यासवार एक पाठक की सहायिका-शक्ति बनाने की संभावना होगी ।

### उपन्यास के प्रेरक तत्व

‘जीवन की म्यास्या’ तथा जीवन के स्वरूप के धामाक की प्राप्ति’ उपन्यास की श्रुति के मूल में होने ही हैं, पर इनका साथ ही बुद्ध और भी विगिण प्रेरक तत्व हैं जो इन विधा का धामे बडान हुए इनका विस्तार करने में भी नवीक सहायक होते हैं । उनमें प्रमुख हैं—कुरुहल मनोरजन एवं अर्ध-मिष्टि ।

### कुरुहल

कुरुहल<sup>१</sup> कहानी का मूल है और कहानी उपन्यास के मूल में उनी प्रकार है जिन प्रकार धारि मानव धानुनिक संरिणल म्यक्तिव का धारमिष्ठ पर विरामधोन रूप है—विरामधीसतप परिबन्धन रूपमात्र नहीं बटा जा मरता ।

१ कुरुहल—तत्रा पुनिक (तदहन) किसी वस्तु के देखने या किसी बात के सुनने की प्रथम श्रुता ।

विशेषपूर्ण उदाहरण । द्विती शहर लागर, पृष्ठ १४२ ।

कुरुहल प्रयुक्त व्यक्ति या वस्तु को देखने अथवा सुनने की श्रुति को मन में बाय और पुरगुरी होती है अने कुरुहल करते हैं ।

हय से धारि अमरना एकाप्रता—इसके लक्षण हैं ।

सौतारान अनुबंधी ‘समीक्षा गात्र’ पृष्ठ २१४ ।



परिवर्तन में कबम परिस्थितियों के क्रमिक पर अनिवार्य प्रभावों के परिणाम की सामयिक सूचनामात्र होती है, पर विकास में परिवर्तन के साथ-साथ इकाई के अन्तर्निहित वैविध्य अथवा व्यक्तित्व के अस्तित्व के प्राग्रह के समरूप का धामास भी रहता है। मानव का कुतूहल उस मानव के प्रति होता है जो अपनी समष्टि में समाज की संज्ञा से अभिहित होता है। यह कुतूहल अपने धाम पास की उन वस्तुओं के प्रति भी होता है जो अपने उपग्रहता में भौतिक संसार के रूप में हमारी चेतना को अनुप्राणित एवं संभावित करती रहती है। और वह अपने अग्रम रूप में उन सभी सम्भावनाओं के प्रति होता है जो जीवन के विस्तार से पार धात्मा के अन्तर्गत और अनन्त विस्तार में समाहित हैं। जब इस कुतूहल का वैध्वरूप होता है जिसमें केवल प्राये क्या हुआ मही जानने की अभिभावा मात्र रहती है तब वह एक कहानी का धामार बनता है। हम कुतूहल के निरावृत्त रूप का बच्चों की कहानियों में देख सकते हैं।<sup>१</sup> अग्न्या पग्यास(अनिल सैसा) की कहानियों का मूलाधार मही कुतूहल है। इसी के रूप से 'राहुरबादी' ने मुसलान की कमी व अन्त होने वाली अस्तुत्तावृत्ति के हिसक रूप से अपने जीवन की रक्षा की थी।<sup>२</sup> प्राचीनकाल में वैभवशाली व्यक्ति मनीमता की टोह में इसी का अग्रम का तथा अपनी वैभव-मानसिक वृत्ति को सहभा कर उसे कुछ समय तक स्वनिम-अवस्था में रखने के सिधे करते थे। उपग्यास किवा अपने हसके बाजारू रूप में वेम्मा के रूप और जीवन के प्राक-र्यण की भांति इस कुतूहल को पूरे प्रभाव के साथ अपने में अग्रम का प्रवास करती हुई साहसिक अथवा रोचक घटनापूर्ण उपग्यासों की अग्रमिष्ठ संख्या में देखी जा सकती है। उसे उपग्यासों को हम केवल लम्बी कहानी ही कहिये। उसमें न तो उपग्यासकार का कोई छिपा अंतर्भ्य होता है और न किसी भी अंश में जीवन के स्वरूप के धामाक को लोच कर पाने की चेष्टा ही। उनका एक मात्र उद्ध्य होता है अपने निमित्त के अग्रम में प्रया कर अथवा घटनाधा के हवाई एवं पूणरूप से अपने अग्रमिष्ठरूप में कोश-अग्रमता पर धामिग व्यापार-श्रु लमा में अग्रम कर अग्रम क पाठक को अग्रिम मानसिक लोच कया क सिधे प्रमुम अग्रमकन को अग्रमर्यश्रु तथा विस्मयकर र्थ से प्रस्तुत करना।



काम में साए गए हैं उसी प्रकार किसी सम्प्रदाय या संस्था के संबंधित और परिमित विद्या की सफलता के लिए भी ।

‘कुतूहल’ की वृत्ति इन सभी मनोविकारों के मूल में होती है । जिस बालक को अधिस्थित एवं कल्पना रहित मस्तिष्क निरीह मांसपिण्डमात्र समझता है । दूध पीते बच्चे के मापकी गोद में धाते ही माप के बल से स्वभा की दोष के लिये छोटी-छोटी उपायियों की हमकी फुसकी टटोल के पीछे यही कुतूहल-वृत्ति अपने साक्षात्काररूप में परिलक्षित की जाती हुई घाने बल कर एक साल से भी कम अवस्था तक के बच्चों में भी प्रत्येक वस्तु को मुँह में डाल कर उसके वास्वाद्य भववा धनास्वाद्य होने के प्रति कुतूहल का भावना व्यक्तित्व को प्रयोग के प्राकृतिक एक प्रारम्भिक रूप में देखी जाती है । चिन्ती शीघ्र को मुँह में डालने के बाद की मंगिमा में यदि बालक के स्वतः ज्ञान प्राप्ति के सम्वाय का धामास मिलता है तो उसके प्रथम उसकी प्राप्ति के प्रयत्न उसकी तत्काल कुतूहलवृत्ति का परिचय भी प्राप्त होता है । यदि मनुष्य की वृत्ति संस्कृत नहीं होती और स्वतः प्रयास से ज्ञानार्जन का सम्वाय घाने नही बढ़ता तो बड़ी हुई व्यक्तियों में भी मनुष्य की कुतूहल-वृत्ति एवं बच्चे की कुतूहल-वृत्ति में कोई अन्तर नहीं होता । हाँ यह कुतूहल वृत्ति अपने संस्कार प्राप्तिक्रम में तमस्त वैज्ञानिक प्रगति का घादि कारण बन जाती है । ज्ञानार्जन के प्रत्येक प्रयास में कुतूहल वृत्ति चीन्ही के पहले बड़े का काम करती है ।

कहानी के मूल में जिस कुतूहल-वृत्ति को देखा जाता है वही कुतूहलवृत्ति केवलक में बनी रहने से बहू कहानीकार बन जाता है । उसका बचपन अपने संस्कृतिक्रम में अवस्था की प्रगति होते हुए भी अज्ञान में स्थायी रहता है । ‘स्टीवेंसन’ इस प्रकार के व्यक्तित्व का उदाहरण है । उसकी वृत्ति के कुतूहल वृत्ति प्रमाण होने के कारण उस बड़ा उमर का बच्चा बहू कर पुकारा जाता था । जब एक भावना प्रवर सहृदय व्यक्ति में यही कुतूहल का भाव प्रवृत्ति के रम्य उपकरणों के माध्यम से मजबूत हुआ उठता है और जब बहू मिश्रितज्ञान के माध्यम से नहीं बनने प्रथम मानव की प्रथम दृष्टि पाठक्य कुतूहल से मनु प्राणित होकर बुद्ध सिद्धता है तो उस मानवता का चिन्तन अर्थात् प्रवृत्ति का प्रयत्नक कवि बहू जाता है । कवि की कुतूहल वृत्ति से रहस्यात्मक एवं खीद यन्त्रधर की खोज में रत रहने बाल व्यक्तिकी साक्षात्काररूपी रचनाओं का प्रादुर्भाव होता है । जब यही कुतूहल का भाव मानव के जीवन के अध्ययन और उसके रहस्य का अज्ञान अध्ययन का विषय बना जाता है तब धर्मशास्त्र

एवं अध्यात्मज्ञान की परम्परा घासे बगती है। जब कुतूहल अपने अक्षुब्धरूप में किसी भी जीवन बंध के प्रतिफल को लेकर घासे बगता है तो समसंघ पर हत्या के विचार और प्रसोपण को विवेक रहन है। उगो के मत्तारमक काध्य रूप में मोनर म लम्पों के बाध में अकारते हुग कुतूहल क परिपत्रबाधम्प्या म प्राप्त रम की मीति पिदरूप का ह्रम संरुहण के उपन्यासा क मूम म स्थिण पाण है। इमी कुतूहल की अधियावृत्ति के रूप में उपन्यासा क चरिणा के मिप्रल्ल तथा अन्य साहित्यामों की विचार-वृत्ति को अकमर मिमता है। यह कुतूहल की ही वृत्ति है जो अपनी स्वय-आपता ठीक करन पर मीति की धनियों के मस में मने गमा का जन्म देती है और पुणन गमों का घासे बगती है। मक्षेप में यह साग ममार है। विधाता के कुतूहल का और मानव के कुतूहल का मिथिण रूप है। गमान रूप से सब प्रसारित घामोक की मीति इस कुतूहल की स्वामि ही मफल उपन्याम की बसोटा है। जब रूप विधान पर आबदयकता में अधिक आग्रह होन के कारण उपन्याम में कुतूहल वृत्ति बहुत मीने डग में प्रयोग में मारी जाती है तब साधारण पाठक के लिय उम उपन्याम का महत्व बहुत कम रह जाता है जैसे ही भाव-विदम्प ध्यति के लिय उपन्याम के पुर्लम प्रकार के रूप में उमका उपवास हाता रहे। पिलित अनरुधि उमे मीनी के प्रकार के उदाहरण के रूप में अम ही महण कर में पर ऐसा उपन्याम मर्ब अम-प्रिय नहीं होता। अष्ट आ में जेम्स स्थापन का प्रविद उपन्याम 'मुक्तिमिस' इसका विरल-विषय उदाहरण है।

'उपन्याम' का उरीर विचार नामक लेख में श्री गुमाबराय एम० ए० ने कहाती मुनन की उम्पुक्ता में हम ममी को जिमी न जिमी अकस्था में राहुल का ममान ममी ही बनाया है। उनक अनुमार विधाने राहुल न भी इस प्रवृत्ति

१ 'मई, कह एक कहानी।'

'बैठा तनत्र लिया क्या मुने

मुनको अपनी जाती ?

कहती है ममने यह सेठी

तू सेठी जाती की बनी।

कह मां यह, सेठी हो सेठी

राजा का या रामी ?

राजा का या रामी ?

मां यह एक कहानी।

— बजोपरा।

में गिरि-गुहा-निवासी प्रागैतिहासिक मानव ने जगा कर अपने पूर्वजों का प्रतिनिधित्व किया था ।

इसी भेद में वे प्रायः चल कर लिखते हैं कि हमारे उपन्यासकार उर्बशी के समान हमारी चिर-सौबना-कौतूहल कृति की वृत्ति के लिये किसी प्रकार प्रेरणा से उपन्यास लिखते रहते हैं<sup>१</sup> वे अपनी कल्पना के कल्पतरु के नीचे बैठ कर हमारे लिये 'झरो लखे यन्नवतामुपैति' नामे रक्षणीयता पूर्ण नये कथानक रचते रहते हैं । वे भ्रंशजो सख नाबेल' (जिसका धार्मिक धर्म नहीं है) की धार्मिकता भी इसी में मानते हैं । --

वे आनन्दस क उपन्यासों को हमारी नानी की कहानी के बंधन ही मानते हैं । -- इस उपन्यासकपी संताप में कौतूहल का परम्परागत गुण ठो मौजूद ही होता है । संस्कार चाह बिचना हा मया हा किन्तु आवि का कुछ नहीं थाव ? संस्कारप्रबसावातिः उपन्यास मूम में कहानी है...। मन्तर केवल वह यह बताते हैं कि उपन्यास कहानी की प्रवेला अधिक सुपठित सभीष और अंशसावठ होला है । उसमें कौतूहल के साव-साव बुद्धि तत्व और भाव-तत्व भी रहता है ।<sup>२</sup> उसमें जीवन की प्रतिष्ठाया ही नहीं रहती बरन् उसकी ध्यास्या भी रहती है<sup>३</sup> ।

समीक्षा धारण के लेखक सीताराम बनुरेदी भी भी साधारण पाठक को महत्व देते हुए कहते हैं कि उपन्यास में उसको ऐसी सामग्री मिलनी चाहिए जिसमें वह लग्न हो सके । इसीलिये साधारण उपन्यासकार भी अपने विषय को कुतूहलजनक बनाने का प्रयत्न करता रहता है और समीक्षका भी ऐसे पन्नों की यों ही जसती-सी समीक्षा कर देते हैं । किन्तु फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उपन्यास क कौशल में गूढमता और जटिलता के साव-साव सरलता जान हुए भी वह जगम 'तारपोर' 'जानने की सम्पुष्टता बनाये रखता है' ।

'हिन्दी उपन्यास' के रचयिता विजयारामसु भीभारतव भी कथा-बहान्निर्वा

१ बाबू मुताबराय— काव्य के रूप' प्रथम संस्करण—पृ० १५१ ।

२ बाबू मुताबराय—'साहित्य सम्मेलन (उपन्यास धर्म) धरदुधर-नवम्बर १९४०—पृ० ४६-४७ ।

३ हिन्दी के 'तब फिर' का जगानी पर्याय ।

४ सीताराम बनुरेदी—'समीक्षाधारण'—प्रथम संस्करण—पृ १६५-१६६

की परंपरा बहुत प्राचीन मानने हैं क्योंकि इनके प्रति मानवमन में धारम में ही बड़ा बुतुहस रखा है। वर्तमान उपन्यास और कहानियाँ का यह उमी परंपरा के नवीन उत्कर्ष के रूप में लगे हैं जिनकी सत्ता का प्रधान कारण सर्वत्र गर्व सर्वथा मानव रामों मनोबला और जिज्ञासनाया में मनुष्य की घमिर्गिष का उद्घाटने हैं।

—पद्य और पद्य के मूल्य अन्तः क प्रतिरिक्त उपन्यास और कविता में सबसे बड़ी भेदक-विभाषता यही है कि उपन्यास में ह्यापे चित्त-कृति घमिर्गिषाया विभिन्न अमत्कारपूर्ण जिज्ञासनाया में ध्यान प्राम करनी है पर काव्य में यह भावात्मक सौन्दर्य में लक्ष्य होकर अपना पूर्ण परिणोप करती है। एक पद्य उपन्यास की समीची है उत्तरोत्तर विकसित होल बाकी जिज्ञासा-कृति जो धन में भी अमृत हो रहता है। मनुकाव्य भी अनेक बार पद्य का के उपरान्त मानना को गय कर देता हो ऐसा नहीं है। अन्तु काव्य की अथवा उपन्यास यही घमिर्गिष बुतुहसप्रधान होता है।

बुद्धरत्नराम का भी कथन है कि बुतुहल तथा जिज्ञासा ही के मनावसिपाँ हैं, जिनकी पूर्ति के लिय कथा-साहित्य की आवश्यकता यही और यह निरन्तर विवमिठ होती गई। ये ही प्राम ममी साहित्य की रचना के मूल कारण हैं और विभाषकर मनोरञ्जक साहित्य भाग की।<sup>१</sup>

### मनोरञ्जक

बेदासी लोग भाषा को ध्यान अनुभव करने में बाधक समझते हैं किन्तु कवि का प्ररंभ अर्थात् साहित्य अथवा अम-काम में सकर धात्र ठक रमिर्गो तथा महुदयी को निरंतर धारण देता रहा है। हमलिये भारतीय साहित्य परंपरा में काव्यान्व को अद्यान्व महोत्तर अर्थात् अद्यान्व का ममानवर्मा कहा गया है। दोनों धान्यों में अन्तर है—अद्यान्व सावजन निष्य और रपायी है किन्तु काव्यान्व अद्यान्व धनिष्य और अम्बायी है।

१ बुद्धरत्नराम— हिन्दी उपन्यास साहित्य प्रथम संस्करण सम्बन्ध २०१३  
दि०—२० ११ १२

२ तैत्तिरीय उपनिषद्—११/३/१

‘सत्त्वोर्देवादेतत्तद्वत् स्व प्रजापतयश्च विष्णवः ।

वेदाङ्गतर स्वर्गं पूष्यो ब्रह्म त्वाह महोदर ॥”

इस घन्टार के होने पर भी दोनों में समता भी है। दोनों की प्रकृति एक है, यद्यपि जिस प्रकार निबिक्कम्प समाज में परस्पर बह्य का ध्यान करते हुए योगी परमार्थ का अनुभव करता है और ससार के मायाजाल से पूर्णतः निर्मित तथा विरक्त हो जाता है, उसी प्रकार काम्यार्थ का उस सेल वाला व्यक्ति काम्यार्थ लेने की अवस्था में संसार में पूर्णतः विरक्त होकर ध्यान करने लगता है। ब्रह्मानन्द की स्थिति में हमारी चेतना का सम्पूर्ण व्यापार ब्रह्ममय हो जाता है। मन की समस्त क्रियाएँ ब्रह्म में पूर्णतः संश्लेष होकर उसी में समाग करने लगती हैं। काम्य के अध्ययन की भी कुछ ऐसी ही दशा है। उस समय हमारी चेतना-वृत्ति जागृति-व्यापारों से परे होकर काम्य के भावात्मक जगत् में ही समाग करने लगती है और उसी में विमोह होकर ध्यान की उपसन्धि करती है। ब्रह्मानन्द और काम्यार्थ बाला ही की प्राप्ति में व्यक्ति-व्यक्तिवत्ता से पूर्णतः मुक्त होकर विभूत स्व से भावसत्ता का प्राप्ति बन जाता है।

किसक अपने को पाठक के साथ साव के एक मूत्र में बांधने का सुख प्राप्त करता है। साधारणीकरण में भी कसा की सामाजिकता का भाव निहित रहता है। पारचाय देवा में प्रायः काम्य को कसाधा के अंतर्गत माना है। इस कारण यही काम्य के प्रयोजन का विवेक व्यापक रूप से कसा के प्रयोजनों के साथ चलता है। इन्हीं को लक्ष्य करके प्रतिज्ञाचक्रावृत्त काम्य-रचना में प्रवृत्त होत हैं। कसा के प्रयोजन बहुत से माने गये हैं किन्तु उनमें भी अधिकांश प्रख्यात हैं वे इस प्रकार हैं—

- १ कसा कसा के लिये (घाट्टे पार घाट्टे म मेक)
- २ कसा जीवन के लिये (घाट्टे पार साहस मेक)
- ३ कसा जीवन से पसायन के लिये (घाट्टे एर एर ऐस्केप काम साहक)
- ४ कसा जीवन में प्रवेश के लिये (घाट्टे एर एर एर इन्डु साहक)
- ५ कसा सेवा के लिये (घाट्टे एर एर एर मेक)
- ६ कसा आत्मानुभूति के लिये (घाट्टे पार सेस्क रियसाहकगन)
- ७ कसा धर्म के लिये (घाट्टे पार एर एर)
- ८ कसा जितार के लिये (घाट्टे पार एर एर एर)
- ९ कसा मज्ज की अर्थ्य धारणरना पूर्तिक लिये (घाट्टे एर एर एर एर एर एर)

ये सब प्रयोजन एक दूसरे में निरालम्ब सिद्ध नहीं हैं फिर भी इनमें दृष्टिकोण की विभक्तता है।

अपत्यास के प्रेरक तत्व के रूप में हमें छोटी मातृश्री और धारणी कोटि की कक्षा पर विचार करना है। यह भारतीय धारण के निष्कर्ष है। कक्षा द्वारा आत्मानुभूति में महायत्ना मिलती है। कक्षा में हम अपने भावा का प्रतिमान देख कर एक प्रकार में अपनी आत्मा के स्थान ही करते हैं। उमम हमको आत्मानुभव का धारण प्रदाता है। यह सब परिनिष्ठ तत्त्व के निकट पा जाता है। यह धारण मन को व्याप्त कर लेता है और सुप्ता के सम्बन्ध में यह मन के बहत निकट है। यह सुप्त की प्रथम आवश्यकता (creative necessity) को जन्म देता है। पाठों सम्बन्ध पर मनो-विनोद के धर्म में कक्षा धारण के पीछे की धोखी का प्रस्तुत करती है। यह विल-बहुमात्र बुद्ध के भूतने के मिये बीमा कि दुष्पत्त ने उन्मुक्तता का बिना बनाकर दिया या धरबा मन की उच्च मित्राने के लिए, जैसे सोय कभी-कभी बुद्ध पुनपुन उठता है हाता है। प्रथमे प्रादमिबा में मनोविनोद भावी कार्य परायणता की तैयारी के रूप में रहता है।

काव्य का साधारण धर्म धारण की मूर्ति करना होता है। यह किसी भी विद्या में क्या न हा मन के उभाव का माधन प्रथम होगा। हाँ इस स्थान पर यह निश्चित करना आवश्यक होता कि मभारतजन के क्या धर्म हैं। अपत्यास के प्रक तत्व के रूप में मभारतजन की स्थिति काव्य के बहाने महोदर काव्यात्मक एक मनोरजन के मन् में हमके रूप प्रथम के बीच में हाती है। इनको सममान के लिए हम एक साधारण उदाहरण-क्रम प्रस्तुत करेंगे। काव्यानुनामन का सबसे तरम प्रयोजन यही है। हमनिा इनका हृदयमन करना आवश्यक है। मात्रकस प्राय धारण नुरा और मीत्र के धर्म में मनोरजन का धर्म बिना हाब-वीर हिमाण समय का यों ही बिना नए मयापात्मक लया धारि में या मयबाबी करते के प्राप्त धारण ही होता है। साहित्यिक अध्ययन हम धारि पीछे पुन-किरा वाग्धा के ठीक धर्मनिदिष्ट करन की प्रक्रिया में न धारता है। साधारण धर्म में कभी-कभी वाग्ध बडे हनर और गवान धर्म में उतर धारि है और हमारे लिए धर्मनिष्ठ धर्मिन्विकि दिवात्मक-भा हात मन्नी है। साहित्य का तो हमें वाग्धों के प्रति प्रेम का पाठ पगता बाह्य क्रियम हम उनके धर्मि माधुर्य का धीर सारक मोन्दर्य को हृदयमन कर लें। हमें उनके ठीक धर्म और प्रयोग के निर्दे स्पर्धा के रूप में मन्तर करना बाह्य धीर हमनिा धरि यह कहा जाय कि पढ़ने में धारण ही मात्र प्रथम उदाय ही नहीं



जिममें जिस धोर से प्रकाश था रहा है, उपर ही एक डार है। उस डार से धाकर प्रकाश पूरी ओह म फैल जाता है। ये सब धासी यहाँ (इस गुफा में) अपने बचपन में है। उनकी गर्दन धोर टॉपे इस प्रकार लौह-गुलता से बधी है कि वह उपर-उपर हिस नहीं सकते धोर कबल अपने सामन ही देख सकते हैं। क्योंकि लौह-गुलताओ के कारण वे अपने उर का धुमा नहीं सकते हैं। पीछे की धोर कछ दूर पर उनके ऊपर घाग जल रही है। भाग धोर कँदियों के बीच एक ऊँचा उठा हुआ मार्ग है। धार कोई देख तो उसी मार्ग से सब कर बनी हुई एक लीपी बीबार है। वह उन आली का काम करती है जिसके पीछे बैठ कर कठपुतली का नाच दिगाने वाला अपना करतब दिखाता है।

मुकुराल की वताई हुई बातों को वह प्रसन्नक देखता है।

मुकुराल फिर कहते हैं— क्या तुम बीबार के सहारे चलते हुए मनुष्यों को रग रहे हो जो अपने हाथों में सक्की धोर पत्थर तथा मग्याम्य चीजों के बने सब प्रकार के पाब धोर पदुषों की मूर्तियाँ धोर धातुतियाँ लिये जा रहे हैं धोर जो सब बीबार के ऊपर दिखाई पड़ रहे हैं उनमें से कुछ बातभीत कर रहे हैं धोर कछ भुप हैं।

तुमन मुझे विचित्र मूर्ति दिगाई है धोर वे विचित्र बन्धी हैं।

‘मैंने उत्तर में कहा— हमी साबा की भाँति जा बीजों से जाई जा रही है उसकी वे कबल उसी छाया ही का कर रहे हैं जो पीछे जसती हुई धाम की राजनी सामने की बीबार पर छाया क बप न प्रस्तुत करती है।’

‘जी हाँ’ उनक साथी (स्ताता) न कहा।

‘धामे धोर सोचो कि बैदवान में एक प्रकार की प्रतिपत्ति उठती है जो दूमरी धार में घाती है। तने धबमर पर क्या वह हम बाग की कल्पना नहीं करेगा कि कोई पाम में जाने वाला उन प्थनि का सामने की छायाओ में घाता हुआ बता सकता है।’

उमने प्रसन्नक न कोई प्रत्य नहीं पूछा।

‘मैंने कहा कि उनके मित मय का धाधिक स्वरूप उन मूर्तियाँ की छाया के धनिरिक्त धोर कछ नहीं होगा।’

बहाला मुकुराल फिर जल की परम्परा स्पष्ट करन के लिये धामे ही करन का विधान करने हुए दिगाला है कि धारमा ऊपर उरने हुए धारबन (बन्धा तक पहुँचता है। मेरिस हम हम लार की बैदिया क हम भव के धाम नहीं से जाना है कि वे जो छायाएँ देखने हैं वे बालविक लोय हैं धोर

जिन शक्तियों की प्रतिष्ठा होती है वे उन्हीं लोगों को बोली की प्रतिष्ठा है। पूरा का पूरा कथा-साहित्य उन्हीं विचित्र शक्तियों में सम्बद्ध रहना है तथा कहने वाले का उद्देश्य सुनने वाले के मन में विस्फुल्ल इसी प्रकार की धारणा का जमा देना है<sup>१</sup>।

हम कथक में यह निष्कर्ष निकलता है कि पढ़ने वाले का कार्य एक धार्मिक कार्य करने वाले धर्मवा छोड़ करने वाले का-सा कार्य रहता है और जब हम किसी भी उपन्यास को पढ़कर उसके अन्तर्निहित मन्तव्य को बहानी की ओर की धारणा हटा कर देख पाते हैं तब हमें वैसे ही प्रसन्न होना है वैसे धार्मिक कोमलता को समरोका की भूमि को देख कर तुषा हाया धर्मवा वैसे धार्मिक एक वैज्ञानिक को अपने सफल धार्मिकार में होता है।

यहाँ पर हम बात को थोड़ा-सा और स्पष्ट कर देना है। यहार स्वाद धर्मवा हर्ष तीव्र प्रकार का होता है। एक प्रकार के धार्मिक के लिए हमें धर्म को हीना करके बात को धार छोड़ देना होता है धार हमें ऊपर में मोक्ष की धार बुझने में धार्मिक धारता है। हम में व्यक्ति का स्वयं बुद्ध करना तादुर की बात रही वह पठनाम्मुख हाउ हुए भी अपने को नहीं रोषता। उने गिरने में ही (पठन में ही) झूठ प्रचार का धार्मिक होन लगना है। ३५ कोटि में पाठक धारते हैं जो धारणता साहित्य अर्थुनिक अमेरिकन-‘अर्थि’ को प्रति मीलस मस्वापरक अर्थुनिक साहित्य में हा पढ़ने का पूरा मत्ता नूटन का उपक्रम करत है। एने मत्तकी धार पुस्तका का जो पठने का हा धार्मिक धार के गणतन्त्रात्मक धारता में धार काई स्वाद न मिलना चाहिए। दूसरा काटि हाता है उन व्यक्तियों की जो स्वयं बुद्ध न करते हुए भी दूसरों के धारण को महापिता स—मोटर में बैठ कर धार्मिकों के साथ धूमन में-मिलना धर्मवा नाटक देखने में धार्मिक की उपमार्थि करत है। इन धारि में उपन्यास के वे पाठक धारते हैं जो अठनापूर्ण विचित्र-नृत्य पूर्ण कथानका को पढ़कर केवल धर्मवा बुद्धन धार्मिक करने हुए

1 All stories are dramas. All dramas take place in the Theatres. All theatres are dark and the darkest theatre is the one where the drama of fiction is staged. It has no light at all except on the novelist's word the word used for this stage was originally a den which in Ptolemy's allegory gets the form of a cave.

पढ़ने का मन्त्रा भेजे हैं। ऐसे सोप उपन्यास से मनोरंजन प्राप्त करते हैं पर वेबल मध्यम श्रेणी का ही। उपन्यास में उत्तम कौटि का मनोरंजन प्राप्त करने के लिए हमें 'टेमसिंह घोर सर हिलेरी एने नाउन्टेमिचर्स'—पर्वतारोहिणी का उदाहरण लेकर समझना पड़ेगा। पढ़ने की कठिनाई पर-पर पर जीवन का मय होते हुए भी बहुत ही बहुत प्राकृतिक सुपमा का हृद्य तथा समीप 'प्लॉट' पर पहुँच कर समुद्रपूर्व घातक का अनुभव बानों ही पर्वतारोहिणी की मूल्य साधना का बरबान होते हैं। उपन्यास के पढ़ने में भी जो पर्वतारोहिणी की भावना उमका-सा माहुर घोर हडता लेकर घरती पर पर जमा कर घाते बढ़ते हैं वे ही प्रथम घणी के पाठक उपन्यास के प्रेरकतत्व मनोरंजन के वास्तविक स्वरूप की सिद्धि कर सत है। योगी न होते हुए भी ब्रह्मानन्द का ज्ञान न रखने हुए भी न कुछ ऐसा करते हैं जो योगी-ना शक्ति ही कर पता है घोर जो घातक उमका होता है उस घातक की तुलना बड़ी अच्छी तरह में अपनी ऐकान्तिकता एवं भारवतता के कारण ब्रह्मानन्द में की जा सकती है।

### धर्मसिद्धि

उपन्यास रचना का एक घोर प्रेरक तत्व है घोर वह है महत्त्व में धर्म-सिद्धि की भावना। घात के समार में घोर कुछ मिलकर मनुष्य इतना धार्मिक मनो-पार्जन नहीं कर सतता जितना कि उपन्यास के पितने के द्वारा। उपन्यास के स्वल्प स्थिर करने में तथा उसके उपकरणों के बयन एवं उनमें से किनो एक को ही बड़ाया देने के कार्य में इन धर्म सिद्धि की भावना का बड़ा महत्त्व है।

प्रारंभ में तो धर्मजी के उपन्यास साहित्य में भी उपन्यास का धारण 'एथो मुबोबनी'—भी पुरानक के रूप में एक प्रकाशक के द्वारा हुआ। तथा क मंडल के रूप में वह पुस्तक गुरु मकल हुई। इसका मूलक दूर-दूर की पाठिकाधी का 'ग्राइवट ऐटबाइजर (संविनक मनाइकार) बन गया। इनमें उमको बड़ा नाम भी हुआ उमकी देना-देनी घनेक मैगरी न साहित्य क इन प्रकार को 'विजनेत प्रोजेक्ट' के रूप में धपनाया। धार्मिक बुध में उपन्यासों का प्रचार भी बड़ा। पढ़ने वांग धार्मिक उपन्यास ही पण है। प्रकाशकों घोर मैगरी का धार्मिक न धार्मिक हरी न नाम भी होता था घोर ध्यानात्मो में हरी के कारण धार्मिक काम रहता था। धन-साया न इनकी रचना की घोर विनाय ध्यान दिया।

हिन्दी में उपन्यास की परंपरा को जमान बाग बाबू देवरी मन्दन लकी है। इन्होंने उरु के रतननाथ सरदार तथा जितिरम होधरवा के आधार पर हिन्दी में 'अष्टकामा विनो'। अष्टकामा क धर्म में मैगक का उरुम रूप

किया गया है पर उन सब बातों के साथ जो बात नहीं कही गई है वह यह है कि उपन्यास को धर्मसिद्धि के सरल मापन के रूप में निम्नतम कोटि के लेखकों में भी घपनाया। घबरेली और हिन्दी—दोनों में ही पहले-पहल तृतीय श्रेणी के लेखक और लेखिकाओं ने उपन्यास रचना को घपनी जीविका का साधन बनाया। दशकीमन्त सत्री के उपन्यासों की बड़ी बिज्जी हुई। इस प्रकार के उपन्यासों की मजबूती से प्रभावित होकर प्रकाशक लोग घपनी साहित्यिका में जो बड़े-बड़े उपन्यास लिखने को माँग करने लगे और कही हो या न हो पर उपन्यास में साधन की प्राप्ति की ऐपणा इसकी रचना के लिए विशेष प्रभावशाली प्रेरिका-सक्ति बन गई।

प्रेमचन्द के सन्निकट रहने वाले लोग इस बात के मारी हैं कि वे घपने उपन्यासों का घर्ष-प्राप्ति के लिए ही इतनी घोषणा में लिखने के लिए पर उनका यह पुर्नार्थ था कि साथ का १० प्रतिशत प्रकाशक के पास जाता था। के एम० मुंशी ने घपने बकीस-जीवन के प्रारम्भिक काम में घपना दिन-प्रतिदिन का लर्चा पूरा करने के लिए घपना प्रसिद्ध प्रभावशाली लल्लू मल' के चरित्र नामा 'रैली बभ्रुमान' नामक उपन्यास लिखा। 'मिराना राहुल साहूरायण और यशपाल तथा नगवती प्रसाद बाबुरामी घासि मल्लू घास के रूप में घपने उपन्यासों को घर्षोपाजन की प्रणाली में ही लिख रहे हैं। उनके उपन्यासों के द्वारा साहित्य-लभा नहीं होती—ऐसी बात नहीं है।

घंघरी साहित्य में चार्ल्स डिक्सेस और सर वास्टर स्कॉट का नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय है। डिक्सेस ने इसी 'घर्ष-प्राप्ति' का कृति में घपने उपन्यास लिख कर घपनी हैसियत बनाई थी। सर वास्टर स्कॉट ने भी ता उपन्यास रचना को घर्षोपाजन का सहज द्वार मान कर साक्षात् पता किए और माना लोग।

स्टीवेन्सन तो स्पष्ट रूप से कहना है कि लोग चाहें जिन महतुरिया की दुहाई हैं पर मैं तो यह बना देना चाहता हूँ कि मुझे उपन्यास लिखने को प्रेरणा देने वाली यही घर्ष-प्राप्ति का बात है और मैं इसी में प्रसन्न होकर उपन्यास लिखता हूँ।<sup>1</sup> ऊपरी साहित्यिकता के छाहम्बर से अब ही कोई हने

1 'Let us tell each other the sad and sad stories of the bestiality of the beast whom we feed. Reader Stevenson meant you. And he goes on to say What the public likes is work (of and kind) a little loosely executed so long as a little

स्वीकार न करे पर वास्तव में अपने मन ही मन सभी स्टीवेंसन के कथन का समर्थन करते हैं ।

प्रेरक तब कुछ भी हो पर इतना ठा निश्चय है कि ललक पाठक को प्रभावित करना चाहता है । अपनी उपन्यास की सफलता बढ़ अधिक से अधिक संख्या में लोगों का मनोरंजन करने में और अपने प्रकाशक से एक बड़ी रकम 'एक्सीट' के रूप में पाने में ही समझता है । इन सब के बाद वह साहित्य संसार के घासोचक की ओर ध्यान दे लेता है । कुछ सैपक पाठकों को संतुष्ट करते हैं पर घासोचक उनकी रचनाओं को देख कर नाक में तिकोड़ते रहते हैं । दूसरे प्रकार के लेखक (विशेषता विद्वग्जन लोग) जो घासोचना की कठौटी पर धरे उठरते हुए भी पाठक-जनता में नर्बन्धित नहीं बन पाते । कला एवं धर्म के उपासक न मन की परवाह करते हैं और न निम्नकोटि की जनशक्ति की ही । उनकी रचनाएँ विद्युत् रूप से कला की उपमाणा का परिणाम हैं यथा बर्डीप्रसाद 'हृदयम' का 'मर्मल प्रभात' एक राजासदाम का 'करणा' एवं 'घण्टा' कबीरमोहन मीनापति का 'ममाय । तीसरे प्रकार के बड़े नामनाम मरक के होने हैं जो अपने रचना-कोषल के सामंजस्य से सामान्य जन-शक्ति को मुग्ध और संतुष्ट करते हुए घासोचका की दृष्टि में भी ठँका स्थान प्राप्त करते हैं यथा—प्रमचन्द्र ब्रह्मतीचरण वर्मा नागाशुन फणीश्वरनाथ रेणु, धरदचन्द्र बकिम शत्रु विद्युतिश्वरानु बन्दासाध्याय और ताराचंकर पाठक रमलनाथ बनलनाथ देवार्द घासि । इन धर्मिन नर्यता का कारण इन मरक का रचनाकोषल होता है । इन मरको ने उपन्यास के उपकरणों का उपयुक्त रूप से संबर्धन किया है और फिर उनको इस प्रकार से प्रस्तुत किया है कि उपन्यास अपना बर्धित स्वल्प या गया है और उसमें पाठक सहजप्राय स मरक के मरक को प्राप्त करते हुए अपने जीवन सम्बन्धी अनुभव व बुद्धि का एक प्रकार की मात्र-की कर लेने के घासोचक साईनाथ का अनुभव करता है ।

wordy a little slack, a little dull and needless the dear public likes it it should (if possible) be a little dull into the bargain I know that good work sometimes hits but with my hand on my heart I think it is by accident. And I know also that good work must succeed at last but that is not the doing of the public; they are only shamed into silence or affectation. I do not write for the public; I do write for money a nobler duty and most of all for myself not perhaps any more noble but both more, intelligent and nearer home."

—WALTER ALLEN : *Reading a Novel*—p. 7

## उपन्यास के तत्व'

जिन प्रकार सृष्टि के निर्माण के मूल में पञ्चतन्त्रों के मूल का लक्ष है उसी प्रकार उपन्यास की सृष्टि में प्रेरक तन्त्रों के अनिच्छित उपकरण रूप कुछ विशिष्ट तन्त्रों का भी योगदान होता है। वास्तव में पूर्णता को प्राप्त करता सृष्टि की भाँति उपन्यास एक इकाई है पर धारणा की मुहिमा के लिए एक तन्त्रबन्धी विनयन के लिये उसके मूल उपकरण रूप तन्त्रों का निरूपण आवश्यक है।

विनयन जेसी हृदय उपन्यास को घटनाओं और मूल के योगदान के रूप में मिला है। किन्हीं घटनाओं का कारण परिस्थितियाँ ही होती हैं और कुछ घटनाएँ इन्हीं परिस्थितियों के बीच में स्थित किन्हीं व्यक्तियों द्वारा की जाती हैं। इन सबके एक में मिल-जुल रूप को बयावस्तु या प्लॉट कहते हैं। इस प्रकार की घटनाएँ कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के जीवन की निबिधाँ होती हैं। जो स्त्री पुरुष या अन्य जीव इस प्रकार घाते बढ़ने के लिये घटनाओं का गति देते हैं वे सब चरित्र वर्ग की श्रेणी में आते हैं। इन चरित्रों के बीच की मौखिक बातों का सम्बन्ध उपन्यास के कथपकथन घटना सवार नामक तीसरे उपकरण में होता है। घटनाओं के रंगमंच के लिए और चरित्रों के उपयुक्त पुष्पभूमि के साथ प्रकट होने के लिये वेद और वाक्य का एक और उपकरण बन जाता है। तन्त्रों की मर्यादा की परिपक्वता में शैली के रूप में हम एक और शरीर उपकरण को प्रस्तुत कर सकते हैं। स्पष्ट रूप से हो या साहित्यिक रूप में हो उपन्यास को आवश्यक रूप से जीवन का एक दृष्टिकोण उपस्थित ही करना पड़ता है। इन उपकरणों को हम उपन्यास के 'तन्त्र' की मर्यादा कहते हैं। उपन्यास पढ़ने से या सुनने से जिन धारणाओं की भावना उत्पन्न होती है उनमें उपन्यास के धारणा उपकरण 'रंग' का समावेश उपन्यास के तन्त्रों में किया जा सकता है।

कुछ धारणाओं से उपन्यास के तीन साधक तन्त्रों की विशेषता की है—

१. तन्त्र के उपन्यास तत्व एक रूप विधान' से सकलित

कक्षा-बन्धु (प्लेट) 'चरित्र-चित्रण' और 'सैटिंग'। अन्तिम तत्व के रूप में हम सभी सापेक्ष तत्वों (वातावरण संवाद वीसी ध्वनि रम धारि) को ले सकते हैं।

समीक्षा-धारा के लक्षक ने भी उपस्था के तीन ही प्रचाल उपकरण माने हैं। उनका कथन है—'कुछ विज्ञान के उपस्था के छः तत्व माने हैं— १ बन्धु, २ पात्र ३ संवाद ४ वैयक्तिक ५ वीसी ६ उद्देश्य। किन्तु वास्तव में तो उपस्था के तत्व तीन ही होते हैं—१ कक्षा २ पात्र ३ ध्यापक (बटना समूह)। 'उद्देश्य' वास्तव में तत्व न होकर परिणाम है और 'संवाद' तथा 'वीसी' उन कक्षा को उद्देश्य तक पहुँचाने के साधन हैं। देश-काल भी कक्षा समूह या ध्यापक के अन्तर्गत ही आ जाता है। कुछ ध्यापकों न चात प्रतिमान या इष्ट (कॉन्फ्लिक्ट) तथा बुद्धि (मस्तेज) को भी तब माना है किन्तु वे अब तो उद्देश्य निधि के लिये तत्वों के संयोजन कीधन हैं धरवा पाठकों को फौजग रखन के उपाय हैं। इन्हें तत्व नहीं समझना चाहिये।

हिन्दी उपस्था 'साहित्य' के लेखक ने 'वीसी' के स्थान पर रम को उपस्था के उपकरण रूप में रखा है। इस प्रकार उन्होंने भी कक्षा-बन्धु कपोपकथन चरित्र-चित्रण उद्देश्य देशकाल तथा रम को उपस्था के छ तत्वों में गृह्य किया है।

प्रथम इत उपकरणों में चरित्र-चित्रण को ही सबसे अधिक महत्व देने हैं। वे लिखते हैं—'मैं उपस्था को मानव चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को गोलना ही उपस्था का मूल तत्व है।' डॉ. जी का प्रसिद्ध पाठोपक 'वास्टर एजेंट' भी चरित्र-चित्रण को प्रथम स्थान देना है। उनके अनुसार इन चरित्रों के ही माध्यम से उपस्था मानव उपस्था के प्रमुख सामाजिक बर्णन या वर्णन का रूप पाठकों में महानुभूतिपूर्ण बर्णन का उद्भव करते हैं। पात्र के नैतिक-सांकेतिक उपस्थाकारता मानव चरित्र की ध्वनि गोलने के अन्तर्गत ही प्रयापना देने हुए उपस्था में चरित्र चित्रण को सबसे अधिक महत्व देने हैं। उनके अनुसार उपस्था के अन्तर्गत अब तब उपस्था के चरित्र चित्रण के माध्यम धरवा धारण मात्र होने हैं।

वास्तव में प्रत्येक तत्व का अपना स्वतन्त्र महत्व होता है। प्रत्येक तत्व धरवा तथा वा उपस्थागत माध्यम होता है। यदि इन ध्यापक के धर्मों का मत

पता चलेगा कि उपन्यास अपने उपकरणों की मरम्मत का उत्पादन है और प्रभावकारकता उत्पन्न करने में सबका समान रूप में योग रहता है।

### कथावस्तु

कथावस्तु अथवा 'प्लॉट' एक निश्चित साहित्यिक पारिभाषिक शब्द है और इसका प्रयोग साहित्य की कई विधाओं में होता है। यह पारिभाषिक शब्द अपने व्यापक एवं सर्वव्यापी अर्थ में 'एन्सिक्लॉपिडिया ब्रिटानिका' 'ब्रिटेनिका' 'द्विस्तु मर्चेंडी' 'बिस्मेल्लु बकरिहा 'रेवेका' 'चित्रलखा' 'बियाह बिबायर' 'बसब नमा' से मिलकर 'भैंसी की रानी' 'सुसिसिम', 'सूरज का सातवाँ पादा' 'जा बिस्तोक' 'बाणमठ की प्रात्मकथा' आदि मनी को समेट गया है। हर एक उपन्यासों में कुछ-कुछ बातें बटिठ होती हैं और उन बटिठ होने में एक क्रम होता है। इस कथाक्रम नियोजन में कथावस्तु की विशेषता ढूँढी जा सकती है।

### कहानी और कथावस्तु

कहानी कथात्मक साहित्य का सबसे मूल एवं प्राचीनतम रूप है। कहानी में भी प्रायः प्राश्नार्थक कथागत घटनाओं का प्रक्रम मात्र होता है। कहानी बिना विचार के सब कुछ स्वीकार कर लेने वाली हमारी उत्सुकता की प्रकृति को संतुष्ट करती है। कहानी में हमारी उषि 'तब फिर' अथवा 'तारपार ( अर्थात् धागे बना हुआ ) में होती है। इसके लिए सेवक बनना में हमें जाना जहाँ जुमा करता है। कहानी में घटनाओं और स्थानों का एक दूसरे से जो सम्बन्ध नहीं होता। पटनाएँ भी किसी भी क्रम से प्रस्तुत की जा सकती हैं। लेखक का उद्देश्य कहानी में केवल 'प्राश्नार्थक क्या है?' इसी को बताना का होता है।

उपन्यास में प्रतिभासित स्वामाधिकता का क्रम स्वच्छन्द कल्पना है विस्तार को क्रम प्रवृत्त होता है। कहानी के साधारण प्राश्नार्थक का म प्रभाव उपन्यास में घटनाओं के क्रम-नियोजन द्वारा ही उत्पन्न किया जाता है। उपन्यास में साधारण पाठक के लिए कहानी ही विशेष महत्त्व रखती है परन्तु इसका धारम और अन्त उपन्यास में विलुप्त स्वामाधिक रूप में होता है और यही है कथावस्तु का प्रभाव धारम होता है।

यदि हम कहानी की परिभाषा करने की चेष्टा करें तो हम यह कहने कि कहानी घटनाओं की भाषा को समयक्रम को सिधात में प्रस्तुत की जाती है इसमें लंबे के जलपान के बार मध्याह्न का भोजन, रविवार के बार मोमबा





नियंत्रित होती है कि वह पाठक को स्वाभाविक गति में बहती हुई मायुष्य  
पकती है और धीरे धीरे बटना—बाहें वह प्रत्यागित हो घबरा घबरायाहित—  
इस प्रकार बटित होती है कि वह पिछली मक बटनाया का ठकें मित्र परिस्वाम  
ही प्रतीय होती है ।

ई० एम फास्टर तथा हडसन बोला ही ने इस बात पर विचार बल दिया  
है कि कोरी कहानी उपन्यास नहीं बन सकती । उपन्यास में जब कोरी कहानी  
होनी है, बटना घुफन और कौशल नहीं होता ना वह जानी की कहानी या  
योगबिस्सी की कहानी बन कर रह जाता है । उपन्यास कोरी कहानी बनकर  
न रह जान इसका विना उमक बटना-मंचटन पर्याप्त कथाबस्तु पर विचार घ्यात  
ज्या होता है ।

### कथाबस्तु और वास्तविकता के प्रति ध्याप्रह

कथाबस्तु की सामग्री हमारे ध्यान अनुभव की बाटा ( वह वास्तविक ही  
क्यों न हा उन्ही ) में ली जाती है । कल्पना से कहानी के प्रावर्षस की वृद्धि लो  
होनी है पर उसकी प्रतिबंधना कथा-बस्तु का दोष बन जाती है । कथाबस्तु के  
मंचटन की सबसे पहली गर्न बही है कि निरुक्त धपने प्रति ईमानदार हा ।  
बह ना जानता ही बही निरुक्त । धपेजी की प्रमिद्धि प्राप्त स्त्री निरिवा न  
धम्य स्त्री-निष्ठिकाओं के विषय में लिखते हुए कहा है कि वे बही धमकन होती  
हैं जहाँ वह पुरप निरुक्तों की भांति सिपन का प्रयत्न करती है । धपेजी की  
उदाहरण उपस्थित करती है । उसी उपन्यासों में प्रायः ऐसे ही प्रमत्तों की  
प्रवृत्तारणा ली गई है जिनमें केवल उन्ही पुरपों का उन्नेत है ना निरुक्तों के  
बोध म बैठ कर बलभीत करते हुए पाप घने है । धपेजा में दूसरा उदाहरण  
दातां का है जिनमें धपन उपन्यास की रंजनीम केवल इन्हीं के बनेम प्रदान  
का ही रना है । यही कारण है कि उमकी कथाबस्तु मुर्मंचटन रूप म  
बातावरण का भी एक बरिभ के समान महत्त्व देने में सफल हुई है । कथाबस्तु  
के सुमनामक धप्यन की दृष्टि में मृन्दावनमाम बर्मा क उपन्यास हिन्दी में  
विचार महत्त्व रखते हैं । इनकी रचनाया में कथाबस्तु मरबन्धी विनिप्रता भी  
पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है । बर्मा जी के ऐतिहासिक उपन्यासों में गद्दू बार  
(१९२९) विगत की पद्मिनी (१९३९) तथा 'मौनी का गना (१९४९)  
अधिक ध्यानि प्राप्त है । इनमें समान वास्तविकता का साधार बहना घमा है ।  
'मौनी की रानी में वास्तविकता लनी उमर दां है कि उमक जीवन बरिभ

की जन्म के परचात वृद्धि एवं श्रुत्य धारि का यथाक्रम बर्तन होता है। साहित्यिक संघटनों में वह निम्नतम एवं साधारणतम संघटन है। इसके विपरीत उपन्यास साहित्य का सबसे अधिक बलकरदार संघटन है। इसमें भी कहानी महत्त्व समाप्तकर्त्तव्य के रूप में रहती है पर उसका रूप उपन्यास के प्रथम तत्व के रूप में पूर्ण संस्कार में कुछ होता है। कहानी में घटनाएँ समयक्रम में होती हैं पर समय-प्रवाह के अतिरिक्त जीवन और कुछ भी है जो बँटा निगट मेरुपट में नहीं नापा जाता बल्कि अनुभूति की तीव्रता से नापा जाता है। उपन्यास लेखक साहित्यिक कलाकार के रूप में कहानी के समय-क्रम से मुह फेर कर लड़े होन का ताहस करता है। वह स्मृति एवं भाषा के साधे-सम्भे ढंगों से कल्पना के विस्तार में बड़ी स्वाभाविकता से परचिन्ह बनाते हुए चलता है। कथाबन्धु य हम कहानी के समय-क्रम बाधित जीवन को पार कर अनुभूति की तीव्रता के जीवनक्रम में—'मान' के जीवन-क्रम में प्रवेश करते हैं।

कथाबन्धु और कहानी में अन्तर समझ लेने पर कथाबन्धु की परिभाषा को समझना और भी सरल हो जायगा। कहानी का जीवन प्रवाह में विभू हुए समय क्रम के अन्तर्गत घटनाओं के क्रमबद्ध बर्णन कथन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कथाबन्धु में भी अनुभूति की तीव्रता से कुछ जीवन क्रम में ही घटनाया का कथन होता है पर इसमें संयोग पर अधिक बल दिया जाता है। 'प्रमी बरा और उसके बाद प्रमिका मर गई' यह ही कहानी है। 'प्रमी बरा और सोक से प्रमिका भी मर गई' यह कथाबन्धु है। पिछले बढाहुरण में भी यद्यपि समयक्रम को जैसे का तैसा रखने दिया गया है, पर संयोग के भाव की छाया उस पर पूरी तौर पर है। कहानी की घटना तुल्यकर या पड़कर मोटा या पाठक धार्य की घटना जालन की उत्सुचता को प्रकट करते हुए कहता है—'किर हमने धार्य क्या हुआ?' यदि यही घटना कथाबन्धु के उत्पादन के रूप में होती है तो बुद्धित्व एवं स्मृतिगतत्व को तजप रखते हुए पाठक प्रदान करता है—'क्या क्यों हुआ?' कथाबन्धु की घटनाओं के संयोजन में किसी भी प्रकार की रिक्तता या अभाव नहीं मिलता और न उभय किसी प्रकार की असंगति का ही दाप मिलता है। उसके विविध अथ अचिन्त रूप से अनुपात में होते हैं। और उनमें परस्पर सामंजस्य भी होता है। कथाबन्धु की घटनाएँ धारण में विभू हुए तथ्या में कीर्ण एक-दुमरे में स्वतः संताप रूप से निवसती हुई प्रतीत होती हैं। उनकी नापारात-मी घटनाएँ भी निरन्तर के व्यक्तित्व का स्वर्ण पाकर पदचरुण बन जाती हैं। उनमें घटनाओं की गतिशीलता इनकी अच्युत प्रचार

नियमित होती है कि वह पाठक को स्वाभाविक बलि में बकती हुई मायूम पकती है और अन्तिम घटना—वाहे वह प्रत्यागत हो अथवा अप्रत्यागत—इस प्रकार बटित होती है कि वह पिछली सब घटनाया का एक सिद्ध परिणाम ही प्रतीत होती है।

ई० एम० फास्टर तथा हडसन दोना ही ने इस बात पर विशेष बल दिया है कि कोरी कहानी उपन्यास नहीं बन सकती। उपन्यास में सब कोरी कहानी होती है। कतना सुन्दर और कौशल नहीं होता तो वह कानो की कहानी या गेयबिन्नी की कहानी बन कर रह जाता है। उपन्यास कोरी कहानी बनकर न रह जाय इसके लिए उनके कटना-मंचकटम अर्थात् कथावस्तु पर विशेष ध्यान देना होता है।

### कथावस्तु और वास्तविकता के प्रति आग्रह

कथावस्तु की नामची हमारे अग्रम धनुमन् की बात ( वह वास्तविक ही क्यों न हो उन्ही ) में ली जाती है। कल्पना में कहानी के आकर्षण की वृद्धि तो होती है पर उसको परिवर्तना कथा-वस्तु का दोष बन जाती है। कथावस्तु क मंचकटम की सबसे पहली धर्म बही है कि लेखक अपने प्रति ईमानदार हो। वह जो जानता हा बही लिख। अर्थोंको की प्रमिद्धि-प्राप्त की बलिवा न अन्य स्वी-मेसिकाओं के विषय में लिखते हुए कहा है कि वे बही अमर्य होती हैं वही वह पुस्तक लेखकों की भावि लिखने का प्रयत्न करती है। अर्थोंकी की प्रमिद्धि उपन्यास लेखिका जेन आस्टिन कथावस्तु के इस सिद्धान्त का आदर्श उदाहरण उपस्थित करती है। उनके उपन्यासों में प्राय ऐसे ही प्रमर्षों की अन्ताराला की गई है जिनमें केवल उन्हीं पुरुषों का उल्लेख है जो स्त्रियों के बीच में बैठ कर बातचीत करते हुए बाप गये है। अर्थोंका में दूसरा उदाहरण हाई की है जिनने अपने उपन्यासों की रंगभूमि केवल ईर्ष्या के अन्तर्गत प्रदान का हो रना है। यही कारण है कि उनको कथावस्तु सुसंपटित रूप में आतावच्छा को भी एक अग्नि के समान महत्त्व देने में सफल हुई है। कथावस्तु के तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि में सुशासनपाल बर्मा के उपन्यास हिन्दी में लिखे महत्त्व रखते है। हमरों अन्तर्गत में कथावस्तु अन्तर्गत विविधता की बर्मा मात्रा न प्राप्त होती है। बर्मा की क ऐतिहासिक उपन्यासों में 'पूज बार्' (१९२९) 'बिराटा की पश्चिमी' (१९२९) तथा 'मांसी को राजा' (१९४६) अधिक ध्यान प्राप्त है। इनमें अग्रम वास्तविकता का आचार बढ़ना गया है। 'मांसी की राजा' में वास्तविकता इनकी उन्नत मात्र है कि उनका जीवन अग्नि

मे लगने की बात स्वर्न उपन्यास लेखक ने मोठिबी में बूझी जा चुकी है। लेखक इस प्रकार के प्रश्न की जिज्ञासा उत्पन्न होने को ही अपने कथा-वस्तु के संकल्प की विद्येयता समझता है। प्रेमचन्द की कृतियों में कथावस्तु की वास्तविकता का पूर्ण वर्णन प्राप्त होता है इन रचनाओं में प्रायः पात्र ही कथावस्तु के विन्यास एवं घटनाओं के संकटम में क्रियाशील रहते हैं। इनकी क्रियाओं में लेखक की स्नातुवृत्ति का पूर्ण योग रहता है। अतः वास्तविकता का पूर्ण एवं सफ़्तम आभास उनके उपन्यासों की अपनी विद्येयता है। प्रेमचन्द की रचनाएँ पुरुषप्रधान हैं। उन्होंने पुरुष-सङ्कति का सुलभान्तन वा सिखा है। संतर्नबंध स्त्री चरित्रों का भी सफ़्तम चित्रण उन्होंने किया है, पर सुलभ सङ्कति को गारी है, उसकी आत्मा के भीतर उन्होंने दृष्टि नहीं डाली। समय की सपरिभाषों को ही प्रधानता दी है। कथावस्तु के संघटन-कौशल के साथ वास्तविकता की पूरी पकड़ किन्तो भी स्पष्टि को लच्छन उपन्यासकार बना देती है।

कथावस्तु की एक धीर विद्येयता है—इसके कलात्मक रूप होता है। उसकी अपनी पूर्णता आन्तरिक लत्वा को अपने में कसकर एक इकार में बाँधी है। साथ ही साथ वह इकार ही अपने आसपान के आतावरण में 'भूतीयसाइज' वस्तु की भाँति लय की धीर बिना अधिक शाना पाए बडती रहती है। कथा वस्तु में साथ का सा कलात्मक होता है सब तरह से मिमा हुआ धीर उसके साथ सहज साथ है। हाँ कहीं पर अपने हीस में हो सकती है पर वह हीस भी दलनी ही दूर तक होती है बिना ही दूर तक उसमें सहज भाव की सृष्टि हो। पर प्रत्येक दशा में खेही अतमें भावि से अन्त तक साथ की-ही एकतागतता कि फिर जब संनित विक्रम तो उसमें सहज सा निजास हो। उपन्यास लेखक अपने में तो पूरा ललर्न रहता है। भीतर से पूरा कसाव रहता है पर प्रकट में ऐसा लयता है नागों कथालक बहने जीवन का उवाह है।

जहाँ जहाँ भी संनोजक लत्तों वा मेस टीक में नहीं हों वाता जहाँ लेखक आच्छल प्रभाव उ-पन्न करने में लयन नहीं होता पर जो लेखक इस संनोजक कार्य का कुशलता में कर्न मिला है वह प्रत्येक संनोजक घटना का पृथक पृथक प्रभाव धीर उन सब का लम्बितन प्रभाव भी उच्छिन अनुपात में माने में समर्थ होता है। अंग्रेजी के लेखक 'बीकरे' के अमिद उपन्यास (विनिगीफेयर) में अर्थों का अलग अलग धीर सब का मिमा पर पूरे उपन्यास के कथालक के अतिनय अधिक प्रभाव का अल्ला उदाहरण है। हिन्दी के आधुनिक उपन्यासों में मुरार वा लालबा घोड़ा और बहनी बवा' साथ के कथालक के लच्छे उदाहरण हैं। मे

उपस्थान रूप कोटि क है जहाँ वृषक वृषक बटनामा से मिलकर बूरे कषावस्तु का निर्माण होता है। सब पटनाएँ धपने में स्वतन्त्र पूर्ण एव परस्पर धर्सबद्ध-सी नगदी है पर कषावक भी एकता बटनामों के प्रतिपन्न पर धापित महा होती वरन् बहु श्रवान पात्र के व्यक्तित्व पर सखी होती है जो उपस्थास में बलिष्ठ उन ममस्त पटनामों से जिनमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता और जो बिलरी-भी होती है—मूनबन् होकर निवसता हुआ धुरियों की मात्रा की छोटी की लख नबन्दी एक में विभाण रगता है।

इस प्रकार की कषावस्तु के अध्ययन से पता चलता है कि जिनका बटनामा में मिसकर साधारण रंग में ध्यस्त होता है उसमें कही धबिक व्यक्त करने का नेत्रक का प्रयाजन है। धत सब पटनामों का नियोजन उषी मन्व को लेकर किया जाता है और बटनाएँ विभिन्न निविष्ट माधों से बहता हुई धल में सब एक निविष्ट परिणाम को स्पष्ट करने में महायक होती हैं।

कषावक क ऐव्य का सिद्धास्त हमें उसके एक विविष्ट पहलू पर विचार करने पर विवध करता है और बहु है उपस्थास में नियोजित एक से धबिक कषाओं का होता। जिस उपस्थास में एक कषा होती है उसको साधारण कषा कहते हैं। जिसमें एक से धबिक कषावक होता है उसको कषावक को मिश्रित या संयुक्त कषावक कहते हैं। मिश्रित कषावक में एक प्रमुख कषा मून होता है और एक या एक से धबिक प्रासंगिक कषाएँ होती हैं। इसी मुख्य कषा को कषामूत्र (बीज) और प्रासंगिक कषा को 'एपीमोट' या उपकषा धपका 'संडरप्माट' की संज्ञा दी गई है।

### कषावस्तु निर्माण के मूल सिद्धास्त

कषावस्तु की विभिन्न पद्धतियों की उद्भावना जहाँ एक और जीवन की विविधता की धार हमारा ध्यान आकर्षित करती है उषी के माप कषावस्तु के निर्माण के मूल-सिद्धांतों को भी निर्धारित करती है। जीवन में या कुछ भी होता है बहु कषावस्तु का कारण भन ही धत जाय वर जीवन का प्रत्येक पटना उपस्थास की पटना नही होता। जीवन का मन्व कषावक का मन्व नहीं बन पाता। उपस्थास में कषावक की मन्वता भावजान् की मन्वता को धपन धापार ध्व में लेती है।

यह प्रश्न उठता है कि कषावस्तु को उपनयित किस प्रकार हो ? ऐनरी केम के धनुना उपस्थासधार कषावस्तु के बीज धपका कोटान्ग विधी न किमी धधार निरीक्षण से डाग धपका मूत्रक जीवन में ही न लेता है। जीवन

विषयों से पूर्ण है पर हमें यह पता नहीं कि उनका उपयोग कैसे किया जाय । उपन्यासकार की यही विधिष्ठता होती है कि वह उपयुक्त विषय को चुन लेता है । एक सफल उपन्यासकार एक विन्दु से बसकर आदर्शमकानुसार चरित्रों की सृष्टि करता हुआ यथवा उचितस्थित चरित्रों को वांछनीय गुणों से अभिविष्ट करता हुआ उन्हीं के हाथ में स्वाभाविक ढंग से कथा के प्रवाह को छोड़ देता है ।

इस प्रकार के कथानक-बीज यथवा कारण-कीटाणु का अण्ड होना मात्र ही वा उपन्यास के द्वारा चुना जाना मात्र ही उपन्यास की सफलता का कारण सिद्ध नहीं होता । जब कथावस्तु निरिष्ट हो जाय तब उसका सकारात्मक से पूरी ईमानदारी से काम करने का होता है । कथावेद्य का भी यही कहना है कि बीजा (कथाबीज) सोचे बैसा ही (उसी के अनुरूप ही उपन्यास का) निर्माण करे । उपन्यास सम्बन्धी अपने किसी बीज रूप विचार को विकसित करना इसके अन्तर्गत् में छुटों को खोज कर पतितियों की शक्ती को मोड़-भाड़ कर एक सुलक्ष्ण नहीं बना देना है । यह बहुत-बहुत एक बच्चे को जन्म देने के समान होता है । कुमारी रेबेका ने तो इसकी तुलना वृक्ष की वृद्धि के साथ की है ।

जार्ज इलियट और हेनरी जैम्स के अर्थों की तुलना करने से यथवा क्रिपोटीनाम पोस्वामी और बर्निन्ड की रचनाओं की तुलना करने से हम इस बात को सहज में समझ सकत हैं । किसी भी प्रकार से कथावस्तु का संघटन हुआ हो उन मध्य में लेखक की जिस प्रकार की मानसिक प्रक्रिया की भयेला होती है यह आविष्कार की भयेला ग्लोच करने वाली मानसिक प्रक्रिया के अन्तर्गत है । आरम्भ से ही कहानी में स्वाभाविकता या पाती है । लेखक अपने से यह नहीं पूछना 'यद्यपि मैं पाठकों की रुचि के लिए धार्ये किम बात को घटित करूँ ? बल्कि वह अपने से यह पूछना है कि (ऐसी परिस्थिति में) वास्तव में क्या घटित हुआ ?

सिन्धु एक विषयवस्तु की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास के कथानक के विज्ञान क्रम की रीत्या बहुत कुछ इस प्रकार है—सम्भ एक पारा कथना प्रधान कथानक ऐसीसा अक्षर-शर भनेक पारा घटना प्रधान कथानक सिद्ध हल-क्रम-कथानक अन्वयत प्रसूत चरित्र-प्रधान काव प्रधान एवं नाटकीयता प्रधान कथानक ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक रोमांस समस्यामूलक और बातावरण एवं मनोविश्लेषण प्रधान कथानक । हिन्दी उपन्यास का कथानक आदि में सुस्पष्ट घटना प्रवाह से कुछ पाठक वा प्रमुख पाठकपाल वा उत्पत्त्यात् शिल्प के विकास एवं अन्वयत

के माध्यम से वे गीस स्वाम प्राप्त हुआ। प्रभुत्व में सीस होता हुआ वह धितिसूत्रम समयम ग्रहस्य तक हो गया। कर्मात्मक की वह धितिम बन्धता बहुत समय तक नहीं रही थी। फिर से संयुक्त समुदाय की गीस एवं नाटकीयता की सीस हुई और इस प्रकार उपन्यास के रचना कोशम में उमे पुन प्रभुत्वता प्राप्त हो रही है। कर्मात्मक की यह प्रभुत्वता उसके प्राचीन रूप की उद्विगीनी में होकर सीस के युगों में तमाम विकास एवं उपलब्धियों से उमे पूर्णतः अधोभित एवं परिवर्धित करनी हुई एक नवीन निरकरा हुआ रूप दे रही है।

### चरित्र चित्रण

चरित्र चित्रण का महत्त्व—उपन्यास का विषय मनुष्य और उमका कार्य व्यापार माना गया है। यह उपन्यास का महत्त्व महत्त्वपूर्ण तत्व चरित्र चित्रण है। बुद्ध धारणोत्तर चरित्र-चित्रण की धितिक महत्त्व नहीं देने है। हमने सम्बन्ध में कहा जाना है कि चरित्र उपन्यासकार की नहीं पाठक की हित होता है। निस्सन्देह यही पर यह कहना कार्य सम्भ्या तक उपमिन करना महा होया कि स्वयं उपन्यासकार ही उम काल का स्वीकार करने है कि उपन्यासकार का सबसे महत्त्वपूर्ण करणीय चरित्र निर्माण ही है। उपन्यास एक समझता की रचना का नाम है और जो बुद्ध की उममें लिया होता है, उम एक एक धार में मिलकर वह बनता है। उमक महत्त्व का निर्माण भी समझता की हित में हुआ चाहिए। चरित्र-चित्रण उम समझता का एक धारमात्र होता है पर यह स्पष्ट है कि यह उमका सबसे महत्त्वपूर्ण धार है और उमक धारयधारमक संघटन का विचार से धारयधारमक पर गया जा सकता है क्योंकि उम तक पाठक का सम्बन्ध है बिना चरित्र की सहायता के मनुष्य के भाव्य का विधान स्पष्ट ही नहीं किया जा सकता। उपन्यास में जो बुद्ध भी हुआ है उम सबसे योग्य चरित्र के समझन में होता है। हम चाहें धारयधारमक में हाडों का चरित्र धारयधारमक में उमक क चरित्र उदाहरण के रूप में ले ता हम पता करया कि वे उमक में कितन भी आधारण के लगे पर उमक समझन के लिए होता है उमका के पुन उपन्यास के समझन का व्यास में गया हुआ ही उम पर विचार करना होता है।

यह सभी धारयधारमक उपन्यासकारों के चरित्र के विषय में कहा है। धारयधारमक रूप के वे धारयधारमक ही पाठक और चरित्र के बीच में धारयधारमक का कार्य करन है। यह कार्य कर लिये हुए धारयधारमक धारयधारमक धारयधारमक करता है क्योंकि उपन्यासकार का लिया हुआ धारयधारमक धारयधारमक चरित्र धारयधारमक के प्रति उमके हित कोश को ही स्पष्ट नहीं करता करन पूरी परिस्थिति को भी स्पष्ट करता है।



इस प्रकार मन्त्रों के चरित्र एक साथ मिल कर उनके उपायों की मन्त्रों के जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण का दृष्टान्तस्वरूप बना देते हैं। इन्हीं चरित्रों के माध्यम से वे अपना जीवन-दर्शन भी उपस्थित करते हैं।

### चरित्र चित्रण का प्रारम्भिक स्वरूप

चरित्र-चित्रण के सम्बन्ध में प्रारम्भ में ही हमें कुछ ध्यानात्मक तथ्यों पर विचार करना आवश्यक है। क्या उपन्यासकार अपने पात्रों और स्थितियों को हमारी कल्पना में वास्तविकता का रूप दे सकता है? महान् उपन्यासकार अपनी महान् कृतियों में इस बात को सम्भव बना देते हैं। इन उनके द्वारा निर्मित चरित्रों में ऐसी ही शक्ति लगे हैं जैसे अपने आसपास रहने वाले परिचित लोगों में। इस प्रकार सबसे पहली बात जो हमें एक उपन्यासकार की रचना में देखनी पड़ती है वह यह है कि क्या उसके पात्र सब व्योमों के मूल भाग पर भी स्वाभाविकता से कार्य करते हुए उपन्यास के चरित्र जीवन की पुस्तक के बन्द करने पर भी जीवित यन्त्रों की भाँति हमारी स्मृति में टिके रहते हैं।

इन यहाँ उक्त मानवीय प्रतिमा की मनोवैज्ञानिकता पर बाह्य-विचार करना अनावश्यक समझते हैं जिसके द्वारा हमारी स्वच्छन्द कल्पना के स्वरूपों को वास्तविकता का आभास दिया जाता है। इसके मूल में विचार की तीव्र चारणा एवं अबाधितप्रवृत्ति क्रमगत है। पर इसके साथ ही साथ वह भी स्वच्छन्द रचना चाहिये कि चरित्र के सृजन की प्रक्रिया स्वयं रचनात्मक धर्मित रहने वालों के लिए उत्तम ही रहस्यपूर्ण है जिसकी घोरों के लिए।

चरित्र चित्रण के सम्बन्ध में यदि हम प्रत्यक्ष लक्ष्य की बात एक घोर धारणा से तो बुरी घोर हमें यह देखना होगा कि उन्हीं चरित्र-चित्रण की लक्ष्यता अवाप्त्य रूप से वर्तन करने पर निर्भर रहती है। मानवीय चरित्रों में व्यक्तित्व का जो प्रभाव इनकी वैधुयता द्वारा प्राप्त और बाह्यतन्त्र द्वारा परिचित किया जाता है वही सब बातें उपन्यास पात्र में केवल क्रियेस अथवा प्रेमचन्द्र जैसे मन्त्रों की रचनाओं के सचित्रीकरण को अनावश्यक में औचित्य कल्पना की महत्ता से सम्बन्ध की जाती है। इसीलिए उपन्यासकार के द्वारा चरित्र के बाह्य स्वरूप तथा दिशिष्ट स्वरूप का सुसंगत वर्तन चरित्र-चित्रण का आवश्यक अंग होता है। एक यह प्रश्न उठता है कि यह कार्य संभव कितना किया जाय। कैथिन के मतानुसार अनेक कुशल कलाकार की यह महत्ता होती है कि वह कुछ महत्त्वपूर्ण व्योमों का चयन कर उन्हें एकत्रित करके

विभिन्न घटकों पर इसके संकेतों से पाठक की कल्पना को उद्दीप्त करने की चेष्टा करें।

### विदेशीयलाभक और नाटकीय रंग

चरित्र चित्रण अपने विविष्ट रूप में—धर्मार्थ धरम मनोवैज्ञानिक पदा में ही बातों की धोर हुआच ध्यान आकषिप्त करता है जिसमें उपन्यास की परिस्थितियाँ ही विरोधी रंगों को सामने धान देती हैं—प्रथम है धीरा धरने बलात्मक रंग और द्वितीय बर नाटकीय रंग। पहले प्रकार में तो उपन्यास बार किनी चरित्र की मैठा है धीर उभवा बाह्य म चित्रण करता है। बार उनही बासनाधो उद्देश्यों विचारों धीर भावनाधा को उपार कर देवना है उम्हें स्पष्ट करता है उन पर टीका करता है धीर तब धधिवार पूर्व रंग में धपन निर्णय देता है। दूसरे प्रकार क चरित्र चित्रण में बह धलप का लडा होना है धीर चरित्रों को स्वयं धपने बावणों एव दृष्या द्वारा धपने को उपारण देता है। बह चरित्रों के धाम्य चित्रण को धम्य चरित्रों के द्वारा उनके धियम म कही पर टिप्पणियों की वहापता से धीर धधिव स्पष्ट करता है। उपन्यासा में प्राय इन दोनों रधा का मिधस होना है। धाम्यकपात्मक उपन्यास चरित्रों में तो लेखक को सब कुछ चरित्र के हाथ म छोड़ देना पड़ता है। प्राय लेखक द्वारा बर्णन धीर पावा के बीच म सधापण यह उपन्यास के चरित्रा का ध्यापक रूप होता है।

### चरित्र-निर्माण की प्रक्रिया

विश्व प्रकार वधावस्तु के मूल में वहानी होनी है उनी प्रकार चरित्र चित्रण के मूल में अनुप्य होता है। जब हम संसार की तब देसन का प्रयत्न करते हैं तब धने मानव की धियाधों एवं विचारों के प्रकट विस्तार के रूप में पाते हैं। उपन्यास मानव के नतार का उरन्यामकार की कल्पना के माध्यम में प्रलिप्त रूप है धन उरन्याम के र्मणार म उरन्याम के चरित्रा का प्रमुग र्भाव होता है। र्मणार में तो नमी प्राणी होने है पर उपन्यास में को प्राय केवल मनुष्य ही हात है। धपवाद रूप में हमें कुछ उपन्यास मिलते हैं जिनम मनुष्ये-तर प्राणियों का चरित्र भी मिलता है। ही यह धधरप है कि कर्नबाज कत्री एव धमेरिकन सुगनोक धार इधिम बरु के प्रयाम द्वारा विज्ञान भविष्य म उपन्यास के चरित्रा का विस्तार मनुष्यतर बर्णों व का करेगा। पर जब तक नका कबवा केनक ऐसे चरित्रा का प्रवेस उपन्यास मधु में नहीं होता तब तक हने बह। मानना पड़ना कि उरन्याम के पात्र मनुष्य ही हाने है।

ई० एम० आर्स्टर चरित्र निर्माण की प्रक्रिया को अपनी तात्संबंधी प्रथम में प्रस्तुत करता है। उनका कथन है कि उपन्यासकार स्वयं मनुष्य होता है, यद्यपि उसके द्वारा लिखित चरित्र में जो निवृत्त का संबंध होता है वह कला के धीरे किसी स्वरूप में नहीं होता। इतिहासकार धारि का संबंध भी मनुष्यों से होता है पर वह संबंध उतना धीरम नहीं हो सकता। चित्रकार एवं मूर्तिकार का इस प्रकार का मोतिक संबंध चित्र पद्यवा मूर्ति से पद्यवा माडेल से भी होने का प्रसंग ही नहीं उठता। कवि धीरे संयोजक का तो प्रेरणा देने वाली मानवीय धारि के रूप में पद्यवा मुनने वाले कुण्डलाहका के रूप में कलाकार ने मने ही कुछ सम्बन्ध हो किन्तु कविता एवं समीत-सृष्टि के रूप में उसका उस तरह का कोई संबंध नहीं होता।

वास्तविक जीवन के मानव धीरे कथारक जगत के मानव में भी अन्तर होता है। कथा जगत का मानव यद्यपि इस निवृत्त कल्प से अधिक भ्रमात्मक होता है। इसी प्रकार का मानव विभिन्न उपन्यासकारों के अस्तित्त्व में स्थापित होता है धीरे अस्तित्त्व रिक्त चरित्र के विकास करने के उनके अन्तर्गत अन्तर्गत होते हैं यद्यपि इसके विषय में सामान्य नियम नहीं बनाए जा सकते। तो भी हम कुछ बातें निरिक्त रूप से यह ही सकते हैं। सबसे आवश्यक बात जो उसके विषय में हम जानते हैं वह यह है कि हम उसके विषय में अपने परिचित अस्तित्त्वों से अधिक जान सकते हैं क्योंकि उनका अस्तित्त्व धीरे उनके विषय में लिखने वाला एक ही होता है। चाहे वह उन सब बातों को हम पर प्रकट न भी करता चाहे धीरे बहुत-सी ऐसी बातों को विस्तृत स्पष्ट होती है उन्हें भी चाहे वह न लिखे—इतना हमें पर भी वह हमारे अन्तर्गत ऐसा प्रभाव प्राप्त करता है कि यद्यपि चरित्र की व्याख्या की नहीं गई पर उसकी व्याख्या की जा सकती है धीरे इसमें हमें जिस प्रकार की स्वाभाविकता पुस्तक के चरित्र से मिलती है वही वैदिक जीवन में नहीं मिलती। इस विषय में उपन्यास इतिहास में अधिक सत्य के निवृत्त है क्योंकि उनका ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान के पार जाता है धीरे हमसे प्रत्यक्ष जानता है कि प्रत्यक्ष ज्ञान के पार भी कुछ है धीरे उपन्यासकार यद्यपि अपने पूर्ण रूप में नहीं भी प्राप्त कर सकता है तो भी वह उसे जानने का सफल प्रयत्न तो करता ही है।

इसी कारण से सब चरित्र वास्तविक संसार में नहीं देखे जा सकते। उनका अज्ञान जीवन स्पष्ट रहता है या स्पष्ट हो सकता है परन्तु हम ऐसे हैं जिन्हें जीवन का रहस्य परोक्ष ही रहता है। इसी कारण कुछ चरित्रों वाले

उपन्यास की संभावना होते हैं। वह एक अधिक समझदार और नियंत्रण में रहने वाली मानव जाति का विचार प्रस्तुत करते हैं। वे हमें घातक दृष्टि एवं शक्ति की संभावना का भ्रम देते हैं।

उपन्यास में ई. एम. फास्टर महोदय के अनुसार चरित्रचित्रण के दो मुख्य पहलू होते हैं। एक ओर तो उच्च मानव प्रयत्न ( अर्थात् उपन्यासकार की स्वयं-शक्ति) का कीसल होता है और दूसरी ओर प्रकृति की स्वाभाविकता की ओर घातक होन की प्रवृत्ति। उपरोक्त विवेचन में यह तो स्पष्ट हुआ कि चरित्र को हम जीवन से निकालकर पुस्तक में रक्त सकते हैं अथवा पुस्तक के पाठों को हम अपने जीवन में पा सकते हैं। इसका नकारात्मक उत्तर तथा यह स्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित कर देता है कि क्या हम बिना प्रतिबिम्ब के जीवन में एक दूसरे को समझ सकते हैं? यह समस्या अधिक धार्मिक है। इसके पश्चात् फास्टर महोदय चरित्र का अध्ययन उपन्यास के अन्य पहलुओं के साथ प्रस्तुत करते हैं। यह पहलू है कथानक, उद्देश्य साध के दूसरे चरित्र आशाकरण आदि। वह चरित्र को अपने रहने वाला की अन्य बातों को अनुकूल बनाने की आवश्यकता का भी अनुभव करता है।

इसका अभिप्राय यह हुआ कि पुस्तक के चरित्र दैनिक जीवन से मेल नहीं खाते केवल उनके सामानांतर चलते हैं। जब हम बोलचाल की भाषा में कहते हैं कि अमुक चरित्र विस्मृत जीवन में मेल पाता है तो उससे यही अभिप्राय होता है कि उसके जीवन एवं पृथक-पृथक वास्तविक जीवन अंशों की भाँति है, पर अपने पूरे रूप में केवल वह किसी ज्ञात व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) के समान-सा है। उनको हम साहित्यिक एवं आलोचनात्मक विवेचना के लिए भी उपन्यास में प्रस्तुत करने नहीं ल सकते क्योंकि उनको वहाँ से उखाड़ने में साथ में लगे हुए अन्य चरित्र-आशाकरण आदि भी उखाड़े चल पाएँगे। यदि कांय उपन्यासों में चरित्र अपना विस्तार अपने साथ नहीं करते उन्हें परस्पर व्यवहार अन्य संभव में काम लना पड़ता है।

### चरित्रों के प्रकार

ई. एम. फास्टर का चरित्र विभाजन कुछ बातों के आधार के सहित सामंतीय या होगया है। वह चरित्रों को दो प्रकारों में बाँटा है।

- (१) सिपर (Flat)
- (२) गतिपीस (Round)।

सिपर चरित्रों को १० की घनाक्षरी में प्रकृति विषय' वाले चरित्र (Humour) कहा जाता था। एक समय उन्हें प्रकार (Types) की संज्ञा से

जाती वी धीर कभी वह व्यङ्ग्य बनना विवृत' चरित्र (Caricature) के नाम से परिचित होते हैं। अपने सुदृढ स्वस्व में स्थिर चरित्र किसी एक गुण बनना विचार को लेकर गया जाता है। जब उनमें एक से अधिक प्रवृत्ति परिलक्षित होने लगती है तो उनमें वृत्तिलक्षणा का आरम्भ हो जाता है। जो सम्मुख में 'स्थिर' चरित्र होता है, उसको एक वाक्य में प्रस्तुत किया जा सकता है—*I will never desert Mr Micawber* हिन्दी में प्रेमचन्द की रंगभूमि में विवृत इसी का समानान्तर चरित्र ईश्वर सेवक का है जो सर्व—'प्रभु मछीइ मुझे अपने सामन में कुटा—एक लम्बी में पहचाना जा सकता है।

एडविन म्योर भी फ़ास्टर का चरित्र विभावन स्वीकार करत है पर वह फ़ास्टर से इस बात में सहमत नहीं है कि स्थिर कम महत्वपूर्ण हैं। एडविन म्योर ने फ़ास्टर के स्थिर चरित्र को मया रूप दिया। उसके अनुसार स्थिर कहे जाने वाले चरित्रों में केषन वही गुण नहीं होता जिसकी विविधता से वह भीड़ में भी पहचाना जा सकता है। वह विविध गुण उसके विषय में चरित्र का मत्प हो सकता है पर उसका 'सम्पुर्ण' नहीं होता। चरित्र-भावना सम्प्राप्त उसके उद्यो एक पंथ को सामने लाता है।

पुनः पुनः की उद्भावनाओं के अनुसार सम्प्राप्त में चरित्र की उद्भावना की जाती है। स्थिर' या वृत्तिलक्षणा कहे जाने वाला चरित्र इसा विशेषता को प्रकृत रूप से अपने में स्पष्ट करता है।

### चरित्र के अर्थ प्रकार स्थिर, निर्मित तथा विकसित

चरित्र की उद्भावना के विचार से सभी प्रकार के पात्र तीन श्रेणियों में रख जा सकते हैं। पहली श्रेणी स्थिर चरित्रों की होती है। सम्प्राप्त में स्थिर चरित्र बर्णों के मरीक के रूप में आते हैं। वे उतके ऐसे रूप होते हैं या जन मानस को कल्पना में बह मूर्ति हो जाते हैं। ऐसे चरित्र किसी बुरी निम्नता को हास्य का विषय बना देते हैं यद्यपि अनुभव को पत्थर का पुतला बना देते हैं। इसके निर्माण के पीछे वास्तविक जीवन में चरित्र-सुधार का उद्देश्य रहता है।

निर्मित चरित्र कल्पना की अनुकूलता में हम एक धीरे धीरे जाते हैं वह एक बर्ण ही बनता जाता है। ऐसी स्थिति में जब हम पात्र को आरम्भ में यदकर उद्यो विविध गुणों का समावेश कर उन्हें जीवित कर देते हैं। निर्मित पात्र वास्तविकता की बर्णना पर कल्पना की यद्वन होती है। निर्मित चरित्र को

सितक कमानक की धावसकठानुसार बनाने हुए घाये बडता है। उनमें स्वयं मनमान वशी के समान हुता है। धबमर की अनुकूलता उन यडगा रहती है पर उपासन की समानता से चरित्र में एकतातना बनी रहती है। मूर्ति में धाराय मा होना खुना है और ऐस्पर स्वाग भरता खुना है।

बिचमिड चरित्र में पुष्प का सा विकास होता है। वह निर्भर रहता है केवस समय क कर्म के घण्टर पर। उपभ्यास का विकसित पात्र कष्टन पर क्षिणता हुआ फूल होता है। उसका विकास स्वयं धंङुर की धक्ति एवं बाता बरख के अनुमान पर निर्भर रहता है। यह पात्र निम्न चरित्र की भांति कला कार द्वारा यडी हुई जीवित मूर्ति नहीं हुता बरन् स्वाभाविक गति से कृत्रि-व्यास योचन का व्यक्तित्व होता है।

### मनोबिज्ञान और चरित्र चित्रण

बस्तुन उरभ्यास मानक की जीवन-गाथा हो है जिसे हम पात्रा क माध्यम से जानते हैं। इन पात्रों के चरित्र के संबंध में हमें तीन बाता पर बिचार करना होगा है—(१) चरित्राव्हाटन (Exposition) (२) चरित्र-वर्णन (Description) (३) चरित्र-चित्रण (Characterization)

उपभ्यास म संभार प्रकृति क सखक क मिए माधारणु डग का चरित्र का उव्हाटन बर्तुन धयबा चित्रण माधारणुतया पर्याय नहीं होगा। समय-समय पर पाठक जानना चाहता है कि चरित्र धयुक परिस्थिति बिन्ध्य में कैसा अनुभव करता है बिच्यकर सखअवस स्थिति में होन पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होती है धवन हो कार्यो के प्रति उसक मन में कैसा इन्द्र उठता है, बिच प्रचार कार्य हा रहा है उसका उद्देश्य क्या है ? इसी प्रकार वह हम बाता को भी देखना है कि परिस्थिति-बिन्ध्य के हुने पर उसकी भावनाएँ और मानसिक प्रक्रिया किस प्रकार की हुती है। उसकी भावनाधा का इन समयस बिचरतुओं के माय प्रस्तुत करन की क्रिया को क्या माहित्य का मनोबिज्ञानिक प्रक्रिया का नाम दिया गया है। यह वैज्ञानिक धयबा वास्वीय डंग से धध्ययन बिण जान बात मनो बिज्ञान म बिलुन मिध होता है। वैज्ञानिक कलाओं में मनोबिज्ञान वह तत्व है जो 'मारक' धयबा अनुभव के वैयक्तिक पहलु न सखन्वित होता है। अंग्रेजी माहित्य में मन् १८३० ई० के समय माहित्य म इसका प्रयोग हुआ। यह हेनरी जेम्स के उपभ्यासों में धनने धीरे बिन्दु पर पहुँचा पर उसके उपभ्यासों में वह धनने चरम बिन्दु तक नहा पहुँचा। जेम्स उभाणु तथा बर्जीनिया कुन्ड धारि लेखका का रचनाधा में चरित्र-चित्रण कर्षपी मनोबिज्ञानिक प्रक्रिया की

धीरे अधिक प्रगति हुई। यह यहाँ तक हुआ कि कही तो इस प्रकार के उपन्यास में 'प्लाट' का पता ही नहीं चलता।

हिन्दी उपन्यास साहित्य पर भी इन लेखकों का प्रभाव पड़ा। चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक पद्धति अपनाते वालों में बंनेन्द्र और इलाअली जोशी अत्रेय तथा प्रो० देवराज का नाम मुख्य है। इसका यह भी धर्य नहीं है कि इसके पहले उपन्यासकार मनोविज्ञान से प्रभावित नहीं थे। उपन्यास ('नाबेम') के साधारण जन-म—व्यार्थ जीवन से सम्बन्धित होने के कारण जिस प्रकार अंग्रेजी के प्रमुख धार्मिक उपन्यासकार पीरिडल के उपन्यासों के चरित्रों में मनोविज्ञान का प्रभाव है उसी प्रकार हिन्दी में भी प्रेमचन्द के उपन्यासों के चरित्रों में भी मनोविज्ञान का महत् प्रभाव परिलक्षित होता है। हाँ यह बात धर्य है कि ये पहले लेखक व्यार्थ चित्रण को सहाय भाव से लेते थे और एक लेखक नज़र हो कर लोग करने वाले की भाँति चरित्र में बैठते हैं। इसके परिणाम स्वरूप चरित्र-चित्रण में एक विशेष प्रक्रिया में स्वरूप पामा है जो अंग्रेजी में 'लीम बाव नात्सनेस' के नाम से विख्यात है। इसी को हिन्दी में 'बैठना प्रवाह' की तकनीक का नाम दिया गया है।

### बैठना प्रवाह तकनीक का आधिभाष

एक दृष्टि से देखने पर 'बैठना प्रवाह' तकनीक काम-परिमाण से पर्याप्त करने का साधन है। वर्तमान पर अतीत का आघात न केवल स्पष्ट स्मृतियों के रूप में हीना है बल्कि आधिकारिक अस्पष्ट और सूक्ष्मतर बंधों से भी होता है। हमारा अस्तित्व किसी एक ऐसी धारा में बह चलता है या धारातल पर असाधारण होता हुआ भी वास्तव में प्रारंभिक स्थिति से एक निश्चित संभव रहता है। इस प्रकार अतीतों के प्रति पात्रों की प्रतिक्रियाओं को बिसाते हुए निकलें हमें वर्तमान स्थिति से प्रसूत होने वाली स्मृतियों एवं विचार साहचर्यों से कुछ अस्तित्व की अवस्थाओं को प्रस्तुत करता है। ऐसा करते हुए वह वर्तमान स्थिति की सृष्टि करता है और साथ ही साथ अतीत की निर्धार बदलती हुई पटना अंतर्भावों का संसर्ग भी करता जाता है।

अस्तित्व की रसा का वह चित्रण यदि सतर्कता एवं कीर्तन से किया जाय तो सदाक महत् ही एक क्लेश में ही अग्रसर कर सकेगा। यह अपने पात्र के वर्तमान अनुभव की व्यार्थ प्रवृत्ति की मुचनना है सकेना और साथ ही प्रत्यक्षता प्रस्तुत पात्र के पहले क पात्र के जीवन विवरण सप्या की भी हो सकेगा। 'पहले के का धर्य सभी संभावनाओं में, उग अणु से पहले है कब पुस्तक





एवाटन एक क्रम से होता है। प्रेमचन्द से पहले खरिज-विभण की सीमा कुछ इस प्रकार की थी कि सभी पात्र प्रायः एक टाइप-विलेय के होते थे। प्रेमचन्द की हिन्दी अर्थात् के सर्वप्रथम एक ऐसे कलाकार थे जिन्होंने उन्हीं के अपने चरित्रों में 'अभिप्राय और विचार देने की शक्ति देना की है। उनके प्रायः सभी पात्रों में वैयक्तिक दुर्बलताएँ एवं सफलताएँ हैं। जीवन की कभी एक घाटा नहीं होती है। एक प्रमुख जीवन घाटा की अनेक जीवन बाणों, इधर उधर फूटती हुई इष्टिपोषण होती हैं। जो प्रत्यक्षतः प्रथम प्रलय होती हुई भी आये-सीधे पुनः एक ही रूप को प्रतिमासित करती हैं। व्यक्ति अपने अन्तः में किसी एक ही भाव को पालना-पोसता है, पर सामाजिक मूल्य मर्यादा उसे किसी दूसरे ही भाव की ओर खींचती है। सारांश यह कि नायक और नायिका की एककता के अभाव में अन्तर्द्वन्द्व की सृष्टि होती है और यही अन्तर्द्वन्द्व व्यक्ति वास्तविक जीवन है। प्रेमचन्द की ये जीवन के इस अन्तर्द्वन्द्व का मानव-मन के अन्तराल में प्रविष्ट होकर अध्ययन किया जा।

खरिज-विभण की परोक्ष विधि का प्राकृतिकतम, उच्च एवं सङ्कष्टतम विकास अर्थात् इसाचन्द्र जोषी और कर्णोपकरणालय रेणु के उपन्यासों में पाया जाता है। मनोविस्तेषण साहित्य के इन परिवर्तों में मनुष्य के अन्तर्गत की अतल बहुराइयो में पैठने के सहाय्यीय प्रयत्न किए हैं और अपने पात्रों के बाह्य एवं अन्तर्गत दोनों के ही विषय तुलनात्मक एवं सापेक्षिक अध्ययन प्रस्तुत किए हैं। कला की दृष्टि से यह प्रयोग अकारणनीय होते हुए भी लेखक की रससमी कला का सहारा पाकर कहीं तो बड़े सुन्दर और यही विषय की परिवर्तन दुर्बलता से आच्छादित होने के कारण विविध अध्ययन से अक्षिप्त रहने वाले पाठकों के लिए बड़े शुष्क विरस और उबा देने वाले भी हो गए हैं। खरिजाचन की यह विविध अध्ययन प्रमुख मनोविस्तेषणारमक अकारण्य निष्पन्न की सीमा बहुत संकर एवं अकारण्य नहीं जान पड़ती। ऐसे उपन्यासों की सफलता का क्षेत्र अत्यन्त और विस्त्रविद्यालयों की शिक्षा पाए हुए पाठक वर्ग तक ही सीमित रहता है।

#### कथोपकथन

कथोपकथन का अर्थ—किसी भी मनुष्य के सम्बन्ध में ज्ञान संवह हम उसके इतिहास के सहारे तो करते ही हैं पर उसके विषय में दिन प्रतिदिन नया ज्ञान हमें अपनी बातों द्वारा होता है। जो कुछ वह दूसरों से कहता है (दूसरों के संभव के या अपने संबंध में) और जो कुछ दूसरे बतते रहते हैं उन्हीं

क मरारे हम उसके भीतर पहुँचते हैं। उन्मत्त में ही वास्तविक घनत्व बिंदु बना के साथ प्रकृत होता है। कभी-कभी वास्तविक घनत्व के मोने या दृष्ट पड़ता है और कभी तो वह कथोरकपन का स्वाभाविक उन्मुक्त और नाटकीय बन होता है अन्वय प्रायः संभावना नभ क पाती की तरह श्रितता उन्मत्त का आह्ला है निश्चलता रहता है। उस स्थिति में कथा-प्रवाह एक अविच्छिन्नता की दृष्टि में श्रितता प्राकृतिक होता है न्यूनता ही बोधा जाता है।

ध्वनि और गार का महत्व बहुत अधिक है। ध्वनि एवं गार की साफकता मानव की घनत्व विमलता है। नाय गार का आदिप्रार ध्वनिया की सर्व-तात्मकता की पक्ष और उमका विचार ( अर्थात् अन्वय )—महत्ता ( ध्वनि विचार या टोन ) सब वास्तविक सवार प्रकटा कथोरकपन की विनिष्ठता एवं प्रभावामकता क बढ़ाने में सहायक होते हैं।

उन्मत्त का सर्वोत्तम स्वरूप बही माना जाता है जिसमें पाठक को यह न प्रतीत हो कि कोई उमका बना कह रहा है। शब्द एक बाह्य कथा करता पा—“Don't tell em”—“Show em अर्थात् पाठकों को बताना मत—उन्हे दिखाया।<sup>1</sup> दास वाली श्रिया का परिहृम बहन कर देखन दा' कर हैं तो अर्थ अधिक स्पष्ट होता। इन दृष्टि में उन्मत्त में कथाकथन का महत्व अधिक है।

कथोरकपन का अन्वयिक प्रभाव अर्थों के विचार और कथाकथन को प्रायः बढ़ाने में सहायक होता है। जिस उन्मत्त में कथाकथन की श्रितता और अर्थिक का विचार—सेवक के मन में क होकर संयोग का परिणाम होता है घनता एकात्म रूप में घनत्व अन्व की प्राप्ति होता है उस उन्मत्त में कथोरकता महा का पाया। अन्वय क विष्णुय न हून में अन्वय में एक प्रकार के श्रितता का वातावरण प्रा ही जाता है। अन्वय प्रयत्न का विचार है कि उन्मत्त में वास्तविक श्रितता अधिक हो और अन्वय का अन्वय श्रितता ही बन सिखा जान उठता ही पड़ता है। इस सम्बन्ध में इतना ध्यान रखना

1 “The aphorism is even more binding and Novelist whose effort is to tell as little as the circumstances permit to show what he has decided is essential, and to make what is shown, suggest the rest.”

प्रावश्यक है कि शार्ताबाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिये। किसी भी चरित्र के मुह से निकले हुए प्रत्येक वाक्य को उसके मनोभावों और चरित्र पर कुछ प्रकाश डालना चाहिये। शार्ताबाप का स्वाभाविक परिस्वप्तिमा के अनुकूल और नुलम होना प्रावश्यक है।<sup>१</sup>

साहित्य की खोजों से यह पता चला है कि बहुधा संभाषण का कथानस्तु (प्लॉट) के क्षय-विकास के प्रयोजन से किया जाता है। संस्वर्षार की गति कथानक की गति संभाषण के भीचे (बैसा कि बहुधा नाटक में होता है) प्रवाहित होती है। पर संभाषण का मुख्य कार्य चरित्रों से सीधा सम्बन्ध रखता है। चरित्रा के मनोवेबा उद्भवा भावभावों के प्रदर्शन के लक्ष में जिन कथाघा में वे भाव लेते हैं, उनके सम्बन्ध में बोझने वालों की प्रतिक्रिया को मुखरित करने के रूप में और उनका एक दूसरे के द्वारा पढ़े हुए प्रभावों के परिमलित करने के रूप में संभाषण का प्रावयिक महत्व है।

कथोपकथन कहानी का एक अपरिहार्य अंग है। कथोपकथन को हीन अंग से अथवा मीलु रूप से कथानक की गति में बोध देना चाहिये। जहाँ तक चरित्र-विकास का सम्बन्ध कथावक की गति को बोध देने से है जहाँ तक कथोपकथन का भी उसमें सहयोग रहता है। ऐसा कथोपकथन जिसका कथानक के विस्तार अथवा चरित्र के विकास से कुछ भी प्रयोजन नहीं है, किन्तु ही अतुल्य से पूर्ण अथवा रोचक क्यों न हो उपन्यास में इसी तरह अघाष्ट होना चाहिए जिस प्रकार स्वयं लेखक द्वारा उपन्यास में सम्मिलित किए जाने वाले विविध विषयों पर लिखे गए निबन्ध। इस प्रकार कथोपकथन से उपन्यास अथवा कथा का बौद्धिक अविधार-स्वयम बन जाता है और तब तक पुनः नया पूरा उपन्यास अथवा कथा के अवर बुद्धि का बोध बढ़ा देता है। ऐसे उपन्यास में पात्र प्रतिभा के अथवाटी बन कर बिगुटा के अर्थे अर्थे पर से अथवाटी को बुद्धि विधास का रूप दे देते हैं। लेखक प्रादि से अथवा तक पाठक को विधानी कथोपकथन या कथो-कथी बौद्धिक जिननेविषय का भी उपन्यास करता है। ऐसे शार्ताबाप का महत्व कथानक को अथवा बढ़ाने की दृष्टि से कुछ ही नहीं होता।

कथो-कथी नव कुछ कहने के प्रयास में पाठक को इतना अधिक लेखक के द्वारा मुन पढ़ता है कि वह अथवा जाता है। अथवाटी में 'अथवा प्रवाह' की सीमा

नाम सेलका में यह बात कभी-कभी बहुत अधिक मात्रा में संवाद के कारण घटित हो जाती है।

### कथोपकथन की वांछित विनोदताएँ

कथाकथन के माय भावपरिक मन्वन्त के प्रतिरिक्त कथाकथन को स्वाभाविक उपयुक्त और नाटकीय भावना चाहिए। कथा के व्यक्तित्व के के अनुभव कथोपकथन अच्छे प्रतीत होते हैं। कथोपकथन में परिस्थिति की अनुकूलता का भावना रखना आवश्यक है। उम यह नुसल्ट रोचक और उमो समय का कहा हुआ सा लगना चाहिये। यह बात तो प्रत्यक्ष है कि ये सब अच्छे कथोपकथन के प्रारम्भिक गुण हैं। इनके माय यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अन्तिम रोचकता का गुण पहल से गुणो का विरोधी-भा है और उम सबसे एक माय प्रस्तुत करना उम सब के बीच में एक मूल संघर्ष की घरेला रखता है और वह उपन्यास के रचना कीरत का सब में घटित कार्य है।

आदर्श कथोपकथन की परिभाषा करने हुए फ्रांज़िस्म में लिखा है—  
‘एमी रचना जो मनुष्यों की साधारण बातचीत का सा प्रभाव उत्पन्न करे घबका यथार्थत उम संभाषण-भा सब जो वही घाट में हाकर मुना पया हो।’

जीवन का सौंदर्य उमकी स्वाभाविकता है। जहाँ जीवन में इनाकत हुनी है वहाँ गड़ा हुआ-भा कौशलपूर्ण भवे ही सवे पर उसमें सहज-मौन्दर्य के दर्शन नहीं होने। उपन्यास में भी जीवन के इन सहज-मौन्दर्य वर्णन का एवमात्र में ध्यम है पाशों का संभाषण—उनका कथोपकथन। वर्णन में—कथानक के प्रवाह में सखर के व्यक्तित्व की पन्व घा ही जाती है पर जहाँ सेलक पाता को स्वाभाविकता में प्रस्तुत करता है, उनकी बातचीत को इन सहज और सरल भाव में प्रस्तुत करता है जिनसे यह मानुष पकड़ा है कि यहाँ सेलक का कथना नहीं नाम कर रही प्रस्तुत सनन घोट में हाकर उम सबकी बातचात का मुनकर, ज्वा वा लो विरत कर परिस्थिति के काशाकरण को दूमी तीर में प्रहर करक प्रस्तुत किया है। ऐसे सखो में हमें सम्पूर्ण सखों में ( उपन्यास के ) जीवन की मजक मिलती है। जब एम प्रवाह के कथोपकथन पाठक के सामन घाने हैं तो वह सेलक को घाने का सबका मुन जागा है और उमकी घांवा के सामन रखने है केवल पाव और उमकी परिस्थिति।

कृष्ण उपन्यासकारों में हमें संभाव्य का सूत्र मंत्रा हुआ और ऊपर से सूत्र बना-रना तथा कुशलता से पढ़ा हुआ रूप मिलता है। 'धर्म जी में हेनरी जेम्स' और कुमारी 'कॉम्पटन बर्नेट' इसके अन्तर्गत प्रस्तुत करते हैं। हिन्दी में अमृतधाम नगर<sup>३</sup> तथा अज्ञेय<sup>४</sup> और अश्लीलस्वर माध रैपु<sup>५</sup> के उपन्यासों में इस प्रकार के संभाव्य प्रचुर मात्र में मिलते हैं। पर उपन्यासों के पत्र लोप नाटकीय रूप से चतुर है और उससे कहीं गई उच्छ्रिता उसी तरह की उपज होती है। उन्हें पहले ही से धारण करके एकत्रित नहीं किया जाता है। उन्हें उद्धार के रूप में हम सबमें से सरलता से ग्रहण नहीं कर सकते और पूरा का पूरा सम्पूर्ण व्यापक विरामता पूर्ण होता है। यह कैवल्य कृष्ण अक्षयीणी बीजों ( यथा सुभाषित-बाबू रत्न धारि ) की धारणप्रति मात्र नहीं होता। जहाँ सब बीजों स्वभावतः प्रसंगबद्ध होती हैं वहाँ पर बुद्धिमान तो उचित मध्यम समझ जाते हैं। किन्तु स्वाभाविक इति एवं कृष्ण मातृकता के प्रभाव से पाठक इसके मौल्य की धारण तक पहुँच नहीं पाता है।

वास्तविकता और नाटकीयता का समन्वय कथोपकथन को कलात्मक रूप विधात के साथ ही अने सरस और स्वाभाविक बनाता है। प्रेमचन्द ने कथोपकथन कथा की इस सम्मिश्रित प्रणाली का उल्लेख कथोपकथनों की सृष्टि की है। बाबू सुभाषण्य भी प्रेमचन्द की भाषा को पर कहीं-कहीं उसकी प्रति ही कथोपकथन का रूप बन गया है। उनकी धारणा है कि वास्तव में भाषा का बहसना एक निर्दिष्ट सीमा के भीतर होता है। एक ही भाषा के भीतर बीसने बालों के शैक्षिक विकास के अनुसूच भी कई परिणाम हो सकती हैं। वे मुन्शी प्रेमचन्द को पुनिस के पार्श्वों की भाषा को भी हिन्दी का ही एक रूप समझते हैं। कृष्ण स्वलों में यह धारण्य बुरह हो गई है। इसके विपरीत यह प्रसाद जी के पापा की भाषा में एक रस पाते हैं क्योंकि उनके 'बंगाल' के सभी पात्र लक्ष्मण यमित भाषा बोलते हैं। सुभाषण्य इस भाषा को पार्श्वों की भाषा नहीं बल्कि स्वयं प्रसादजी की भाषा मानते हैं। यह इस बात पर

1 Henry James Roderic Hudson (1875) *Portrait of a Lady*

2 Compton Burnet

३ अमृतधाम नगर 'दूध और लसूट (१९२६)

४ अज्ञेय 'नवी के द्वीप

५ अश्लीलस्वर माध रैपु 'मला कांचन

बल देते हैं कि केवल कबोपकथन की भाषा ही पात्रानुक्रम नहीं होनी चाहिए बल्कि उसका विषय भी पात्रों के सामाजिक घरातन से अनुक्रम होना आवश्यक है।<sup>१</sup>

पात्रानुक्रम भाषा की समस्या ऐतिहासिक और सांख्यिक उपन्यासों के विषय में विशेष रूप से लागू होती है। शैलेखी में सर वास्टरस्कॉफ़ तर्क हिन्दी में सुन्दावन नाम बर्मा में ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में पात्रों की भाषा को समय तथा वर्ग विशेष की भाषा के अनुक्रम रखा है। सांख्यिक उपन्यासों में शैलेखी में हार्डी के उपन्यासों के पात्रों की भाषा तथा हिन्दी में भागानुक्रम के बसन्तनाम तथा फ़ुलीवरनामरेणु के संसा साधन प्रभृति उपन्यासों के पात्रों की भाषा में स्थानीय बोली के प्रचुर व्यवहार के कारण उन उपन्यासों में स्थानीय रंग आगया है जो उनके प्रभाव को बढ़ाता है।

हमें संभाषण को बूझ सँवार कर रखने के तथ्य से अटक कर हम निरिच्छत तथ्य से दूर न हो जायें। चाहिए कि भाषण में चुनाव का होना व्यवस्था का एवं उसका समीपत्व होना आवश्यक है। इस बात का ध्यान विशेष रूप से रखना है कि केवल भिन्न उद्धारण चिह्न लगा कर एक पात्र की बात को दूसरे पात्र की बात न बनाया जा सके। उपन्यास के उत्तम पात्रों को अपने अपने स्थान पर अपनी-अपनी बोली में बोलना होता है। यह तथ्य जैन साहित्य विकेन्द्र प्रुष्ट धरण, प्रेमचन्द्र फ़ुलीवरनाम रेणु समुत्तमान भागर प्रभृति उपन्यासकारों के चरित्रों के व्यक्तित्व सूचक भाषणों के संबंध में पूर्णतः सत्य है।

कौशल की दृष्टि से संवादों के विकास की महत्वपूर्ण उपसंग्रह परिस्थिति अथवा घटनाविषय में कही गई बातों अथवा कार्यों द्वारा बका के चरित्र का सूत्रम एवं प्रमाणिक चित्रण है। इन संवादों की भाषा अथवा सांख्यिक वाचिक की अपेक्षा उच्चरी है। व्यंजनादि के साथ अक्षरोंकी दृष्टि का समन्वय हुए बिना ऐसे संवादों की सफलता प्रायः संदिग्ध ही रहती है। साधारण अथवा उत्तम के शब्दों में व्याकरण तथा सामान्य शिष्टाचार की सांख्यिक उपन्यास स्वाभाविकता की दृष्टि से हमें अधिक ध्यानपूर्वक बना देनी है। जैसे इन प्रकार के चरित्रों की भाषा पात्रानुक्रम देना-नाम की मर्यादाओं में बंधी हुई रहती है कभी-कभी आशय में स्थानीय अथवा प्रायः विशेष की बोली ( पात्र के

व्यक्तित्व में दुर्बली होने के कारण) भी स्वान वा सेतो हैं। जवाहरलाल प्रेमचन्द 'वनेन्द्र' 'कलीशबरनाथ रेणु' तथा 'कृन्दावतलाल वर्मा' के उपन्यास प्रस्तुत किए जा सकते हैं। 'कलीशबरनाथ रेणु' की 'परती-परिकथा' के पात्र का राम जीबरी अपने मानविक धारण में धाकर बाल उठते हैं— तुमी पारबे ! फिर तुमी पारबे ! तुमी जे जिबेई एक बिरम बगस्पति ।<sup>१</sup>

बच्च की अपनी बात का प्रथम व होते हुए भी संश्लिष्ट कथन की प्रकृति एवं स्वराचात पर व्यापक प्रकाश डालने वाले रचनाकार के सूचनात्मक एवं व्याख्यात्मक क्रियाविधेयण भी संवादों के अविभाज्य अंग से ही हैं। इनमें न केवल संवादों के सौन्दर्य को निखार निखारा है प्रकृत बच्च के बाह्य एवं अन्तरिक व्यक्तित्व का हीन आधामों नामा चित्र भी उभर आता है। इतने नाटक कार के संवाद कोलम की तुलना में उपन्यासकार का अतिरिक्त मिश्रण वैयक्त ही कहना चाहिए। जिसके कालांतर में या 'धीर' 'मास्तबरी' जैसे कुराल नाम्य प्रसिद्धियों का अ्यान धारणित किया और उन्होंने अपने नाटकों में इसका समुचित उपयोग भी किया है। हिन्दी के उपन्यासों में इसके सर्वोत्तम जवाहरलाल प्रेमचन्द<sup>२</sup> और कृन्दावतलाल वर्मा<sup>३</sup> के उपन्यासों में पाए जाते हैं।

पात्र की आर्थिक विवेकताओं को स्पष्ट रूप से उजाड़ने एवं स्पष्ट करने के लिए लेखक कभी कभी उसके मन के माध्यम से अतीत स्मरण कथा स्वयत-कथन द्वारा अतिशयन को यहूदाई बातावरण को धरिणता तथा कथानक को बच देता है। उत्तमकोटि के अतीत स्मरण एवं स्वयं कथन संवाद से अधिक उपन्यास रचना कौशल में सहायक सिद्ध होते हैं। अतीत स्मरण के अन्तर्गत जवाहरलाल प्रेमचन्द<sup>४</sup> और अज्ञेय<sup>५</sup> के उपन्यासों में प्राप्त होते हैं। प्रेमचन्द के 'रत्नसुमि' नामक उपन्यास में सोनिया के स्वयत-कथन और 'गोदान' में रामलाल के आत्मसंभाषण भी कथन के अन्तर्गत जवाहरलाल प्रस्तुत करते हैं।

१ कलीशबरनाथ रेणु परती-परिकथा पृष्ठ ३७७ प्रथम सं०

२ आर्जो वर्मा रा-सिद्ध जोन धाव धार्क

३ जाल मास्तबरी-इटाइक

४ प्रेमचन्द गोदान पृष्ठ १४८ १४९

५ कृन्दावतलाल वर्मा सुननपती पृष्ठ ६४-६५

६ अज्ञेय सुनीना 'सुनदा अतीत अयवर्धन

७ अज्ञेय अज्ञेय एक जीवनी 'जरी के होव'

मनोविस्फेपण प्रधान उपन्यासों में व्यक्ति के उद्धार संघर्षों की ध्वज-कीड़ा यथाकम्य धंकेन द्वारा मन के महासागर तुल्य घंटराल के अन्वेषण एवं तडिपयक मानसिक आसेजन की ही प्रमुखता रहती है। इन उपन्यासों के सवालों में दैवशाक्तानुभावित मुदबि एवं शिष्टाचार की दृष्टि से भाषा परिष्कार की साग्रह उपेक्षा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसका नाप ही सबाद में भाग लने वाले पाठकों के अपने अपने अन्तर्म में भी विचार-माहुर्य इन्द्रिया की नियन्त्रित न की जा सकने वाली गतिविधि और अचक्षमता की घदमतीय उच्छ्वं, समताओं प्रवृत्तिव्य विचार्य अथवा सामनाओं के कारण एक ही साथ एक ही समय में उठने वाली भाव-तरंगों के आसेजन के प्रमलत्वकम एक नए प्रकार के एक पानीय अंत कथित स्वयंचालित निसंस और अनियमित संवादा की सृष्टि होती है। विद्व-माहित्य में इस प्रकार के सबाद के टक्छासी नवा हरण से जम्स ज्वाएस के सुमिसिस में ही उपमख है। हिन्दी साहित्य में ऐसा साहस पूर्ण प्रयास कलीरकरनाथ रेणु के उपन्यास 'सैना अंत' और 'पत्नी परिकषा' में ही मिलता है।

### बातावरण

सैदिक और बातावरण—विस्फेपणारमक धामाचना के द्वारा उपन्यास के तीन संघटनात्मक अवयव निरिचय किए गए हैं—प्याट अग्नि चित्रण और सैदिक। अन्तिम अवयव प्रतीकारमक होने के कारण आरकस के विद्वान्त प्रश्नों में 'बातावरण' की अज्ञा पायया है। ये तीना ही अवयव अयोन्यामित हैं। अरिच यनि घटनाओं के निरिचय करन वाले गतिमान के साधन के रूप में नहीं तो और क्या हा सकता है? अतनाएँ यदि अरिच की त्रियाद्या क सब कामों में अन्तव्य के अहित रूप नहीं है तो फिर उनको क्या समझा जाय ? इस प्रमग में एक प्रश्न यह उठता है कि 'सैदिक' यदि इन दोनों अवयवों का प्रमावात्मक अंश में एक साथ एक रम और एक रूप में प्रकट करने वाली पृष्ठभूमि अथवा बातावरण नहीं है तो फिर उनका दूसरा क्या अर्थ हुआ ?

'सैदिक' पर ध्यान देना अर्थात् वा साहित्यिक तत्व होता है। यह अथायक विवरण में भिन्न होता है। इसके मध्य में पहला विचार तो यही होता है कि कदाचित् यह अथा-साहित्य को नाटक में भिन्न करता है। पर दूसरी बार ध्यान देन में यह अथा-साहित्य तत्व भिन्न होता है। यदि हम मानव अथवा उपन्यास क अहण अर्थों पर ध्यान दें ता ऐसा करना हमें रोमांटिक



(वैत प्राचीन काल में था) मक्का मार्चवासी (वैसा १६ वीं शताब्दी के कथा साहित्य में हुआ) बना देगा। ऐसा करने से हम सर्वकामीय एवं सार्वभौम नहीं बन सकते।

### सेटिंग बातावरण और वर्जन

वीतिकाव्य में साहित्य की वर्णनात्मक विधा रानी के वह पर प्रविष्टि की गई थी पर मद्यात्मक कथा-साहित्य में वह बहुधा विमातु-उपेक्षिता कथा पुत्री की प्रति रहती आई है। वह एक ऐसी महात्माहीन देववामी के रूप में रखी गई है जिसके नियम में कोई कुछ सोचता भी नहीं है। बिरसे ही मकसदों पर सकल शब्द बिना के रूप में मक्का सुनि विस्तार के बिना के रूप में इसका उपभोग किया गया है। प्रविष्टि स्वसो पर तो बस किसी न किसी प्रकार विवरणात्मक आकाम के कथा-मूल को सामे रहने का ही कार्य इसको सँपाया गया था। इस रूप में भी वह कार्य अपने में बहुत महत्वपूर्ण रहा है, क्योंकि वर्णन के रूप में सेटिंग ने कथागी से देव-काल तथा सामाजिक बातावरण को स्थिर रखा है, पर अपने इस निष्पत्ति से सम्बन्धित कार्य के प्रतिरिक्त पात्र का परिचित विधा है मक्का तब ( मध्ये-पुरे दोनों ही प्रकारों के लिए ) लक्षित है। मूल में कथावस्तु के प्रवाह-मार्ग से वही एक और बाधा हुई है वही कुछ बाधा उत्पन्न भी थी है। इस प्रकार वर्णन कथा को प्रसंग स्वका देने में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य करता है। यह प्रविष्टि का भाव को आमकर्म का बाह्य देने का-जा बातावरण उपस्थित कर देता है जिससे समय विस्तार एवं स्थल वस्तु-आधार-विस्तार के दो सामाजिक में निरपेक्ष बातावरण का सृष्टि कर देता है। उपरान्त में 'सेटिंग' से प्रविष्टि कथा की घटनाओं के आधारक देव-काल है। इन पारिधायिक शब्द के अन्तर्गत कथा का 'बातावरण समुच्चय' ( जिन्हु ) सम्मिलित होता है—इस रीति रसम जीवन-मरण के अंग और उसका प्राकृतिक पुच्छमि मक्का मन्व परिस्मिति। इनको हम वा प्रकार में बाँट सकते हैं— सामाजिक सेटिंग और वराच सर्ववी सेटिंग।

### बातावरण अध्ययन के मूल्य में

जिन में उपरान्त-साहित्य की प्रगति होती गई वर्णन करने के अंग भी बनते गए। विवचनता प्रारम्भिक करने का भाव भव का भाव प्रादि का लक्ष्य वर्णन करने के लिए रोमैटिक रानी के लक्षकों से बातावरण या सेटिंग की बहुत बड़ा बड़ा दिया था। कथा अन्त के परिचित अतीत की

प्रत्यक्ष करने के लिए पृष्ठभूमि का महत्व बढ़ गया। प्राचीनकाल की साधारणीकरण की भावना में प्राकृतिक व्यक्तिगत भावना के परिवर्तन में स्वामी भूमि विस्तार सामाजिक बाधाकरण और मनुष्या बोना का ही महत्व पड़ा। उन्नीसवा शताब्दी के विज्ञान-प्रधान उत्तरार्द्ध में अपने-अपने शारीरिक विचारों की पूर्ति करने के लिए मयार्यवादिया (गियमिस्ट्रन) और प्रकृतिवादियों दोनों में ही बाधाकरण से सावधानता में अधिक मान उत्पन्न है। अभी हाल में ही सामाजिक परिवर्तनों और फायदियन मनोविज्ञान (बास-मनोविज्ञान) में रचि लेने वाले लेखकों ने बाधाकरण का अध्ययन अध्ययन के साथ करके प्रस्तुत किया है। इस प्रकार वर्तन धार के उन्म्याम में उपलब्ध एक शायी के रूप में नहीं है बल्कि उसकी स्थिति पाने करने वाली धार की तरह है, जिसे काट और खरिब होना ही धरना बरन स्वल्प और अस्तिरक का साधार श्राप करने हैं।

### स्वामीय रंग

सावकत क विचारको के एक धर्म का मत है कि उन्म्याम म स्वामीय एक अधिक और नटीक होना चाहिए। जब किसी उन्म्याम और बहामी में किसी स्वाम-विरोध के संबंध में विस्तृत विवरण दिया जाता है और वहाँ के सामाजिक भौतिक तथा सांसारिक विषयों का सूक्ष्म निरक्षण किया जाता है तब वह स्वामीय रूप लेना शुरू करता है। 'मनीसा-शास्त्र के लेखक श्री मोताराम बनुरेदी जी हमें प्रेरणादायक (रीजननिज्म) में विभिन्न समझते हैं। उनका कथन है कि इनकी विवेचना यह होती है कि इसमें नए या अतिरिक्त रूप छोड़े जाने हैं या किसी परिवर्तनोत्पन्न या ह्यामाभ्युत्पन्न स्थानक का विवरण पुरछित किया है कि—राष्ट्रम माहृस्याम की 'बाल्या में रंगा' प्रपदा रू की 'बहमी रंगा' में। प्रेरणादायी ता प्रत्यक्ष प्रेरणा न ऐसी विभिन्न स्थितियों दक्षता है या वहाँ के निवासियों के जीवन पर बहुत प्रभाव डालती है और तदनुसार मरुति तथा अतिरिक्त के विभिन्न नाँव उत्पन्न करती है किन्तु स्वामीय रंगकार किसी प्राय-तय के प्रति पर्यटन का हृष्टिकोत्पन्न उत्पन्न करता है। धन स्वामीय रंग का धर्म हुआ— किसी कथा के मूलतः के रूप में नहीं बल्कि मन्त्राकार के रूप में इस कथा के पितृ रूप, भाषा रंग साधार-विचार और व्यवहार नटीक विस्तृत वर्तन देना।

### वेगदास

बधावस्तु का साधार होती है किसी विनिष्ट देना की बटनान।

के बटनाएँ विकलांग बाधित होती हैं। यद्यपि ये बटनाएँ कार्यात्मिक होती हैं पर कल्पना में भी यह इसी संसार में चटित हुई-सी मानी जाती हैं। वेद से अभिप्राय पृथ्वी के उस मूषाम से होता है जो उपन्यास की बटनाया का कार्यात्मिक रंगस्वप्न होता है। भारत ऐसे महाद्वीप में मिल मिल लोगों के आचार-विचार ज्ञान-दान रहल-सहल, रीति-रस्म आदि में अभिजात में विभिन्नता है। समय परिवर्तन के साथ क्रम से सब बातें पहले से बहुत बदल गई हैं। अतः जिस समय की तथा जिस स्थान की बटनायो का वर्णन किया जाय वहाँ की परिस्थिति रहल-सहल सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण-परिचय प्राप्त करके ही उन मिथ्या ज्ञान चाहिए। जिससे कामगत या रोचक दोषों का समावेश न हो पावे। हम सबका वर्णन इस प्रकार होना चाहिए कि वह अपनी विभिन्नता के कारण आश्चर्यजनक नसे ही सबे पर अस्वाभाविक न हो।

### वर्णन शैली का समाहार

उपन्यास में वर्णन प्रकट में कथानक का घेन प्रतीत होते हुए भी लेखक के हृदय उद्देश्य को प्रकट करने में कार्यात्मक प्रतीक का रूप ले लेता है। राजनीतिक कारणों से शिष्टता से तथा लेखन-शौचन के रूप में भी प्रायः नकाबपोस के चेहरे की तरह व्यवसाय सुन्दरी के बू-बुन की भाँति व्यवसाय कार्पक आवरण के पीछे छिपे हुए कसा चिम के समान को प्रपण्यीय हैं उसके प्रभाव का तीव्रतर बनाता है। प्रतीक हमारी लेखन कसा की आश्चर्यकता एवं विज्ञान ज्ञान ही के रूप में प्रस्तुत होता है। अर्थात् 'मिथ्या' के गसीकर श्रृंखला कल्पित घग इसके बड़े अन्धे उदाहरण है। हृन्के उपन्यासों में 'माया' पुगी नामक पूरा का पूरा उपन्यास इसका नमूना है। प्रतीक किसी पराधीन जाति के महित्व में मानसिक उकताहट के प्रकट रूप में सम्पन्न करने का सर्वोत्तम साधन है।

### उद्देश्य

जीवन को जब कसा का आधार मानते हैं तब उसका अभिप्राय जीवन की निष्प्राण अनुकृति महा होती। सलित कलाओं में उपन्यास जीवन के सबसे निकट है। अतः हमसे जीवन का आधार भी अपने वास्तविक रूप में सबसे अधिक है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि उपन्यासकार जीवन में लेकर मनुष्य के चित्र उपस्थित करता है। उसका अभिप्राय यही होता है कि उपन्यासकार का उद्देश्य जिसरी हुई मानवीय विरोधताओं में से प्रत्येक के अनुकूल

समय को धारस्वकानुसार कुछ को मबेट कर ऐमे करिओ की सुधि करना और ठारभंबकी आबन व्यापारों की नियोजना करना जो एक या अनेक प्रतिनिधि करिओ की सुधि करना होला है । इस प्रकार के करिओ में उनके किमी छण विनय का बिब नही होला प्रस्तुत सब समयों में प्रबहुमान करिओ की समग्रता उपन्यास द्वारा सुचिन करिओ की बिदेयना होती है । इस प्रकार के करिओ के माध्यम से प्रत्येक अन्याय का उद्दय सामाजिक जीवन के वृहत् क्षेत्र को अस्थित करना होला है ।

उपन्यासकार मजब कसाकार की भांति केवल समाज के वर्णों के रूप में ही अपनी कलाकृति को प्रस्तुत नहीं करता बल् बहु जीवन की उनकी पूर्णता और व्यापकता में देखने का प्रयत्न करता है और ठिउर जब बहु अपनी रचना के प्रस्तुत में रत होला है तो जीवन को व्याख्या प्रस्तुत करता हुआ चलता है । मध्य मानस ने तो काव्य के विपुल नावात्मक स्वल्प कविता की परिभाषा भी 'जीवन की व्याख्या' के रूप में प्रस्तुत की है । उपन्यास तो कल्पनात्मक एवं कलात्मक माहिर्य में जीवन के स्फुलतम रूप को प्रस्तुत करता है । अत उपन्यास सामाजिक रूप से जीवन की व्याख्या उपस्थित करते हुए चलना उपन्यासकार का उद्दय होला है ।

हृदयन' ने भी जीवन का धारोचना व्याख्या अथवा समन का उपन्यास के एक ठान अपनी उपकरणों के रूप में लिया है । हृदयन जीवन को उपन्यास के विषय के रूप में मता है । उपन्यासकार के लिए यह अंमंभव है कि बहु अल्प अथवा अकेल रूप में अपने ऊपर पड़ी हुई जीवन की धार का धाराम भी न दे । यह कता जा सकता है कि फुरसत का समय वाचन के लिए बिब गए, लगातारी उपन्यासों को लेकर जीवन रचन की बात करना बिम्बुल बिचार है, क्योंकि उनमें उद्दय की पहचान तो हाथी हा नहीं परन्तु यह ऐमा केवल इमनिय नहीं है कि उनमें बिमी प्रकार का कोई दर्शन नहा है बल् केवल इमनिय कि यह रचना ठारा और अमोर नही होला कि बिचार गीय बन सके । महान् उपन्यासकार जीवन के बिम्बुल और पर्यवेक्षक दोनों ही रहे हैं और उनका करिओ विषयक ज्ञान उद्दय एक क्षमता में बटने बापी उनकी अमनृ पि बिचरबायी तर्कों एवं धनुमत्र की समस्यारै और उनकी परिपक्व बुद्धि से सब बिचरर उनके समार विषयक दृष्टिकोण को एक ऐमा नीतिक महत्व प्रदान करते हैं जिमकी कोई बिचारवान् वाचक उपेक्षा नही कर सकता ।

इसके अर्थ यह नहीं है कि हम उपन्यासकार को आचार विषयक सिद्धान्तों की स्थापना अथवा जीवन संबंधी कुछ निश्चित विचारों की मूर्त प्रतिबिम्बिति के लिए कहा रहने वाला समझ लें। यह तन्त्रे सुजन सक्ति संपन्न कलाकार के दृष्टिकोण एवं चिन्तन विधान की सर्वथा आन्तर्पूर्ण धारणा है। उपन्यासकार को कुछ सोचना है कथावस्तु की व्यवस्था एवं पात्र चित्रण न बही उसका मार्ग प्रदर्शन करता है। परन्तु उसकी प्रथम चिन्ता का विषय अमूर्त अस्तन न होकर जीवन के ठोस तत्व होने हैं और वह इन तन्त्रों को नैतिक अर्थ देने के किसी प्रयास अथवा इच्छा के बिना ही व्यवस्थित कर सकता है।

संसार के जीवन का केन्द्र मानव है। समस्त संसार में मानव का कार्य विस्तार विधाता की सृष्टि-विस्तार के साथ होड़ करने का सामन प्रयास करता रहा है। इसी मतत प्रयास में मानव का व्यक्तित्व निरंतरता चलता है। सभी काल्याणों में इसी मानव चेतना की प्रतिबिम्बिति के प्रकारों के दर्शन होते हैं। कथाविद् यह कहना अनुचित न होना कि साहित्य की अम्य विधाओं की अनेका उपन्यास में मानव-जीवन का चित्र उपस्थित करने का अधिक प्रयत्न रहता है। उपन्यास ने अपने व्यापक संसार में सभी पुराने साहित्य रूपों की चिन्त्यत विषयताओं को ग्रहण किया था। इस अनेकाङ्ग मनीनतम साहित्य रूप का एक मात्र उद्देश्य है कि वह प्रथम बार मनुष्य की अपने समस्त भावामों और समस्त परिवर्तन के साथ साहित्यिक बुद्धि पर अन्ताराला कर उसके समस्त अस्तन हुए अस्तन—सैमे हुए सीमात और गति तथा प्रकार के प्रतिरिक्त गहराई के अन्वय का चित्रण करके मानव-जीवन का सर्वांग सम्पूर्ण प्रतिपादन करने में कविता और नाटक आदि सभी पुराने साहित्य रूपों में से सर्वाधिक सफलता प्राप्त करे।

जीवन में मनोरंजन है उससे मनोरंजन होता भी है किन्तु जीवन का आग्रह मनोरंजकता में ही नहीं होता उसी प्रकार उपन्यासों द्वारा मनोरंजन होता है। वे मनोरंजक होते भी हैं, किन्तु न तो मनोरंजकता ही उसकी परमोपलब्धि उपन्यासकार का उद्देश्य उपन्यासों में मानव जीवन का अपनी विविधता विषयता और अस्तनों के साथ प्रतिबिम्बित करणा होता है। मनोरंजकता का तत्व वह दृष्टि-विस्तार और आत्मिक संस्पर्श है। त्रिधने प्रतिबिम्बिति आकृत शक्त और ओचित ही जाती है। उपन्यासकार अथ उद्देश्य जीवन के तत्वों का विप्लेपलात्मक आत्मिक संसमय उपस्थित करता है और उसकी दृष्टि इन स्थान में आध्यात्मिक की है। उसके उद्देश्य का एक

पंथा मंचर्ष प्रबणु तत्त्वों का सरलप समग्रता की इकाई के रूप में प्रकट करना होता है ।

उपन्यास के उद्देश्य का एक बड़ा महत्वपूर्ण अंग होता है—अपने पाठकों का जीवन की कला सिखाना । एक अच्छा उपन्यास अपने पाठक के लिए विद्या निर्देशक का काम बड़ी सरलता के साथ कर सकता है । जीवन के सभी महत्वपूर्ण पक्षा पर उपन्यासकार प्रकाश डालता है । राबर्ट गोरहम डेबिस का कथन है कि अग्रणी के प्रारम्भिक उपन्यासकारों ने अपने पाठकों को उबारता महानुभूति बिना तब नैतिक एक सौंदर्यात्मक चेतना भी धिया थी । उन्होंने संस्थापना को सुभाग्य तथा सामाजिक स्थिति को उन्नत करने की इच्छा भी उत्पन्न की । हिन्दी का प्रादि उपन्यास—परीतापुत्र भी इसका अच्छा उदाहरण है ।

उपन्यास का एक व्यावहारिक उद्देश्य होता है—जनतन्त्रको प्रमत्त बना । जनतन्त्र तथा उपन्यास का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । जनतन्त्र का प्रायोजन इसलिए किया जाता है कि व्यक्ति अपने स्वातन्त्र्य का उपयोग कर सकें तथा विभिन्न मुस्या को साम्यता देने वाले मनुष्य अपनी-अपनी दिशा में धामे बढ़ सकें और इन पर भी समाज की उन्नति में अधिक अधिक महत्त्व दे सकें । उपन्यास हमें बहुमुखी दृष्टि अधिकाधिक महानुभूति सहिष्णुता तथा ध्यवितमत्त शक्ति को भावना देकर इस कार्य में हमारा हाथ बटाता है । इस प्रकार जनतन्त्र और उपन्यास सर्वत्र एक दूसरे का प्रथम देने हैं ।<sup>१</sup>

सकार्यवादी न मानव-मत्स्य के कुछ ऐसे पक्षों को प्रकट उपपाटित किया है जो उनकी धारणासमिधि का और भी सम्पूर्ण बना सकते थे किन्तु सकार्यवादी जगत में अधिकांश ने यह भ्रान्ति किया कि मनुष्य इन सभी चिन्तन-मन्त्रदाया और मत्तवादा में बड़ा है उनकी जीवन प्रक्रिया इतनी गहन, बहुमुखी और बहुधर्मात्मिका है कि वह किसी भी मत्तवादा द्वारा पुरुर्लभ्य ग बांधी नहीं जा सकती । इसलिए जित उपन्यासकार का उद्देश्य मानव-मत्स्य को उनकी मम पक्षा में प्रकट करना है उसे कलाकार की दृष्टि अपनानी चाहिये मनो-वैज्ञानिक या राजनैतिक कनिस्मार को दृष्टि नहीं । उन कलाकारों में एक ऐसी व्यापक महानुभूति होती है जो किसी भी पक्ष को अपने रंजीत करने में नहीं देगना

१ आलोचना (उपन्यास विद्येयक) 'उपन्यास के शक्ति—शक्तिरूप चतुर्विध प्रकट (१९२४) पृ० २०

बाहरी बरग्न धरने को उठी की परिस्थितियों में रख कर, उठी की धनुमुक्तियाँ करके उठी के आरम्भोपण के दर्द में डूब कर, उसकी आत्मोपलब्धि के संतोष में लुप्त हो कर उसकी मानवीयता को उद्घाटित करती है।<sup>१</sup> वह कला-दृष्टि मनुष्य की चेतना के विविध आयामों में उसकी सत्ता के विविध स्तरों में घीर उसकी अदम्य अपराधेयता में पूर्ण विश्वास रखती है।

समान को श्रेय को घीर से जाने में प्रायः वा अनेक प्रकार को कठिनाइयाँ हैं, भौतिकवाद की एकाग्र तथा एकान्त तथा अन्तर्गतता उनमें से एक है। ऐसे कठोरों से बाहर निकलने के लिए प्रायः हमें जिन साधनों की आवश्यकता है उनमें साहित्य का प्रतिनिधित्व केवल उपन्यास करता है घीर इसके प्रतिरिक्त उपन्यास में वह क्षमता भी है जिससे वह सम-सामयिक तथा सामाजिक दार्शनिक बहिरोप को दूर कर सकता है। अन्तर्गत तथा विभ्रमित राष्ट्र का उपचार उपन्यास बड़े हृदय से अन्तर्गत में ही कर जाता है। इसके लिए कभी कभी वह 'चाक ट्रीटमेंट' का सहारा भी लेता है।<sup>२</sup> परन्तु किसी भी बुद्धि पर वह कभी अन्तर्गत से आक्रमण कभी नहीं करता।<sup>३</sup> इसीलिए उपन्यास द्वारा किया जाने वाला उपचार अपनी प्रकृति में पूर्णतः मनोवैज्ञानिक होता है। राजनीतिक दृष्टिकोण से व्यक्ति का आचार करते हुए अन्तर्गत की स्थापना करना उपन्यास का अन्तर्निहित उद्देश्य होता है।

### घीरी

उपन्यास में घीरी का महत्त्व—साहित्यिक कलाकृति के निर्माण में जिस सामग्री का प्रयोग किया गया है उसकी संज्ञा है प्रायः। किन्तु प्रायः ही मूल सामग्री नहीं है। मूल-सामग्री तो प्रायः में प्राप्त ध्वनि है। ध्वनि को व्यक्त करने के लिए शब्दों का चयन किया जाता है, परों घीर शब्दों की योजना की जाती है जिससे ईश्वर धर्म की प्राप्ति हो सके।<sup>४</sup>

प्रायः यह समझा जाता है कि घीरी या ध्वनिव्यक्ति की विधि का अध्ययन

१ अनेक कुमार साहित्य का श्रेय घीर श्रेय बुद्ध १२०

२ उदाहरण— दाम कला की बुद्धिया (स्टी)

३ c+उप के उपन्यासों का लुटे अन्तर्गत का आक्रमण तथा एनेक्सेप्टर मनुष्य के 'मामा वि पिट' का आदर्शमन्त्रण कर्म।

४ Hudson William Henry An Introduction to the Study of Literature बुद्ध ३३।

केवल विवेचन ही किया करते हैं। पर धारणा निर्गुण भ्रममूयक है। मध्य तो यह है कि साहित्य के माध्यम से जीवन का अध्ययन करने के लिए रीती एवं अभिव्यक्ति की विधि का ज्ञान प्राप्त करना अत्यावश्यक होता है। उपन्यास में तो सर्वांगतः जीवन की ही व्याख्या होती है। उसके अध्ययन के द्वारा एक प्रकार से जीवन का ही अध्ययन होता है। अतः, उपन्यासों के लेखकों में रीती के अध्ययन का महत्व अन्य साहित्यिक विधाया की रीती के अध्ययन के महत्व से बड़ी अधिक बढ़ कर है।<sup>१</sup>

### रीति और रीती

कुछ लोग भारतीय साहित्य-शास्त्रियों द्वारा वर्णित रीति को ही रीती मानते हैं किन्तु वास्तव में वे तो साहित्यिक अभिव्यक्ति की कुछ प्रणालियाँ मात्र हैं। रीति और रीती में विद्युत् अंतर तो यही है कि 'रीति तो वाक्य रचना का ढंग है और "रीती है भावार्थिक अभिव्यक्ति की प्रणाली। रीती वास्तव में इस साधन का नाम है जो बाली का अभिव्यक्ति से अभिन्न तथा समर्थ शक्ति का संचार करे किन्तु 'रीति को वाक्य की आत्मा (रीतिराम्भा वाक्यस्य) मानने वाले प्राचार्य कामत ने अपने काव्यात्मिक मूलभूति में "पदा की विद्युत् रचना को रीति' (विद्युत् पद रचना रीति) माना है। अतः सुगुण के साधारण पर की हुई विनोद-वद-रचना-रूप इस रीति को रीती से सर्वथा भिन्न ही मानना चाहिये।

भारतीय दृष्टि से रीती के सम्बन्ध में अत्यन्त विस्तृत विवेचन किया गया है किन्तु पात्र के संसार के समस्त देश एक दूसरे के निकट पाए गए हैं एक-दूसरे की भावना से प्रभावित हो रहे हैं अतः रीती पर विचार करते समय हमें अत्यन्त पर ध्यान देना होगा अतः विवेचन करते ही उसी रीती की समीक्षा करनी चाहिये।

### रीती की आवश्यकता

रीती उपन्यास तथा-साहित्य का मुख्य धर्म है। इसकी अत्यन्त आवश्यकता भी है और अत्यन्त आवश्यकता भी। गद्य (पारम्परिक) सामग्री चाहे कितनी सुस्पष्टान् (महत्वपूर्ण) क्यों न हो किन्तु जब तक उसको धारणा के लिए संभाव्य और और सजा कर न दिया जायगा वह पूर्ण रूप से अज्ञान न होगी।

भाषा सम्बन्धी ज्ञान का महत्व साहित्य के विद्वानों के लिए बहुत अधिक



है। शब्द केवल अपने कोपगत अर्थ को ही लेकर नहीं चलता बल्कि उसके साथ पर्यायवाची एवं विरोधी अर्थों का आलावृत्त भी रहता है। शब्दों का केवल अर्थ ही नहीं होता बल्कि वह शब्दों के अर्थों का आह्वान-सा करते हैं—जिन शब्दों को आह्वान के रूप से अभिव्यक्त किया जाता है वे स्वयं के माध्यम से अथवा तत्काल अर्थ के माध्यम से अथवा वस्तु निकले हुए शब्दों के अर्थ के माध्यम से मूल शब्दों से जुड़ रहते हैं। उनसे उन शब्दों का भाव भी होता है जो विरोधी अर्थ रखने वाले होते हैं अथवा जो शब्द द्वारा प्रकट होने वाले अभिप्राय एवं अर्थ की परिधि से सर्वतोभावेन वृत्त होते हैं।

भाषा के अध्ययन का महत्त्व अनेक शब्दों अथवा वाक्यांशों के अर्थ को धारण करने के प्रयत्न तक ही सीमित नहीं रहता। साहित्य का सम्बन्ध भाषा के सभी पक्षों से है। साहित्यिक प्रयोजन के लिए भाषा का व्यवहारमक अध्ययन अपने अर्थ संबंधी अध्ययन से अलग नहीं किया जा सकता।

शैली परकता का अनुशीलन जब तक सफल ढंग से नहीं हो सकता जब तक भाषाबद्ध होने के साधारण सिद्धान्तों से हमारा पूर्ण परिचय न हो क्योंकि स्पष्ट रूप से इसका केन्द्रीय कार्य यही होता है कि वह समय के मुद्दों एवं सोचोच्चियों की तुलना उस समय के मुद्दों एवं सोचोच्चियों से समानता विद्यमाने के नियम करे। साधारण बोधनाम की भाषा के ज्ञान के बिना इस प्रकार की शैली परकता के कोई अर्थ नहीं होते। कुछ लोगों ने शैली परकता को भाषा सम्बन्धी ज्ञान एवं अध्ययन से सम्बन्ध रखने वाला भाषा-शास्त्र का अद्यतन माना है। पर शैली परकता वह स्वतन्त्र विज्ञान हो या न हो अपनी समस्याओं के लिए हुए अपनी स्वतन्त्र लक्ष्य रखती है। इस प्रकार हमने देखा कि भाषा के मुख्य प्रभाव तथा किसी साहित्यिक कलाकृति की भाषा प्रणाली और दुब के परम्परागत प्रयोग में अन्तर जानने के लिए शैली परकता का सम्यक अध्ययन अत्यावश्यक है।

### उपन्यास में शैली की आवश्यकता

जहाँ तक उपन्यास की कलात्मकता का सम्बन्ध है वह उनका अलंकरण नहीं है, बल्कि आवश्यकता है। उपन्यास में शैली "बाहर का आया" न बन बर स्वयं शरीर की छपटी महत्त्व के गमान होती है जिसमें सब अंग अपने सुदृढ पद के साथ प्रकट होते हैं। उपन्यास का आरम्भ जीवन के आरम्भ की भाँति नहीं से भी माना जा सकता है। जीवन अपने लक्ष्य में पूर्ण है और मनुष्य के अपूर्ण जीवन में भी अलक्ष्य नहीं। उपन्यास के पात्र जीवन के व्यक्तियों की

जाति एक होते हुए भी अपने में अपनी विशिष्टता और अपने साम्राज्य की विशिष्टता तो रखते ही हैं। परस्पर संसर्ग भी कभी-कभी उन विरोधताओं को उभारता है और कभी-कभी उन बातों को जन्म भी देता है। क्याबस्तु तथा बालाचरण एवं प्रसंग जीवन की अनुहार करते ही हैं।

उपन्यास में जात जाते यदि हम ऐसा अनुभव करें जैसा कि स्वप्न ऐतत्कालीन समय अनुभव करते हैं जब कि सब चीजें जैसी सोचो वैसे ही और जैसे न मोचो वैसे ही पत्ति होती जाती है तो उपन्यास में जाने का अनुभव कल्पना की सीध का मुक्त बन कर रह जाता है। पर यदि हम उपन्यास में घागे बड़ने बड़ने ऐसा अनुभव करते हैं जैसा कि एक पर्वतारोही अनुभव करता है जो पहाड़ की ऊँचाई पर और कुछ न सही तो कुछ बाधावरण और उमुक्त आकाश का अभावित हृदय इस प्रकार देख पाता है जैसा कि पहाड़ की ऊँचाई पर ही देखा जा सकता है तब उपन्यास का पाठन एक खाम के परिछाय में कम नहीं होता। ऐसा उपन्यास लेखक की कल्पना की सजगता का पुरस्कार होता है। उपन्यास में शैली का तब कुछ ऐसा ही महत्व रखता है।

### लघु उपन्यास की शैली

शैली एवं बर्णन विषय का सम्बन्ध लघु-उपन्यासों के रचना-नीयम की मरिगत आवाजिष्यक्ति के मूढन रहस्य द्वारा अभिन्न स्पष्ट होता है। जहाँ रचनाकार की अभिव्यक्ति सशित एवं साकेतिक हानो उसकी रचना-शैली समास-प्रधान ही होगी। ऐसा रचनाकार पाठक के हृदय तथा बुद्धि पर विरवास रख कर चलता है। जमकी रचनाओं में एक-एक शब्द तथा वाक्य मार्भक होकर पाता है। इस शैली में रचनाकार का अभिव्यक्ति समय विरोध रूप में महत्वपूर्ण होगा है। जैनेन्द्रकुमार में भी रचनाकार के उक्त गुणों की मरिहिति का कारण 'सुनीता' तथा उनके अन्य उपन्यासों में भी अभिव्यक्ति का संयम है।<sup>१</sup> रचनापित्त के धेन में बबसा लघु उपन्यासों के आचार्य की यह बात बहुत प्रबुद्धि सगने बानी है कि—'छोटा हाने से ही तो रस पना होगा।'<sup>२</sup>

'शैली बोनने एवं सिग्ने की एक निर्य एवं निगडर प्रबुद्ध हान बानों अभिव्यबना बिधि भयवा स्वभाव जन्म धर्ग है।' -----मन हम वह सगने है

१ आलोचना—(उपन्यास धर्क) पृष्ठ १०८।

२ डाक्टर महारेव लहाय 'छोटो पत्राबनी पृष्ठ २२।

कि किन्हीं दो लेखकों की सीमा एक नहीं होती है और चूँकि लिखने या बोलने का जग लेखक के मस्तिष्क के विषयवस्तु एवं रुचि वैचित्र्य का प्रदर्शन करता है—इसलिये सीमा मनुष्य की प्रतिच्छाया है। मनुष्य का मस्तिष्क ही उसका व्यक्तित्व है और जिस प्रकार उसका मस्तिष्क विविध पुराणों एवं विषयताओं से युक्त होता है वैसे ही उसकी भाषा एवं भाषण होते। अपने स्व की प्रत्यक्षी प्रत्युक्ति उसके मस्तिष्क की वह सामग्री है जिससे वह बसा है और भाषण की विधि उसकी स्वानुभूति का ताता बाता।<sup>१</sup>

परन्तु उसका यह दर्श नहीं कि लेखक का व्यक्तित्व हमें अभिभूति किये रहे।

जब हम यह सोचें तो वह हम एक विशिष्ट लेखक का निस्तरेह रूप प्रकट हा पर जब हम पढ़ें तब हम वह भूल जायें कि किसी का लिखा हुआ पढ़ रहे हैं। उपन्यास जब समय को बन्धी बनाता है तब उसमें अतीत के जीवन का बंधा रूप मिलता है और जब उपन्यास में जीवन के प्रवाह का निर्भर साकर समाविष्ट कर दिया जाता है तब उपन्यास में स्वाभाविकता का बाहु धा जाता है। उपन्यास पढ़ते समय यदि हम यह सुझते चलते हैं कि हम उपन्यास पढ़ रहे हैं तो मानों लेखक सफल हुआ और यदि उपन्यास पढ़ते समय लेखक का ही ध्यान रहा तो वह उपन्यास विह्वलापूर्ण बातों से क्लिप्तता ही भय क्यों न हो पर वह सफल उपन्यास न होया क्योंकि व्यक्तित्व का समापहण उपन्यास रचना सीसी की सफलता की पहली शर्त है।

### सीसी की विभिन्नता

हिन्दी में भाषा विषयक कई शैलियाँ प्रचलित हैं। उन्नी के पूर्व उपन्यास के कारण कतिपय हिन्दी उपन्यासकारों (जिनमें प्रेमचन्द, मुश्किल एवं धनुषनाम नागर ऐसे प्रमुख एवं मध्य प्रशिष्ठ लेखकों की गलना है उन) की रचनाओं में स्कोलियों का अधिक प्रयोग है। बुरी और अनासनी लेखक संस्कृत न जानने पर भी सत्यम वाक्यों का प्रयोग करते हैं, परिवर्तन करते हैं और स्कोलियों को प्रत्युत्तर समझ कर अपने से दूर रखते हैं। तीसरे वर्ग के माय मध्यम मार्ग का अनुसरण करने वाले हैं जो विषय के अनुसार अपनी भाषा के प्रयोग में परिवर्तन करते रहते हैं। परन्तु भाषा को इच्छानुसृत (नदी की नाँहि) बनाने के लिये उनके विविध रूप का परिचय करने के साथ साथ उन पर पाण्डित्यपूर्ण



बाहू बैकलीलम्बन काभी और न प्रेक्षकत्व ही परक' तथा 'मञ्जेय' की चीनी को धपती बना सकते हैं। जोर प्रकृत करने के बाद भी चीनी का मन्तर ही बना ही रहता है। यह उक्ति कि— 'चीनी ही मनुष्य है' मानव अस्तित्व का एक छोटा तन्त्र है। कला में प्राबिकिक मनुष्य अस्मि है, चीनी उद्यमे निहित व्यक्तित्व। एक बाह्य है दूसरा अन्तरंग। एक ही कला में कई प्रकार हो सकते हैं और एक प्रकार में कई चीनियाँ हो सकती हैं। चित्रकला के कई प्रकार हैं, तैल-चित्रांकन (याएल पेंटिंग) जल-बहुल चित्रांकन (वाटरकलर पेंटिंग) धुन्क-बहुल चित्रांकन (वेस्टम कलर पेंटिंग) पेसिज-चित्रांकन (क्रैजा पेंटिंग) लकड़-चित्रांकन (निब या स्ट्रैच पेंटिंग) इत्यादि। एक ही प्रकार में प्रत्येक चीनियाँ जैसे काँचका चीनी, पहाड़ी चीनी यज्ञभूत-चीनी मुकुल-चीनी प्रतीकारयक चीनी (हिम्बालिक स्ट्राइल) मसूरु चीनी (रेफ़्ट्रेक्ट) तप्याधारेकबाही (सरिपमिस्टिक) चीनी आदि।

### उपन्यास और शैली

उपन्यास में चीनी के प्रवाह का पूरा यत्न है। उपन्यास में चीनी मठकेलिका करती हुई आगे बढ़ती है। कहीं संश्लेषण होती है कहीं भूषण की ओर से मुसकटी है कहीं मुह उपाह कर सामन आती है और कहीं तो पर्व के पीछे ही जाती जाती है। उपन्यास में चीनी अपने अग्रकट रूप में व्याप्त रहती है। स्वाभाविकता उसका आदर्श होती है और वास्तविकता उसका माध्यम।

उपन्यास की चीनी जीवन की चीनी की भाँति प्राचीन से निम्न और अपने में नहीं होती है। नकल का जीवन नहीं सम्भ्रष्ट होता। उससे प्रकार किसी दूसरे उपन्यास की चीनी की पुनरावृत्ति नाटकीयता का सामान भले ही वे वे अपने में जीवन की सहज नवीनता नहीं ला सकती।

उपन्यास का जीवन चित्रकार का चित्र होता है। स्वाभाविकता के साथ उसका हुआ अन्तर्निहित लोभ्यं टकड़ी विधेयता होती है। जो साधारण रचन म नहीं हैन परता यह चित्र दर्शन में महज से ही हैन पड़ता है पर इसके निम्ने पात्रयक है कि चित्रकार का सभी रंगों का जाल हो और जाल ही साथ रंगों के परिणामों और परिणामों का भी।

### उपन्यास और रस

'मेटिभ' मन्त्रा काभाकरण के सम्पर्क में 'चित्र' तथा 'कलावस्तु' अन्तर्गत रूप म यत्नकर पाठक को एक प्रकार की अनुभूति-अन्वय मनारता में ले जाने हैं। इन ही इन उपन्यास के पाठक की साहित्यिक रसास्वादन की

सूयिका के रूप में ले मरने हैं। इसकी तीव्रता तथा इसका स्थायित्व इस रसा स्वादन को परिपक्वावस्था में ल आता है।

किन्तु उपस्थानकार की रचना का मूल्यांकन करने समय हमें दो बातों का विशेष रूप में ध्यान रखना होगा—प्रथम वैयक्तिक की दक्षिण की सीमा एक विस्तार। प्रायः यह देखा जाता है कि कोई हास्य रस में पूर्ण होता है तो कोई कल्याण रस में घोर कोई रोष में। कुछ ऐसे भी प्रतिभाशाली कलाकार होते हैं जो शस्त्रपीयूष या तुषणी की भाँति काल रस में मरुतता का भाव धरकर रसा में प्रमुक्तता प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरणार्थ—कोई ललक हास्य का ही रूप प्रथमतः 'टक्क कमेडो' के मूहमठम सचिना का रूप द मरना है ता हुआ कई कल्याण-विभिन्न भावुकता में लेकर मुकुमार भावनाया की वाचकतम अभिव्यक्ति कर सकते हैं और कोई ललक 'टुंडरी' पापिक विभीषिकायो म योही अभिव्यक्ति भावम लहर मीनिक एक धार्म्यात्मिक जीवन की धारणा को हिता देन वाली धारणाया तक का स्वरूप उपस्थित कर सकते हैं।

बाबू पुनाबगय न पारचाय्य रेग की कृपिया के 'मोटिक' लम्ब में अपनी धारणाया कला-कृपिया की समपरकता की तुलना करते हुए रस के महत्त्व की स्थापना की है। उपन्यास को वह काव्य-कृति में रखते हैं। 'रसात्मक काव्य काव्य' के सिद्धान्त के अनुसार उपन्यास में भी रस की सिद्धि आवश्यक ही नहीं धरिबायें भी है। वह स्थापना करते हैं कि रस तथा भाव का स्वीकार करने से विचार का विस्तार नहीं होता। उनकी मान्यता है कि इनारे विचार भी हमारे जीवन के प्रति सामात्मक धरवा विरुगात्मक दृष्टिकोण के फलपून है। विचारों का मूल भी भाव रसत है अर्थात् ये प्रायः भाव प्ररित होते हैं। काव्यों में चाहे न महाकाव्यों की भाँति पद्यात्मक हा या उपन्यास की भाँति पद्यात्मक ही विचार विरता के कारण रस न महारे ही आका बनाये जा सकते हैं। उपन्यास में ही महाकाव्य के रस-व्यभिच्य की भाँति गुणार बीर हास्य कल्याणि रस विन-कुल रूप में धरवा ह—विशेष में धनद-धनग देन जा सकते है। जामुनी और विविधरी उपन्यास में धरमुन रस का पूर परिपाक होता है। धाररस का रात्रनिक उपन्यासों में कल्याण न भाव धार रस का समारोह रहता है। सामाजिक उपन्यासों में समाज के बीररूप पाशों धरवा धर्मरूप म्याना न कल्याण तथा उनके मुभाच्छेदन करन के जल्पाह में उनमें बीभत्य धीर धाररस की धरनागला की जाती है। उपन्यास में धरनाभावों का बिना रहनापन न रहता है। पर एक ही भावना का धरिधय धरन भी रसाभिव्यक्ति का लण करता है।

# उपन्यासकार और उपन्यास-रचना

रैल्फ फॉक्स उपन्यास-रचना को एक शार्सनिक कृत्य के रूप में स्वीकार करता है।<sup>1</sup> संसार के महान उपन्यासों का महत्व यही है कि उनके मूल में तो विचारों का आचार है और रचना में उच्चकोटि की कल्पना से काम लिया गया है। उन्हें हम हैबोदरचित जीवन-म्यास्यामा के रूप में भी कह सकते हैं। यह सत्य है कि कोई शार्सनिक सफल उपन्यासकार नहीं हो सका पर उसके साथ ही साथ यह भी सत्य है कि जब तक पहले से ही कोई शार्सनिक इष्टिकोण उपस्थित नहीं किया गया तब तक कोई उपन्यासकार अच्छा उपन्यास नहीं लिख सका। स्वयं मन्वी शताब्दी के इम्पैच में कोई महान् उपन्यास नहीं लिखा गया परन्तु इस शताब्दी के इम्पैच में बड़े-बड़े शार्सनिक हुए जिनके कारण उसके बाद आने वाली शताब्दी में अच्छे-अच्छे उपन्यास लिखे जा सके। इम्पैच के उपन्यासों के इतिहास में शताब्दी शताब्दी अपना सर्वोपरि महत्व रखती है और उसका कारण बहु समय इम्पैच के शार्सनिक इतिहास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण शताब्दी का अनुवर्ती था।

इम्पैच में १८ वीं शताब्दी को हम उपन्यास का स्वर्णयुग कह सकते हैं। अपने ही इस युग का कोई भी उपन्यास लरवेन्डोय और रेबने की इतिवृत्तों की महत्ता को न पहुँच सका हो परन्तु इस युग की धीपम्यासिक इतिवृत्तों में अपूर्व साहसमे जीवन के सत्य को उद्घटित किया। इन उपन्यासों में बायबैरब छिट व्यंग एवं संस्कृत परिहास सभी का समावेश रहा। इन धीपम्यासिक इतिवृत्तों में मानव को यह समझने के लिए विवश किया किमी भी व्यक्ति के धार्मिक एवं बाह्य बाना ही प्रकार के जीवन होते हैं। उसीसकी शताब्दी को ऐसा समय कह सकते हैं जब उपन्यासकार न अपने सं हो अपने को समेटने की चेष्टा की। इसका परिणाम आज वाली शताब्दी में—बीसवीं शताब्दी में नए-नए विचारों की सतसनीवार उद्भावना में प्रकट हुआ। जब उपन्यासों के रचना कौशल के विरसेवल वा युग धारम हुआ। उपन्यासकार अपना ही शैविया आलोचक

बनने लया। कलाकार अपनी कला के प्रशंसकों को विचार रूप में शरीर  
 अपने 'मातृमिक कर्मकाण्ड' के भीतर में जाकर कलाकृति के निर्माण इतिहास  
 में घबराव करने लया। इन नई परम्परा का सूत्रपात होना ही मोरों की रश्मि  
 उपन्यास रचना को पार कर उसके निर्माण काल के इतिहास की विवेचना में  
 भी होना लयी। अब तो उपन्यास क धातुधक का घमियात उपन्यास कृति के  
 शरीर परीक्षण तक ही मोमित न रह कर कृति क अन्तर्गत क संघटन को  
 'एकदर-परीक्षा' करने के लिए भी होना लयी। इन सब कारणों से जो कुछ  
 उपन्यासकार स्वयं अपनी रचना क विषय में कहता है उन लया का महत्व  
 उपन्यास की नई धातुधक में बहुत हागया।

उपन्यासकार की सृष्टि में एक रहस्य निहित रहता है। प्रायः उपन्यासकार  
 को स्वयं अपना ज्ञान नहीं रहता।<sup>१</sup> बिना ज्ञान रहता है उसको भी बहु  
 बतना सक्ता है—इसमें मन्हेह है। तो मा यह तो निश्चित ही है कि उनके  
 सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान नहा हो सकता ता उनका ज्ञान से उनकी रचना-प्रक्रिया  
 पर कुछ न कुछ प्रभाव तो पड़ता हा है। नलकान भी अपनी रचनाधो क संभव  
 में किसी न किसी रूप से बहुत कुछ कहा है। उनका अपने मध्य अपना उद्देश्य  
 जंया धीर प्रेरणाओं के सम्बन्ध न भी बहुत कुछ कहा है। उनके अपना को  
 हम उनकी क रूप में जने ही स्वीकार न करें पर के उन सम्बन्ध में ज्ञान प्रपय  
 एवं नवीनतम धातुधक सूचना अपना प्रारम्भिक परिवर्तन के रूप में तो बने ही  
 रहने हैं।

काव्य के निर्माण के सम्बन्ध में बाग्यर में हम बहुत कुछ जानन है धीर  
 धमी भी जो कुछ हम जानने हैं उनके सम्बन्ध धातुधक में धीर ज्ञान कुछ जाना  
 का सक्ता है। धातुधक धातुधक क रचनात्मक प्रक्रिया का बहुत कम  
 धातुधक कृषा है धीर धातुधक कृषि न अब जही धातुधक लयात्मक नामधो  
 इन प्रकार के धातुधक के लिये है। साहित्य के धातुधक के बिना जिनो  
 या रही है। हिन्दो बिना के ही लयात्मक धातुधक भी रूप पूर हा रहे हैं। बहु  
 बिना अब भी हमारे मन्त्रक की है धीर जा भी हमारे मन्त्रक का मन्त्रक  
 धातुधक साहित्य है बहु केवल लिये देह मो ज्यों न पिला गया है<sup>२</sup> धीर  
 इन बिना देह मो ज्यों में ही कलाकार अपने सम्बन्ध में सबसे धातुधक मन्त्रक  
 रहे हैं।

1 Robert Liddell A Treatise of the Novel P 17 18.

२ 'शारी केनधो की कृषाणी' (सन् १८०० ई०)



फोटोग्राफर की भाँति उपन्यासकार भी जब बीजक के ऊपर से रूप के वर्णन पर ही साधक रहता है तब वह पाठक का समय व्यर्थ ही नष्ट करता है। जिस प्रकार चित्र में जो चित्रित करने योग्य होता है वही होना चाहिए वही प्रकार प्रास्थानात्मक साहित्य में जो कहानी में करने योग्य होता है वही होना है और जो कुछ इसको हम योग्य बना देता है वह है 'पैटर्न' यथा 'इम्प्लेमेंट'। पाठक के कतिपय लेखक नालाचित्र बीचने में अपना पौरव मानते हैं। वे वास्तव में स्वयं कला में पलायन कर जिनकी की गन्धी में जा छिपते हैं। यह कुरूप उनकी कल्पना की उन्नत के लिए घालाहन्ता का काम करता है।

उपन्यासकार को अपने सब में क्या निकाल बाहर करना चाहिए इस विचार के परवान् हमें यह सोचना है कि उपन्यासकार का क्या सम्मिश्रित कर लेना चाहिए। इसके लिए हमें फिर काल कलाकार कलाखर को सेवा होगा। पलायन में पैर की घड़ीम गाथा थी। वह साहित्य संसार का पहला साधक था। एकाल के वातावरण में वह अपनी साधना में रत था। उस हन उपन्यास का संसारक सन्त एक साधार्य कह सकते हैं।

उपन्यास का विषय अपने समवेत रूप में एक साथ घाकर उपस्थित होता है। पाठक और प्राज्ञोक्त दोनों ही मूल से यह सोचते हैं कि लेखक उपन्यास में कुछ मतलब ही इतर-उधार का बोध सकते हैं। बड़े-बड़े उल्लेख उपन्यासों का रहस्य उपन्यास के विषय और लेखक की मनोवृत्ति (इम्प्लेमेंट) की उदाहरणता एक सामञ्जस्य में मिश्रित रहता है।

जब उपन्यासकार अपनी विद्वता की प्राक काल के प्रयोग में अपना पाठ्य प्रवर्तन के जालक से अपना मूल की पहुँच की परिधि की सीमा के बाहर जाने की मूल करता है तो कल्पना की बीचतान में उसकी प्रमाणात्मकता बहुत कम रह जाती है। प्रांच की में जार्ज इलियट का 'रामोना और हिन्नी में साधार्य अनुक्रम के 'बीचानी की मपर बह' एवं बयं रक्षातः इस मूल के नक़्से हैं। कधी-कधी पत्रों उद्देश्य में बहुत में लेखक प्राग्देगियन विषय बन्धु को लेकर लेखन वृत्ति में प्रवृत्त होते हैं—इस लिए नहीं कि ऐसा करना पैरक में होता है पर ऐसा वे इलियट करत हैं क्योंकि अपने में हीन ज्ञान्य जाने लोगों के प्रति उनकी पूर्ण महानुक्ति होती है। हम उन्हें हम मरुति के लिए मानुकाव से सकते हैं पर कुछ बन्धुएँ ऐसी हैं जिन्हें लेखक जनता के हित की दुहाई देकर

थी नहीं का सकता—उसे अपनी जमा-कारिता की ईमानदारी की नहीं छाड़ना है। यदि वह सामाजिक चेतना के कारण बीमा करण है तो उन्हें यह समझना चाहिए कि उनकी सामाजिक चेतना विद्युत्-वाद्युत्पाद्य में है—क्योंकि मेलक के रूप में उनका समाज के प्रति एक मात्र उत्तरदायित्व है कि वह जिनकी सज्जद तरह में निष्ठा करता है निष्ठा। यदि वह पहुँच का सीमा के बाहर जाता है तो वह अपने कर्तव्य पालन में असफल रहता है।

### उपन्यासकार का करणीय

उपन्यासकार का कार्य उपन्यास में प्रयुक्त तथ्यों के प्रमाण उपस्थित करना था नहीं होता—बिश्वास जमा देना का होता है। उसका कार्य तो समाज के बदनामियों के समानान्तर बनता हुआ—ना तत्कालीन पत्रकार समाज एवं बान चीतकी दुनिया में एक सुरुष का हुई प्रकृति वाले पाठक आनाथक अपना निष्ठा के प्रत्य-करण की शान्त करना है।

हम मेलक को जीवन के प्रति दृष्टिकोण के चुनाव करने की जमाह देना की बूझना नहीं कर सकते पर उसे यह सचस्य बना करने है कि वह स्वयं अपनी कृति को जीव करे कि वह मानवता के मिडाला के अनुसार ही जीवन का दृष्टिकोण रखता है या नहीं और उमम मानव प्रती के उपयुक्त नहिण्युना एवं विवेक है या नहीं। उदाहरण के लिए हम सर्वोच्च में फार्मेट एवं बगना के विद्युत्-निष्ठा की कृतिवा को म करने है। यह शान्त मेलक मानवतावादी है। यह बान उनके धाक्यानात्मक साजिग्य तथा उनकी सच्य प्रकार की कृतिवो में भी देगी जा सकती है। यदि हम उनके उपन्यास पर 'सर्वोच्च देखें' लागू करें— उन्हें बड़ा भी खोम कर किमी भी पृष्ठ पर इपर-उपर पड़ें तो हम बिश्वास रूप में एक उत्तम प्रकार का समझ को कार्य करने हुए देखेंगे और एक सुन्दर बिनीत बुद्धिमत्तापूर्ण सच्य एवं पुनीत स्वर को सोसने हुए सुनें। अपने कर्तव्य के प्रति मद्रकना प्रेमसच्य के अन्यायों की मकम बड़ा बिश्वास है। उन्हें अपने स्वान का ज्ञान था। इस प्रसंग में वह उम्पग कदाचिन् प्रामाणिक न हागा कि एक बार जिनो व्यक्ति ने उनमें कौन्सिन के निर्वाचन के भाग लेने के निवेदा प्रारम्भ किया। उस पर उन्होंने उत्तर दिया था— 'यदि मैं मम एवं ए० एक बया ता बिन्दु एक मर एम० एम० ए० पर लागत कीज करेया। मेलक रूप में मैं अपनी कृतिवा द्वारा उनका मार्ग-निर्देशन कर सकता हूँ। एक दूमरी घटना है। किमी ने कहा कि 'भाप भारत की भाँति अतिरिक्त एवं भारी जीवन के अतिरिक्त क्यो नहीं अतिरिक्त करण ? प्रेमसच्य ने उत्तर दिया— 'हिन्दी को बनी

धरत की प्राबल्यकता नहीं इस समय तो उसे एक ऐसा सेबक चाहिए जो जग  
बीजम में क्षति के भाव को बाधित कर सके। स्पष्ट है कि वे एक ईमानदार  
धीर निष्ठावान् लेखक थे। लेखक के रूप में वे धासक के ऊपर शासन कर सकते  
थे। साथ ही साथ उनकी कर्तव्य भावना उन्हें हिन्दी का धरत बनाने से  
रोकती थी। उन्होंने अपने को धरत तक प्रेमचन्द ही बताया रखा।

धरत बकर उपन्यासकार के उत्तरदायित्व को बड़ी ऊँची स्थिति में रखा  
है। वह भी महान् धार्मिक साहित्य में जीवन दर्शन की खोज करता है।  
उमके अनुसार धार्यात्मक साहित्य जीवन का सर्वोत्तम होता है परन्तु जीवन को  
मस्तिष्क स्थिति धामा से प्रदीप्त हुआ प्राबल्यक है—यह महान् उपन्यासकार  
का मस्तिष्क धरतप्रकाश में जयमय होता है। 'धर्म्य धार्मिकता की विशेषता  
बतलाते हुए वह कहता है कि कष्ट सोम प्रकट में उपन्यास न लिखते हुए भी  
धार्मिकता रचना करते हैं। उदाहरणस्वरूप 'बिका के काल्पनिक संस्मरणों  
एवं मननकृत रूप में लिखे हुए ऐतिहासिक प्रश्नों को प्रस्तुत करता है जो वास्त  
विकता में जीवने पर पूर्व रूप में धार्मिकता के पूर्ण से कुछ है।

उपन्यासकार जीवन का कृतिकार होता है। वह जन-धाचरल का समा  
लोचक होता है। उसके धर्म्यता की सीमा मानव के कर्तव्य के विस्तार में  
उम पार भी होती है। उनकी रचना विधाता की दृष्टि में मनुष्य की मूल के  
संशोधन के रूप में होती है।

उपन्यास रचना-कीर्तिस

नैपुण्य साहित्य को उसकी धरतः प्रकृति के अनुसार हम पाँच भागों में  
विभक्त कर सकते हैं—(१) कथात्मक (२) बर्णनात्मक (३) विचारत्मक  
(४) आवात्मक (५) कलात्मक धरतः विधानक।

(१) कथात्मक—कथा की धर्मिकता करने वाक के रूप में—धरत कथा  
उत्तम पुरुष में मध्यमपुरुष में प्रथम धर्म्यपुरुष में। इन तीनों को धरतः  
धर्मिकता कहते हैं। इन्हीं का क्रमः १—संशोधक कृति २—स्वर्णनायी कृति  
तथा ३—बन्धु कृति भी कह सकते हैं।

कथात्मक रूप में कहने वाले इण्डिकोण में सब बातें देनी जाती हैं और उनका बीसा हो बर्तन किया जाता है जैसी कि वह बिलार्ड पड़ती है। स्वयं भावी वृत्ति में स्वयं कथा के बीच में स्थित होकर उद्यम जिमा पात्र अथवा पात्रा को संवापन करत हुए कथा की पूर्ण बाधें कही जाती हैं। तीसरी वस्तुवृत्ति अर्थात् 'एक वा राजा'—बीचल तो बही है जिसमें प्राय कथाएँ प्रस्तुत की जाती हैं अर्थात् जिसमें कथा कहने वाला श्रुता होकर संवाधका के समान समाचार कहता है और उस पर बीच-बीच में अपनी वृत्ति संजय क प्रमुखाद अथवा मानसिक प्रतिक्रिया का घुट देने हुए चलता है। संसार के समस्त प्रबन्धों काव्यों उपन्यासों और कहानियों में समग्र ६६ प्रतिशत रचनाएँ इसी शैली में हैं।

कथा प्रस्तुत करने के ऊपर जो तीन भेद बताए गए हैं, उनके प्रतिरिक्त और भी कौशल प्रयास में लागू पाए हैं, जैसे पत्र संवाद धामकथा बैनविनी (दापरी) बिबरण समाचार ब्याख्यान संस्मरण अथवा कथा व किमी पात्र द्वारा ही कथा-वर्णन करा देना। यदि कोई चाहे तो हामर के प्रसिद्ध-काव्य 'इण्डिया की कथा धनुलियम' के लिए एक अभिनवम पत्र लिख कर उसी में पर्यन्त बाहुल्यपूर्ण शैली में पूर्ण कथा कह सकते हैं। इसी प्रकार कुछ नागा न आत्मार्थ कथन या धम्मकथाय संशोधन मूर्तकरण आवाहन उपालंभ उन्मत्त प्रयास स्वयं में देवी हुई घटना के रूप में भी कथाएँ प्रस्तुत की हैं। ज्ञान-विज्ञान की उन्नति क माय-माय गए-गए रचना कौशलता का आविर्भाव भी होना रहता है। यथा—सायब की काजा क कलम्बरप अंधरी के उपन्यासों में 'स्टोम आर कामममम टैरनोक' (बिना प्रवाह कौशल) का आविर्भाव हुआ।

जिमा वृत्ति का गणुणत नियंत्रण समाप्त कर देना उपाय कठिन नहीं है जिना उपाय प्रारम्भ करना। माश्रिय की चाहे कोई भा विधा क्यों न हा यह निनात आश्चर्यक है कि रचना का प्रथम आरम्भिक स्थल हा पाठक की सम्पूर्ण विज्ञानता का—कुतूहल का घातों और आह्लात्त बन में। इन आश्चर्यता की सृष्टि ही लेखक का कौशल एवं उसकी सफलता का प्रमाण है।

ऊपर की पंक्तियों में रचना क प्रारम्भ-कौशल पर विचार बल दिया गया है। पर इतरा यह धर्म नहीं है कि उसका अंतिम भाग किमी भी प्रकार अयोग्यता कम महत्त्व रखता है। प्रायः यह देखा जाता है कि रचना के अन्त तक पहुँचने-पहुँचने एक पात्री का भाति साधारण लेखक भी बह कर हार-मा जाता है। वह इति को जिन नियंत्रण समाप्त कर देना की अन्तर्द्वारा में पढ़ जाता

है। उसी यह अन्वयात् ही सम्पूर्ण कृति के सौष्ठव को नष्ट कर देती है। परन्तु यह आवश्यक है कि जिस प्रकार किसी यज्ञ का उपसंहार-समापन कार्य बड़ी सावधान्या एवं उत्साह के साथ होता है, उसी प्रकार रचना का अन्त भी लेखक के सम्पूर्ण उत्साह एवं कोसल का परिणामक होना चाहिए।

उपन्यास रचना के अन्तिम भाग में इस बात पर उदात्त ध्यान रखना चाहिये कि कहीं भी किसी प्रकार से उसमें अस्वामाधिकता का समावेश न होने पावे। काव्य एवं चरित्र के अनुसारी परिणाम ही वहाँ पर अन्त हों। साधु नायक का उत्कर्ष एवं दुष्ट नायक का पतन जीवन की एक स्वामाधिक क्रिया है। अन्तु इसी स्वामाधिकता का निर्वाह बाध्यता है पर सभी परिस्थितियों में ऐसा हा ही इस पर ध्यान नहीं भी हो सकता है।

रचना के परिणाम सम्बन्धी अर्थों के विषय में विवेचना करते हुए एक विद्वान का कथन है— परिणाम सुख हो या दुःख किन्तु समके औचित्य और अपरिहार्यत्व के पूर्ण प्रमाण देकर उसे ऐसे क्रम में उपस्थित किया जाय कि पाठक को विश्वास हो जाय कि इसके प्रतिरिक्त दूसरा कोई परिणाम संभव नहीं हो सकता था। वस यही एक प्रस्ता था।<sup>१</sup>

जब समीक्षक किसी भी साहित्यिक कृति के रचना-कौशल का विवेचन आत्मक अध्ययन करता है तब उसका उद्देश्य केवल उस कृति के प्रस्तुत करने के इस विषय सामग्री के प्रयोग के प्रकार, अन्तु के बाह्य रूप तथा इन सबकी प्रस्तुत करने की विधि अर्थात् लेखक के व्यक्तित्व के कलात्मक लुम्करण— वहीँ अर्थात् ही अध्ययन करना नहीं होता। अन्तु समीक्षक के लिये तो किसी भी लेखक की रचनाया की बौद्धिक भावार्थक और सौन्दर्यात्मक विवेक तार्थों का सम्बन्ध मुक्ततः उसकी प्रतिभा और चरित्र की निजी विवेकताओं में होने के कारण रचना-कौशल का अध्ययन लेखक की रचनाओं में निहित व्यक्तित्व के सम्बन्ध अध्ययन में बड़ा पहायक भिन्न होता है।<sup>२</sup>

रचना-कौशल का अध्ययन भी साहित्य के इस व्यापक सिद्धांत की अवहेलना नहीं करता कि कोई भी साहित्यिक विवेकणात्मक अध्ययन उसके ऐतिहासिक तथा ( लेखक के अथवा कलाकार के ) व्यक्तित्व पर ध्यान का साइडर धार्ये नहीं बढ़ सकता यदि साहित्य की केवल एक नवितकत्वा के रूप में सिद्धा जाय और

१. लीताराम अनुबंशी 'समीक्षाशास्त्र'

२. Huxton, William Henry An Introduction to the study of Literature 19 80

उसका प्रकृत विरपेवण प्रकृत विवेचन किया जाय तो भी हम उसे साहित्य के मार-उत्ख एव मानवोप धर्म में सम्बन्धित कर सकते हैं और प्रचार रचना-कोशम के सम्बन्ध को अनुसृत साहित्य व मूलतया व सम्बन्ध का पूरक समझ सकते हैं। बाल्य में जैसे हा सम्बन्ध व का में घाये बदन हाता है उतनी ही धार्मिक सीढी के माय यह अनुभव हाता है कि साहित्य व समा का साहित्य के जीवन से पूरक करन का कार्य भी प्रयत्न कता और जीवन बाना ही के पनी से प्रसंगोन्मुख हाता धनिकार्य है।

उपन्यास समा है धर्तणव जीवन की अनुवृत्ति हाता के, धनिरिख उपम किसी न किसी प्रस म निर्माण-सोप्टव का रूना धावम्बक है। उपन्यासकार एक साका साध कर जीवन को रेखापा क भीतर बाधना चाहता है। ... सीमारोपाई जीवन क प्रवाह के कारण नियम धूमित हुनी तथा मिटती रूनी है, किन्तु इससे यह मिड तथा हाता कि उनका प्रयोजन नहीं है। मिड केवल यह हाता है कि उपन्यास स सम्बन्धित निर्माण के नियम उननी हो बड़ाई में साष्ट तथा किय जा सकते जिनत कि धर्म साहित्य क्या के। धावृत्ति धावबा कर वीधियुक्त का हाता केवल बाधनाय ही नहीं करत धनिकार्य भी है। उनके धनाध म जीवन क कोरे कारणमात्र को हम उपन्यास नहीं कह सकते न उनमे सौन्दर्य हाता और न उनमें रोचकता हाता। जावन धोर रूप-वीधियुक्त के मिधण से ही उपन्यास का का लड़ा हाता है। यह कहना कठिन है कि इनम धनिकार्य महत्व धार्मिक है किन्तु यह ता साष्ट ही है कि वेना के पारम्परिक सम्बन्ध म पर्याप्त स्वतन्त्रता तथा कठिया के बन्धन मे मुक्त रहने की धामता निहित है।

## प्रेषणीयता की अनुमति और पाठक

पाठक और उपन्यासकार—मानव और विभाता—एक प्रारभ्य कक्षा है और दूसरा सृष्टि रचता है। उपन्यासकार की सृष्टि संसार की सृष्टि की गहराई लेकर बसती है। पाठक उस गहराई के ऊपर उतरता रहता है। ऐसे कितने विज्ञानों हैं जो जीवन का मर्म समझने के लिए उपन्यास की गहराई में उतरते हैं।

उपन्यास के अध्ययन में हम साहित्य और समाज तथा लेखक और समाज के संबंध तथा कथा-साहित्य और प्रकाश-प्राप्त पाठक सभी का विचार करना पड़ता है। साहित्य का धार्मिक आधार भी उपन्यास-साहित्य निकटतम सम्बन्ध रहता है। स्काट जैसे उपन्यासकारों तथा बायरन व कवियों में पर्यावरण से बल और यश प्रकृत किया। इन सबके मूल में पा ही है। पर उपन्यास के विवेचन में पाठक का विवेचन भी अपना प्रयुक्त स्थान रखता है।

वास्तव में काव्य की सत्ता पारमार्थिक या प्रातिभाषिक नहीं है। प्रातिभाषिक है। जो बिब है उसका प्रतिबिंब भीतर है। जो बिब भीतर है, उसका प्रतिबिंब बाहर घाता है। बिब से प्रतिबिंब और इस प्रतिबिंब का बिब होना तथा प्रतिबिंब से हुए बिब का फिर प्रतिबिंब सामन घाता काव्य प्रक्रिया में उठत होता रहता है। इसलिए काव्य न ता प्रमा है, न भ्रम बहु कल्पना है। वास्तव की सृष्टि का काम धर्म र बाध में नहीं बस सकता बिब के वास्तव के वर्तन रमाणीयत्व के संवेदन और प्रतिबिंब के प्रदर्शन तथा प्रतिवेदन से ही बस सकता है। प्रदर्शन और प्रतिवेदन के लिए परपक्ष की अपेक्षा होती है। इसलिए काव्य या साहित्य केवल निर्माता से ही बन नहीं होता प्रतीता या मावीयता से भी सम्बद्ध होता है। इसी कारण किसी भी काव्य प्रथवा कला-कृति के लिए एक प्राहक की अपेक्षा होती है।

१ प्रस्तावना (क) विवेचनाय प्रसार मिय (शंकर देव बसतरे साहित्य) कृष्ण—५)

सांस्कृतिक के विज्ञान मानते हैं कि 'ग्रन्थ कोना एवं पात्र का समय जो भी व्यक्ति किसी कलाकृति अपना साहित्यिक रचना का सम्बन्ध करता है या इसका योजन अनुभव करता है वही साहित्य (लिटरेचर) कहना जाता है।' उन साक्ष्यों में से कुछ तो स्वयं समीक्षक बन जाते हैं जिसकी उदाहरणार्थ कृति का अपनी व्यक्तिगत रचि या भावना के अनुसार होना है और कुछ रचि या साम्य के आधार पर। इस प्रकार की इसी व्यक्तिगत रचि को ध्यान में रखकर सांस्कृतिक के समीक्षकों ने साहित्यिक कृतियों की समीक्षा उभी तुना में नहीं करते जिस तुना में वे सांस्कृतिक ज्ञान का अविनाश या अक्षयिपर की करते हैं। वे सांग करने के आधारों में साहित्य की रचि और साहित्य का भा ध्यान रखते हैं। यह साक्ष्यों को हट दो बना म पात्र है—  
 पात्र का स्वयं समीक्षक और दूसरे के समीक्षक का साहित्य की व्यक्तिगत रचि में कुछ समीक्षा को दृष्टि में रख कर किसी कृति को समीक्षा करते हैं। साहित्य या साहित्य-समीक्षक विचार के माध्यम से समीक्षा न करना ही विन्तु का किसी कृति का सम्बन्ध करने के परभाव के कारण का विचार तो अस्मिता करता ही है कि अथवा अन्य कुछे को अस्मिता बना या कुछे को अस्मिता नहीं बना। इस विचार को भी समीक्षा का ही एक रूप समझना चाहिए। इसमें से सभी साक्ष्यों (साहित्य या साहित्य) को साहित्य का सांस्कृतिक रूप नहीं निम्न पात्र क्योंकि सब में काम का एक लेख की सामना या संस्कार को समझा नहीं होती।

साहित्य साहित्य सम्बन्धित रूप में लेखक के रूप पात्र में मिलता है जो उस रचना में साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है और जो साहित्यिक उत्पत्ति के माध्यम से साहित्य के रूप में अनुभव की सम्बन्धित अपनी कल्पना में बना बना है जिसके सम्बन्ध में साहित्य की यह विचार है कि हृदय की साहित्य के रूप में इस भाषा को ज्ञानित करेगी ही। साहित्य इस विचार पात्र के द्वारा वे ज्ञान को यह विचार देते बनाते हैं कि अथवा अथवा यह करना या कार्य पर तुम्हारे मन म अथवा साहित्य ही चाहिए जैसे—  
 'संस्कृतिक के' रि लॉन्ग-टर्म में 'हि वेदिक रूप' इस प्रकार की साहित्य समीक्षा करना जाता है। साहित्यिक होम्स की कृतियों में साहित्य बना तुम्हारे



का भी नाम करता है और साथ ही साथ आदर्श पाठक बन कर उत कृति द्वारा पाठक धरबा बर्चक के मन में उठने वाले भावों की व्याख्या भी करता बसता है। प्राचीन यूनानी नाटकों में 'कोरस' प्रायः यही कार्य करते थे। कलाकृति धरबा काव्य-कृति की रचना के साथ ही साथ कलाकार प्रायः धरबा पाठक धरबा बर्चक पर विवेक प्रभाव डालने की आशा करके बनता है। पाठक के द्वारा स्वानुभूति का बर्तन धरबा विवेकन स्वामात्रिक ही होता है। अनेक ग्रन्थों का पाठक और अल्पेण उदात्तभावों में भावित होता है। उनमें इस उदात्तभाव के पूर्णतः संक्रान्त होने पर आदर्श पाठक की प्रतिष्ठा हो जाती है। नाटक में आदर्श बर्चक इसी आदर्श पाठक का वृत्त रूप होता है। लेखक तो केवल इसी सङ्घर्ष या रसिक पाठक को मर्य करके लिखता है। नम प्रकार के आदर्श पाठक के अभाव में उच्छ्वकोटि की काव्य-कृति की रचना की अपेक्षा सिद्ध होती है। उस समय तो कवि बिनाता से यही प्रार्थना करता है—

इतर ताप शतानि बभेक्षमा वितर शानि सह चतुरानन ।

परसिद्धेयु कबिम्बनिवेपनं विरसि मा सिद्ध मामिच्छ-मामिच्छ ॥

उपन्यास का पाठक तो उपयुक्त आदर्श पाठक की तुलना में अल्पतः सामारण स्तर का व्यक्ति होता है। जब सुसंस्कृत एवं साहित्य रसिक व्यक्ति भी उपन्यास के पाठक के रूप में पठन-व्यापार में प्रवृत्त होता है तो वह जान-बूझ कर एक निम्नतर पर विशिष्ट अल्पतम से पूर्ण स्तर पर आकर ही उपन्यासकार से एक प्रकार का व्यक्तिगत परेणु सम्बन्ध स्थापित करता है। इस कारण से जहाँ एक ओर उपन्यास में साहित्यिकता की अपेक्षा अल्प विषय का ही विषय महत्त्व रहता है वहाँ दूसरी ओर उपन्यास के पाठक में काव्य मर्मज्ञता के भी स्थान पर सामारण सांसारिक ज्ञान की अपेक्षा रहती है।

मास्टर एमेन ने अपनी पुस्तिका—'रोडिन ए नाबेल' में स्टीवेन्सन के २ जनवरी १८८६ ई० के एडमंड नाट को लिखे हुए पत्र में लिखा है—'इस आषट में जम पशु की पशुता के विषय में विषय पूर्ण कबाएँ कह सकते हैं। जिसकी शुरुवा हय सोन प्राप्त करते हैं। निरुक्त (मास्टर एमेन) पाठक की संशोधन करते हुए जमे बतमाता है कि स्टीवेन्सन का पशु ने अविश्राम है पाठक न। वह कथन—'मैं जगता के लिए नहीं लिखता मैं वह बात और देकर कह सकता हूँ कि मैं जग के लिए लिखता हूँ, जिसमें मेरे लिए श्रेष्ठ बचन वा शब्द अदिष्ट १ और मजमे अधिक तो मैं अपने लिए लिखता हूँ,



प्रवाच्यता से प्राप्त बिना किसी दूसरी भावना के मिसाबट के अनुभव को सेना है। कवि जीवित कवियों की कविताएँ मुख्यतः विरोध की भावना से ही पढ़ते हैं। उपन्यासकारों में भी इसी प्रकार की ईर्ष्या होती है पर उनमें एक बातना उन्हें इससे सुरक्षित रखती है धीरे प्राथमिक पुस्तकों की भावना नहीं होती है। वे उसका उदासीकरण कर देते हैं धीरे एक प्रकार की सजगता का भाव उनकी रसा करता है क्योंकि वे सुरक्षित जान जाते हैं कि पुस्तकालय की प्रणालियाँ में अपेक्षा कुछ धन्यो उपन्यास कहाँ रखते हैं। उनके उद्देश्य भी परिपक्व हाव हैं। वे एक-दूसरे के उपन्यासों को फलान में धान रहने के लिए भी पढ़ते हैं। वे उपन्यास में सारी हुई सामग्री की प्रशंसा करने की दृष्टि से भी उपन्यासों को पढ़ते हैं। कभी-कभी उपन्यास पढ़ने के बहाने वे अपनी रचनात्मक दृष्टि एवं गठन-कौशल का प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त करते हैं धीरे इसी रूप में दूसरों से भीखते हैं या अपनी बड़प्पन स्थापित करने का अवसर पाते हैं। वे एक-दूसरे के उपन्यासों का अध्ययन एक साथ बँट कर विवाद करने के लिए घुमरे के द्वारा प्रस्तुत किए गए तर्कों का उत्तर देने के लिए अपना अपने सहस्रमियों के विचारों से सहमत होने के लिए भी करते हैं।

जो प्रथम साहित्यिक है—जो विद्याभ्यसनी होने का हम भरते हैं, अपना जिन्हें साहित्यिकों का पिछलगू कहा जा सकता है वे उपन्यासों की मुख्यतः इसीलिए पढ़ते हैं जिससे वे उन उपन्यासों के विषय में इस प्रकार बातचीत कर सकें मानों वे स्वयं उपन्यासकार हों अपना सबसे भी बढ़ कर यह प्रकट हो कि वे साहित्यिक आलोचक हैं। साहित्यिक आलोचकों का एक व्यावहारिक उद्देश्य यह भी होता है कि साक्षात् पाठक के मन में यह विश्वास उत्पन्न करें कि उनका उपन्यास के अध्ययन का उद्देश्य बड़े विचित्र प्रकार का है। हम इसी विचार को संशोधन में भी प्रस्तुत कर सकते हैं कि कम से कम उच्च स्तर पर उपन्यास में आलोचना की रधि उपन्यास में उन बातों के चोखने में होती है जो उस (उपन्यास) में होती ही नहीं।

साधारण पाठक का इसमें मैं कोई भी उद्देश्य नहीं होता धीरे हमारे लिए यह बुद्धिमानी का कार्य है कि हम उनके व्यापार में कोई ऐसा उद्देश्य न देंगे जैसा साहित्यिक व्यक्ति उसमें देखते हैं। हम प्रकार जो उपन्यासकार अपने को बेचन उस मन बहुमान वाले के समान नहीं समझता है जो लोगों के अज्ञान के समय में उनका लिए मनोरंजन की सामग्री प्रस्तुत करता है वह हम यही मनकायेगा कि पात्र उनके पाम (पन्नों के माध्यम से) तीव्र



प्रमुख समानतादर्शक तथ्य को ले तो हम यही कहेंगे कि सत्साहित्य की पहचान के संबंध में उनकी कुशलता बों ही होती है जैसी कुशलता हम मरिच प्रेमी जग में देखते हैं जो मौसम-मु क कर केवल जिज्ञा से स्थानीय प्रभूत मरिच का स्वाद लेकर घबिलात्म ही यह बतमा सकते हैं कि वे देश के किस भाग में हैं। इमे ईश्वरदान-दुःख समझना चाहिए क्योंकि मन्वे कवि की मति वास्तविक पाठक जन्म से ही होता है बताया नहीं जाता। त्रिन प्रकार सतत धम्मस और सर्वत्र रचनाकार्य में संलग्न हुए बिना कवि के धम्म-जात दुःख का भी कुछ महत्व नहीं होता उन्ही प्रकार पाठक भी धम्मस के द्वारा अपनी बुद्धि को स्वता हीय एवं परिष्कृत कर सकता है कि वह अपने धम्मयन क्रम का गुरुत्वपूर्ण एवं उपादेय बना सके। इसके लिए उसे अपने में सहाय्यता के मास को सर्वाधिक संबंधित करना पड़ेगा।

धम प्रश्न होता है कि यह सहाय्यता का मास (गुडबिस) किसके प्रति हो ? यह सहाय्यता का मास उस लेखक के प्रति होता चाहिए जिसकी पुस्तक पाठक द्वारा पढ़ी जा रही है। इस सहाय्यता का मास रखने से क्या धमिप्राय है। इसको स्पष्ट करने में प्रयत्न हमें यह निर्णय कर लेना है कि हम पढ़ते ही क्यों हैं ?

स्पष्ट रूप से पढ़ने के घने कारण हो सकते हैं। एक व्यक्ति धनी धनी घर में जाकर गीत के घर में रहने लगा हो। वहाँ के बाग की देख भास क्यों से न की गई हो। मैच के पैर में धावस्थयता से अधिक जाने बड़ गई ही धीर उन्हें बों ही (काटे-छाटि बिना) बहने दिया गया हो। पत्र के पृष्ठों की देख माल लीये की जाती है इन विषय में बिना कुछ भी जाने हुए वह उस विषय पर एक किताब मोस लेता है। घट पढ़ने का एक सर्वस्य हुआ कि किसी भी विषय के संबंध में केवल उपलब्ध ज्ञान की प्राप्ति। पर यह तो केवल एक कारण है। उदाहरण के लिए जब मेरा बायरलेट सेट बिगड़ जाता है मैं यह सीखने के लिए कोई पुस्तक नहीं पढ़ी होता कि उसे कैसे ठीक किया जाय। तब तो यह सरलता म धीर दीमता से किया जा सकता है कि एक 'रेडिया-मेकेनिक' को बुला लिया जाय। जीवन में उन सभी बीजों के विषय में सब कुछ सीखने के लिए समय नहीं होता जो कि कमी बिगड़ सकती है। घट: इस प्रकार का पढ़ना क्रियात्मक रूप से किसी विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए पढ़ना—इस निर्बन्धना का धर्म-विषय भी नहीं है।

तब फिर धीर जो कोई भी मीने-मीन पर कुछ भी पढ़ता है वह समय

मानने के लिए ही पढ़ना है। किसी-किसी मानसिक स्थिति में तो बस हमारे पास और कुछ पढ़ने के सिरे नहीं होना तो हम 'टीवी-टोन इन्फोर्मेन्स' यथा 'रेलवे टाइमटेबुल ही पढ़ कर समय बिताने है। निरहंश्य रूप में स्वीहृण की जाने वाली पत्र-मासिकी के मौखिक के सम्बन्ध में व ता कुछ भी बहने की आवश्यकता है और समाज रूप में ही वह हम निरहंश्य का विषय भी नहीं है। परन्तु इन प्रकार के पढ़ने का एक महत्व है और वह यह कि बराबित इसी मन बहुलाभ के लिए पढ़ने-पढ़ने बहुत से मीय यकीनता में पढ़ने मरने हैं। एक समाचारपत्र एवं मासिकपत्र से घाते बड़ कर बुझने के पढ़न पर घा जात है। मनुष्य में इन बात को मित्र भी कर दिया, जब महत्ता अनुप्य 'बैरवा' में यथा हुआई हमने में बचन वाले स्थानों में घा ही बँटे-ईये जब जाने से जब उम्होंने जीवन में पहली बार पृथक् पढ़ना आरंभ किया। कुछ से तो बस पढ़ने का हम घट्ट गया और यथा हिम के पढ़न वाले बन गए और इनमें से बहुतों उमी प्रकार निरहंश्य पढ़ने वाले बने रहे जैसे के आरंभ में थे। जैसा कि के स्वयं कहते हैं उनका पढ़न का उद्देश्य तो घपने को बाड़ा देर के लिए परिचित परिस्थितियों में बाहर निराल सिना जात है। एक वर्ष में यह हम ममी के ऊपर लागू होगा है। हम प्रायः उमी एक उद्देश्य को लेकर पढ़ते हैं। हमने जो महत्व की बात है वह यह है कि हम घपन को परिचित परिस्थितियाँ में निराल कर ले बहो जाने देत हैं। यही सिद्ध का यह उद्देश्य नहीं है कि वह घपने को उन लोगों में बस कर मित्र बने सिद्धा बचना बैबन घपने की दुनियाँकी भ्रमस्था में दूर रहने के लिए होता है—जिसे बीकरी देना वाली दुबतियों के पठनातुराँ उम्हाराँ का नाम दिया जाता है किन्तु जब बुद्धिने तो यथ्य अरुी की महिषायें उतनी ही सकिता से पढ़ती है जितना कि बीकरी करने वाली नीत्रवाल महिषियाँ। इस प्रकार के सामान को संसार भर में बनाए जाने बान सिद्धा के साहित्यिक समानांतर कर होत है करने पाठकों में एक-समानीतामिह आवश्यकता का पुँति करने हैं, उनका घन्तिम्य उम बुद्धि का संवेक है जो सापुनिक अपार में बहुरी अनुप्या की घपितायाघा की घूर्ति के परिणाम में घानो है। पर इन प्रकार की

1 Such romances which are the literary equivalents of the great bulk of the world's output satisfy a psychological need in their readers their existence is an index of the frustration

पुस्तकें भी इन निबंधों की विचार-परिधि में विवेचन के लिए नहीं आती हैं क्योंकि ये उस धर्म में पुस्तकें नहीं हैं जिस धर्म में इस निबंधों में उन्हें विवेचनार्थ ग्रहण किया गया है। वे तो बहुतेरे सिनेमा चित्रों और रेडियो प्रोग्राम के समान इन विक्रमोपयोधी वस्तु के रूप में उपभोक्ता श्रावणी की कोटि में आती हैं जो किसी आश्चर्यकता की पूर्ति के लिए एक पूर्ण निर्दिष्ट योजना (प्लान) के अनुसार निर्मित की जाती है। उनका और वास्तविक कोटि की पुस्तकों का बही परस्पर संबंध होता है जो विज्ञापन और काव्य का होता है। उनमें केवल इतनी ही खराबी है कि वे अपने पाठक को फुसला कर भुलावा देकर अपने स्वप्न-जगत को वास्तविक जीवन से बढ़ कर समझने के लिए विवश करती हैं और उनके लगातार पढ़ते रहने में पाठक की इच्छा जीवन का सामना करना मुक्त जाती है। यहाँ यह बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि उनके पढ़ने का उद्देश्य केवल जीवन से पलायन करने का होता है। उन्हें इस निबंधों में किञ्चित्तमात्र भी समर्पण प्राप्त नहीं होना क्योंकि इन निबंधों का विषय तो वे पुस्तकें हैं जिनका वर्ण-विषय अत्यन्त साधारण रूप से अपने सभी पात्रों रहस्यों उमंगों महनधीमताओं समस्पर्धों सहित जीवन होता है।

महामति आचार्य आम्सल अपने उपन्यास 'रीसेलेम' में कल्पना की इस बुभुक्षा की चर्चा करते हैं जो निर्नर क्रम से जीवन से अपना मध्य प्राप्त करती रहती है।<sup>1</sup> यह सत्य है कि जिस प्रकार मानव हृदय से कोई रचना अज्ञानक प्रसफुटित हो उठती है उसी प्रकार मानव हृदय में अध्ययन क्रम के प्रति एक सहज विज्ञान एक उत्पन्नता की आकृति भी अपने ही रूप हो जाती है। हम अपनी कभी न शांत हाने वाली उत्पन्नता के कारण जीवन

reasons that attend the desires? of so many people in the modern world.

—WALTER ALLEN *Reading a Novel* P 12

1 Dr Johnson in his novel *Rasselas* speaks in a tremendous phrase of that hunger of the imagination which preys incessantly upon life. (it is precisely out of that enduring aspect of the mind of man that real reading like real writing springs )

—DR JOHNSON *Rasselas*

के रहस्य मैदान का प्रयत्न करने हैं और यह बात सभी परिस्थितियों में लागू होती है। चाहे इन जीवन-रक्षण पढ़े प्रथवा प्राध्यात्मिक अनुभव के संस्मरण वैज्ञानिक ज्ञान इतिहास जीवन चरित्र काव्य प्रथवा कहाना उपन्यास का अनुपोसन करें। य सभी मानव जीवन के अनुभव की धमिल्यस्ति के विभिन्न प्रकट रूप हैं और इन सब के मूल में व्याप्त उन्मुक्तता का मात्र विषय महत्व रचना है।

प्रस्तुत निबन्ध उपन्यास में सम्बन्धित है। अतः यहाँ हम यही विचार करना चाहें कि इस उपन्यास क्यों पढ़ते हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में अनेक कारण दिए जा सकते हैं पर उन कारणों में से जो मूल-मूल कारण हैं, वह हैं केवल सुख-सुख से जमी आती हुई कहानी में मनोरंजन प्राप्त पान की साधारण जन की प्रवृत्तिमान जो घटनाओं की शृङ्खला में एक के बाद दूसरी कोल भी घटना पटित हुई इसका जो ज्ञान में विषय आश्चर्य का अनुभव करती है। प्रथमतः हम उपन्यास उभी कारणों से पढ़ते हैं जिस कारण हम— 'सिनेमा' देखने जाते हैं प्रथवा नाटक देखने जाते हैं जिसमें हमारा मनोरंजन हो सके जिसमें हमारा जी बहुत मरे। बतचित्त यह वर्तमान की आश्चर्यचकता नहीं कि मनोरंजन का स्वरूप घटने पुस्तकालय जाने में अनेक दया एक कल्याण के माथों में मन के कष्ट के बिगुड़ीकरण तक हा मरता है पर जब तक पाठक का मनोरंजन नहीं होगा तब तक जो कुछ भी किया जाय वह सब व्यर्थ होता है और उपन्यास में मनोरंजन का आधार अतः में कहानी ही टहरती है। चाप क्या होता है ? इस स्थिति का पार करने के पश्चात् हम पढ़ते हैं क्योंकि हम उन चरित्रों के विषय में ज्ञानता चाहते हैं जो घटनाओं का संचालन करते हैं और जिन पर वे घटनाएँ पटित होती हैं।

हममें से सभी मानव प्राणी हल के मात्र मानव स्वभाव के अध्ययन में व्यस्त रहते हैं और उस अध्ययन में रुचि लेते हैं। पर जीवन के साधारण-जन्म में हम बहुत कम माथों का अध्ययन कर सकते हैं। उनका चरित्र का पूरा रूप में अध्ययन करना प्रथवा उनके व्यवहार का पूरी शीर्ष में समझना ठा उनमें से कम होता है। वास्तव में यह विरल ही अध्ययन पर संभव होता है कि हम अनेक को ही पूर्ण रूप से समझ सकें। प्राध्यात्मिक नास्तिक हम मानव प्राणियों के प्रतिनिधित्व चरित्रों को इन चरित्र विषय में समझने का प्रयत्न बना है जिसकी निष्पत्ति न हम सभी वास्तविक जन्म के मानव प्राणियों को ही कहा जाय सकत है, और इन बातों में इतना धर्मिक मध्य है



के संसार के भावनात्मक साहित्य में बहुत से ऐसे चरित्र हैं जो हमारे लिये उन सब व्यक्तियों से जिन्हें हम व्यक्तिगत रूप से जानते हैं कहीं अधिक वास्तविक हैं और उनको हम कहीं अधिक पूर्णता से समझते हैं। इस प्रकार उपन्यास हमारी चित्तवृत्ति में हमारे सहवासियों को समझने के योग्य बनाता है। वास्तव में इस युग में यही इसकी प्रमुख अभिव्यक्ति का स्वरूप है। पात्र के युग में अन्धे भावनात्मक साहित्य में हमें कहीं सब कुछ प्राप्त हो सकता है जो बार्ब बर्नार्ड-आ को इब्सेन के नाटक में उस समय मिला था जब कि उसकी धबधारणा सर्व प्रथम १८८० के मृतप्राय बीबलहीन रतमंत्र पर हुई थी बीबलियों की कहानियाँ धावरण पर बाब बिबाब सांस्कृतिक-उद्देश्यों का धनावरण बाधनीत में चरित्रों का परस्पर समर्थ धन्तर को जोत कर रखता मनुष्य की मूर्खों की जोख धारि। संक्षेप में कहा जा सकता है कि बीबल 'बर जयमगाहट में मरा पूरा प्रकाश—'जयमगाहट से मरा पूरा प्रकाश बहु शब्दावली स्वयं का महाभय की थी।

परन्तु पाठक को यह बीबल पर पूर्ण रूप से पढ़ने वाला जयमगाहट वाला प्रकाश उपन्यास से बिना कुछ प्रयास में नहीं मिल सकता—जब तक पाठक में उपन्यास लेखक के मस्तिष्क का अपने मस्तिष्क में मल खाने का सकल प्रवृत्त नहीं होना। वास्तविक पठन—बहु पठन-विधि जिसे हम रचनात्मक प्रक्रिया का सम्मान दे सकते हैं—उसी समय संभव हो सकता है जब पाठक धीरे-धीरे उपन्यासकार के बीच पूर्ण सहयोग रहता है और उपन्यासकार के सहयोग देने का उत्तरदायित्व जैसे ही पाठक उपन्यास को पढ़ने के लिये हृद्य में पैदा है वैसे ही समाप्त हो जाता है।

घर पाठक किम प्रकार लेखक के साथ सहयोग करे इसी प्रश्न विचार करना है—

1. So the novel ministers to our passions to understand our fellow—indeed it is in this age its principal expression. In good fiction (as of course in good plays) we may find what Bernard Shaw found in the drama of Ibsen when it was first introduced to a ...all but moribund. English stage in the eighteen-eighties: stories of lives discussion of conduct, unceline of Motives conflict of characters in talk-laying bare of souls discovery of pitfalls in short, 'Illumination—the italics are Mr Shaw's. WALTER ALLEN: *Reading a Novel*

परसी तबान के अनुसार उपन्यास का पाठक—यहाँ पर घालोचनात्मक दृष्टि रखन बाल पाठक ने धर्मिप्राय है—घरने में स्वयं उपन्यासाकार होता है। वह एक ऐसी पुस्तक का मूढा होता है जो उसकी रचि की हो या न हो पर उसकी रचना का पूरा उत्तरदायित्व उस पर हाता है। उसका कार्य लेखक के कार्य में मिस्र हाता है। लेखक के कार्य का विस्तार घाधिक होता है। उसे चयन-स्वातन्त्र्य होता है पर इस बात में दोनों समान है कि वे दोनों ही अपने-अपने ढंग से उपन्यास का निर्माण करते हैं।

यदि इन दोनों की काय विधि के अन्तर को समझने के लिये उदाहरण स्वरूप प्रेमचन्द का हा से लिया जाय और प्रेमचन्द और घालोचनात्मक पाठक को साय-साय घड़े होकर जीवन-व्यापार देखन की कल्पना की जाय ता घालोचनात्मक पाठक को कुछ नहीं कहना हाता है। उसे केवल प्रतीक्षा करनी होती है। प्रेमचन्द जमकर डट जात है। उनकी प्रतिभा जीवन प्रवाह म यहूरी बुझकी लया कर बिना किमी द्विचक या रोक क जीवन-व्यथा को प्रवाह म पुषक कर देती है। जा केवल प्रासंगिक है घयबा घन/वस्यक है उसे प्रेमचन्द घपनी दृष्टिया में घाकने भी जाते है। वह उन सबका ऐसी परिस्थितिया में स्पष्ट करते है जिममें वे व्यावहारिक जीवन म नहीं बिलार्ई पड़त। वह उनका जीवन प्रवाह में उछार कर उन्हें पुख करता है। इस प्रकार जाने हुए जीवन के नमान लगने हुए भी उससे मिस्र ऐसी मामपी को लकर जैसी परिचित जीवन कमी होने की बस्यता भी नहीं कर सक्ता प्रेमचन्द घपनी रचना बरत है। इस प्रकार लेखक घालोचनात्मक पाठक का पप प्रदर्शन करता है और यहाँ में उनका काम घारम हाता है।

पाठक (घालोचनात्मक) को न ठी बटनाघों के चयन वा उत्तरदायित्व संभालना पड़ता है और न उनका कम हा रिकर करना पड़ता है। बस्यता के सहारे जीवन का चुनकर समटा हुआ रूप उसके सामन हाता है जा अस्पूरण न होकर भी घरने में पूर्ण होता है। पुस्तक का संसार एमा होता है जहाँ बस्यता एव बिधागीमता साय-साय काम करती है। जमा कुछ भी हा घालोचनात्मक—(पाठक) घपना पुस्तक की सृष्टि के लिए इसका उमी स्वक्य म स्वीकार करता है। एव घालोचनात्मक (पाठक) क लिए चयन एव यथेच्छा-सहाय का प्रयत्न ही नहा टठना दइ ता उपन्यासकार का काम या और वह उसके ज्ञान के अनुसार मस्यत्र भी बिना जा चुका है घालोचनात्मक (पाठक) ता जीवन की नाबकी के सहारे घपनी सृष्टि करता है।

पर इस प्रकार से उसके कार्य का किसी भी विधि स्वल्प में यह बात का कुछ हट कर दूर नहीं बना जा सकता। आलोचक पाठक को लेखक की भाँति—एक क्लासिक की भाँति—सपनी सामग्री को लेकर क्लासिफिकेशन करती है। जैसे-जैसे वह पुस्तक का पाठ करता जाता है वह विधिगत क्लॉस को भटा जाता है। उसे तदनुगत विचार एवं प्रयुक्त सामग्री का भी पूर्ण ज्ञान होता है। उपन्यास की रचना में तो तमाम चीजों से भी स विचार पढ़ने वाले क्लॉसों का समावेश होता है। उनके पुनः प्रयुक्त प्रयोग से ही पठन पूर्ण होने के परभाव मस्तिष्क में बनी हुई पुस्तक स्थायी रूप से अटक सकती है।

यदि हमें इस बात की विवेचना करनी है कि वे कौन से विधिगत पराभ हैं और (जिसका 'धर्म' केवल पढ़ना ही है) किस प्रकार उनके उपयुक्त प्रयोग को सीखा जा सकता है। यद्यपि उनकी प्रकृति अलग है पर ऐसी नहीं कि जिनका समाप्ति-सूत्र है। वे तो विधिगत चीजों के उदाहरण भी प्रकृत हैं। कथन के ये ही ही हैं कि उनका पता ही न चलता हो। हम उन्हें धर्म की तरह जानते हैं और उनका उपयोग करते हैं। पर उन सामग्री का प्रयोग करना उनकी विधापता परबल से नहीं अधिक सरल होता है। उनको तो हम जिज्ञासु की सकलचित्त में ही पठन के द्वारा जान सकते हैं। इस प्रकार उपन्यासकार के ही का समीप से अध्ययन करते हुए हम उपन्यास में प्रयुक्त अनेक बातों को जान सकते हैं।

हम सभी (पाठक के रूप में) उपन्यास के मातन हान ही एक प्रकार के संशोधन का भी अनुभव करते हैं और वह यह कि उपन्यास के जीवन के अन्त होने में यदि हम उसको टुकड़ा में देखें तो उसकी पूर्णता नष्ट हो जायगी। जब पाठक आनाचना के लिए उद्यत होता है तो ऐसा प्रतीत होता है मानों वह खबर प्रकृति के आलोचक की भाँति सपनी स्टेड पर बसना अनु की भूमों का निरूपण हो। वह बात आलोचक नातुक विष्म की होने से नहीं जाती पर साधारणतया यह विचार आलोचक (पाठक) की लेखनी का भावे बढ़ने से रोक्ता है। पर पाठक को हमने विलुप्त ही भयभीत नहीं होना चाहिए। पुस्तक की आलोचना वितनी ही भीषण क्या न है। उनमें उपन्यास गत पुस्तक का कुछ बनना विवकता नहीं है। और फिर यह जीवन का संघ नहीं है यह तो अर्थ बनाइतिना की भाँति एक क्लासिफिकेशन है। दूसरे विचार रूप में स्थित होने के कारण हम पर आलोचनात्मक विचारों का दृष्टिक



होना आवश्यक है। नाटक की शक्ति इसके लिए दर्शक कृष्ण की अपेक्षा नहीं होती पर अपने प्रतिष्ठित के आधार रूप मूल नियम के कारण वह पाठक वर्ग की वृद्ध संख्या की अपेक्षा करता है जो सम-सामयिक परंपराओं के अनुकूल साहित्यानुशीलन करने में सम्मत् हो। बिना इतिहास में जिसे 'संस्कार-रूप' कहा जाता है उसमें तो इस प्रकार का कोई पाठक वर्ग रहा नहीं। धारम्भ में उपन्यास के विकास के बाधक के रूप में इन नाटक के साहित्यिक इतिहास को ठाढ़ी पर घासीन होने और काव्य की उच्चतर प्रतिष्ठा के पद पर स्थित होने के रूप में ही समझ सकते हैं। यह बात वास्तव में सत्य है कि जब तक नाटक का हास नहीं हुआ मध्यात्मक साक्ष्यान साहित्य माने नहीं बढ़ा। अंग्रेजी में सालहबी घटावही तक पद्य में लिखा हुआ ऐसा कुछ भी नहीं है जिस किसी भी रूप में उपन्यास कहा जा सके पर उसके बाव की घातीन्द्रियों में तो धारम्भ से लेकर आज तक एक प्रकार बात की पाठक बनता प्रतिष्ठित में घाती वर्ग जिसे उपन्यास की प्रवृत्तियों को संभव बना दिया और उपन्यास की माँग तथा उस माँग को पूरा करने वाले उपन्यासकार वर्गों को ही उत्पन्न किया।

इस प्रकार की बनता एक समय में पुरबी के दो छोटे पर भी। प्राचीन काल में तो नैमिषारण्य में मूल वी का प्रबन्धन घट्टासी हजार ऋषियों के बीच में प्रायुक्तिक काल के दिक्कत के अपन ही उपन्यासों का पद कर सुनाने के प्रमेरिक्तन परिचाल का स्मरण दिया जाता है। संस्कृत साहित्य में कारम्बरी बसकुमार चरित प्रभृति संस्कृत उपन्यासों की परंपरा न एक सिष्टकोटि की पाठक बनता को जन्म दिया बा। पद्यम और प्रबन्ध में—'सहस्र राजनी' की परंपरा में अहुरबारी के रूप में धनक पदन बाक सुन्तानों के वर्ग की सृष्टि कर बा की। प्रीस राम और विजयप्रियम की अन्तिम घातीन्द्रियों में प्रम और साहसपूर्ण परिचालना की कथाएँ बढ़ी उत्सुकता में पढ़ी जाती थी। प्राय्याता तक साहित्य के अन्तर्गत प्री सँबारे हुए सर्वप्रिय साहित्यिक रूप मङ्गरियों के जीवन में सम्बन्धित प्रेम-कथाएँ मैतामी तावों के जीवन की मज्जहा कर्तापूर्व

1 "A novel admittedly obeys few laws but it must be a story written to be read in silence the silent communion of autho. and reader. It demands no audience— but by the very law of its being it demands the existence of a large reading public, attuned to its contemporary conventions—  
S. DIANA NRI— A Short History of the English Novel—p 7

कथाएँ, अंत्यारम्भक कहानियाँ मन की उड़ान वाली कहानियाँ धीरे-धीरे बाह्य के विज्ञान-जगत से सम्बन्धित रोचक-कथाएँ प्रादि फ्रान्स और इंग्लैंड में हुए वे सभी साहित्यिककर्म बाह्य के युगानी धीरे-धीरे रोम के साहित्य में पाये जाते हैं। प्रायः ना 'नीपस' हेमाडोरस' 'पेसिथिस' 'टिसियस' 'एलुनियस' 'पेट्रोनिअस' धीरे-धीरे 'सुसिपन' बड़ी रीति से पढ़ जाते हैं। पर इन नामों से पता चलता है कि उपर्युक्त सभी भाषाओं में अपने-अपने ढंग को बटनापूरण कथाओं के लेखकों की संख्या कदाधिक रहा होगा। बड़े-बड़े-बड़े इन से यह साहस पूर्ण अभियान की कथाएँ व्यापारियाँ निवासिष्ठ वर्माजियों धर्म पर रचि जाने वाले धीरे-धीरे कथाएँ साईं जाकर प्राबुतिक सम्म जगत में फैली।

इंग्लैंड में यह परम्परा पद्यारम्भक बटनापूरण कहानियों के रूप में चलती रही। पर पृथ्वी पर जाते-जाते धीरे-धीरे कहानियों के बड़े-बड़े सजाना के होत हुए भी उपन्यास जैसी कोई भी चीज सामने नहीं आई। व्यापारिक कथा जान पर भी कबल 'बील्डुमा' भोग्य धरवा कृष्ण पेथेवर पुरष धीरे-धीरे स्थिराँ हुए पढ़ सकत के परन्तु साधारण जन यद्यपि मानते नहा वे तथापि उनका साधारण ज्ञान बहुत बढ़ा-बढ़ा था। हाँ यदि चामर ने जग में सिखा होता था सम्भव है कि रिचर्डसन के 'पामेसा' धरवा का प्रथम उपन्यास न हुकर यह धीरे-धीरे उसके 'ट्रायलस' ऐड के साईं का प्राप्त हुआ होता। कारण यह था कि इस कविता में चामर ने मानवता से पूरा कहानी कहा थी धीरे-धीरे स्वाभाविक ढंग से सब कुटो बार्ते बठाते हुए, धरवा तथा मानव हृदय का प्रक्रिया में मनाईजातिक धर्मदृष्टि की पैठ के साथ कही थी। एसा करना उस युग के लिये विस्मयजनक था। 'कसीड' के प्रति उद्यता मानक भाव युगानी कैम्प में उन (कसीड) के जन्म पढ़ने वाल प्रसन्नता का हूँ एक यार्मिक जग से ममजने की क्षमता—उन (कसीड) की अपने अनुपस्थित प्रसन्नता के प्रति हड़-बटा रहत की कल्याणपूरण प्रसन्नता समिताया की ममजने की लेखक का जग कोटि का धरुतपूर्व क्षमता का प्रकट करतो है। ना नाटक के जग के बाहर रिचर्डसन के 'स्पेरिसा' का सृष्टि करत के पूर्व कही नहीं देखी जाती। पर यह जा उपन्यास का एक सर्व

1 "Through the fourteenth century, people remained content with rhymed romances—Robinhood and Mad Manon the incredible adventures of Bevis of Hampton, and Cuy of Warwick were great favourites

स्वीकृत माध्यम है। इङ्गलैण्ड में भी बड़े धीरे-धीरे सर्व-साधारण के प्रयोग में आया और जिस वस्तु की भांति इस अत्यन्त छोटी-सी पर विधिष्ट रचना में लिखित थी वह तीन सतासियों तक पूरी न हो सकी।

पन्द्रहवीं सतासियों में मुद्रण विधि के आविष्कार ने कहानों कहानों की कला को बहुत बढ़ा बस दिया और सार्वजनिक आख्यान साहित्य के प्रसार में भी बड़ी सहायता की। बड़े ही विचित्र ढंग से एक साधारण बौद्धिक के व्यक्ति 'बिलियम क्लैस्टन' द्वारा अंग्रेजी गद्य को सादसी और मुहाबरेदार स्पष्टता प्रदान की गई। इन दोनों ही गुणों की अत्यधिक आवश्यकता थी और इस साधुकार्य के द्वारा उसने उपन्यास के एक बड़े आबस्यक धंग की स्थापना की। उसने जनता के बीच उपन्यास के पाठक तैयार किये। क्लैस्टन बहुत समय तक फ्रान्स में रहा था और उसने फ्रेंच भाषा के सहज गुणों का समावेश अंग्रेजी में किया। यह उसका दूसरा बड़ा अनुदान था 'पाठक और पाठक के योग्य भाषा।

इसके बाद कुछ समय तक गद्य और पद्य की उच्च स्थान ग्रहण करने के प्रयत्न में प्रतियोगिता रही पर धीरे-धीरे गद्य की प्रतिष्ठित कथा-साहित्य में विविधता बच से हो गई। यह पद्य और गद्य का संघर्ष उपन्यास के सारतत्व को स्पष्ट करने में सहायक है।<sup>1</sup>

यह भी एक विचित्र बात है कि पुनर्जीवित और अंग्रेजी साहित्य जगत् में ही उपन्यास का आरम्भ एक महात्त बुध के हाथों के माध्यम हुआ है। हिन्दी में भी उपन्यास की अवधारणा कुछ इसी प्रकार की परिस्थिति में होती है। पुनर्जीवित की प्रथम एवं अन्तिम साहित्यिक कथा का आरम्भ अलेक्जेंडर ड्यूमस के हाथों के मुख में होता है। एमिलिआन्स-कालीन इङ्गलैण्ड में उपन्यास का उन्मूलन के द्वारा निरतन किया गया था जो अत्यन्त समय के साहित्य के बीरव से। वह

1 "By this time prose had established itself as the accepted medium for romances the story could be told with greater simplicity and ease and any loss of the quaintness and charm possessed by the older verse forms was offset by the growing naturalness at any rate, in the method of narration. This battle between prose and verse is germane to the essence of the novel.

मार्ती और शेषसपीधर ने उपन्यास लिखे होते तो इङ्गलैण्ड में भी न्य के बोल्डोबलसकी के समान उपन्यासकार हुए होते और इंग्लैण्ड में भी उपन्यास की बिधा इतनी परिपक्व हुई होती जितनी वह रूप में हुई और यही कारण है कि पाठक वर्ग में भी महान् उपन्यासकारों के पढ़ने का चाव प्रबलता से उठान में बिभन्व जगा। उन्हें फोल्क एवं कवी उपन्यासों के अनुबाहों की अपेक्षा करनी पड़ी।

हिन्दी साहित्य में भी उपन्यास की प्रवृत्तारखा ऐतिहासीन साहित्यिक ह्रास के रूप से प्रारम्भ हुई। संस्री साहित्य तथा अन्य साहित्यों के बातावरण की घांति प्राचीन हिन्दी में भी काव्य एवं नाटक की प्रतिष्ठा होने के कारण गद्य में प्राख्यात साहित्य साहित्यिका द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाता था। पाठक वर्ग की सृष्टि समाचार पत्रों के पढ़ने बात्तो और अनेकी धिसा प्राप्त लोगों को लेकर हो गई थी पर उपन्यास में रुचि लेकर पढ़ने वालों का घापमन हिन्दी साहित्य में बड़ी देर में होता है। इसकी खर्चा प्राये करेंगे।

१९वीं सताब्दी के सतराई में उपन्यास का प्रत्यधिक विस्तार हुआ। विज्ञान के द्वारा प्रस्तुत की हुई नबोन सामग्री एवं रुचि गई खोज घात्रुनिक घाबिष्कार और बीजन के विभिन्न क्षेत्रों ( मुठ समुद्र धर्म फँसरी ज्ञान अकबा रेलने स्कूल अकबा विश्वविद्यालय व्यापार कला समाज राजनीति और घरराय घादि) का नियमित एवं क्रमिक प्रथयन इन विकास के मूल में था। परन्तु घात्रुनिक उपन्यास का यह विस्तार एवं उसी के अनुकूप विद्विष्ट क्षेत्रों में उसका विकास पाठक वर्ग के तदनुकूप विस्तार के बिना सम्भव न होता। इनी पाठक वर्ग के विस्तार एवं उसी के अनुकूप उपन्यास ने सामग्री—  
स्वरूप और पाठक एक पहुँचने के ङर्गों में परिवर्तन करके अपने को हाता।  
सदाहरणार्थ—उपन्यास का प्रमुक्त सम्पन्न स्वरूप (जिसका प्रतिनिधित्व) स्टाट के उपन्यास करते हैं बड़े बनिक लोगों की पठनीय सामग्री के रूप में वे क्योंकि वे तीन-तीन भागों में प्रकाशित होते थे और उनमें से प्रत्येक भाग का मुख्य

- 1 "Thus expansion and specialisation of the novel would have been impossible without a corresponding expansion of the reading public, to which the novel accommodated itself by changes in its material form and mode of circulation."  
—R. M. LOVETT AND H. S. HUGHES: *The History of the Novel in England.*



भाषी किसी होता या धीरे से उसी मोमा के मतलब के होते वे जो उदने  
 अधिक मुख्य को वे सकते थे प्रपचा सरकुलेटिव लायबेरी' का जारी बन्दा दे  
 सकते थे। स्वाट के पाठक बिदिष्ट कोटि के धीरे छिद्रित मोम के यह उनकी  
 सफलता थी कि उसने धीमता से इन पाठकों की संख्या में वृद्धि की। सासलता  
 की वृद्धि के साथ पाठकवृत्त की यह बिदिष्टता (बनिक बर्ष का एवं सस्रत  
 रचि वा होना) नष्ट हो गई धीरे पढ़ने का स्वभाव मनी साधारण-जन का  
 स्वभाव बन गया धीरे फिर उसकी वृद्धि के लिये उसी के अनुसूप प्राख्यानात्मक  
 साहित्य से भी पठनीय सामग्री की प्रचुर की मात्रा की प्रयोज्य होने मनी। प्रब  
 प्रकाशको न भी हम बात का अनुभव किया कि पहले की भाँति भाटी-नरकम बोड  
 से जायां के स्थान पर बोडे मुख्य पर (एक निमित्त प्रति प्रख्याय की दर से)  
 इन्स्टामण्ट में बपों एक ही उपन्यास को प्रकाशित कर वह नहीं अधिक  
 बनाना-बर्न क सकते हैं। सर्वप्रिय मानिक पत्रों ने भी इस सूचना प्रकाशम  
 (सीरियल म छापने की तरकीब) का पूरा लाभ उठाया। इसमें सत्येह नहीं कि  
 इस हम में उपन्यास के निर्माण कीमत एवं गठनबोडस पर बुरा प्रभाव पड़ा  
 उनकी सम्बन्धि (पुठों की संख्या) बहुत बढ़ गई। लेखक बिना पहले की टीया-  
 के छपने की विधि को साधने के लिये या ही लिखने मने। इसमें उन्हे उपन्यास  
 के बिदिष्ट संवा पर पाठकों की क्या प्रतिक्रिया होती है यह जानने का प्रबसर  
 मिमता या धीरे बहु तरनुसार अपनी सैद्यन-विधि में परिवर्तन भी कर सेसे  
 वे। इसमें उन्हे पत्रकारिता सम्बन्धी सफलता ही प्राप्त हो जाती थी पर  
 उपन्यास के अन्तिम स्वरूप के साधने के लिये हानिकर होती थी। इन सब  
 न दिवों के होते हुए भी सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि उपन्यास के पाठकों की  
 संख्या प्राणतौर बंन से बेधाय्यापी हो गई। जो भी व्यक्ति पढ़ने-लिखने वाला  
 या उपन्यास के सम्पर्क में था गया। बोडी सामग्री के मोम भी उपन्यास मोम  
 मेकर पढ़ने में तामर्ह हो गये।

पर जब प्रकाशक अपने कर्तव्य को न मूल कर केवल बनोपाजन को प्रपन  
 करय बना जाता है तो वह पाठक धीरे सेरक होना को ही लगभ्य बना देता है  
 कुछ लाभ मोचने हैं कि पाठकों की संख्या बढ़ने से पुस्तकों का स्तर नि  
 गया है पर बाग बालुब में दूसरी ही है। कुछ प्रकाशक कतिपय र्थों को  
 अपना प्राबिहार स्थापित कर लेते हैं धीरे वे पाठकों को बहो देन हैं जो  
 देना चाहते हैं। इस प्रकार पाठकों को प्रब उस प्रकार की पुस्तकों नहीं मिमता  
 है नीमी बन चाहता है बरन उमे उस प्रकार की पुस्तकों पसन्द करनी पड़नी है

जैसी कि उसे पर्यायी प्रकाशकों से प्राप्त होती है ।<sup>1</sup>

प्रकाशकों को भी अधिक दोष देना ठीक नहीं है । उन्हें तो एक उपन्यास के उपरान्त दूसरा उपन्यास छापने के लिये चाहिये क्योंकि जब उपन्यास छप जाय तो ईसा भी उपन्यास हो उसको बिचना प्रबन्ध है । अतः प्रकाशक आलोचक भी किराये पर रहते हैं । प्रकाशक के मन की आलोचना लिखने से जिन्हे अधिक भर्ष साम होता है, अतः वे पुस्तक कैंसी ही हो आलोचना इतनी आकर्षक लिखत है कि जिन्का पुस्तक पढ़ने का मन न भी हो वे भी उसे पढ़ने का प्रयत्न करें । उनके द्वारा माँग होने पर कम से कम पुस्तकालया में तो वह पुस्तक मंगवाई ही जाती है । इस प्रकार पाठकों की संख्या आलोचकों के आकर्षक बस्तब्य से बढ़ती जाती है, और दुमरी घोर पुस्तकों की संख्या बढ़ती जाती है । यह जब प्रकाशक द्वारा संभावित होता है । अतः अधिकतर लेखक-आलोचक और पाठकों की एक बड़ी संख्या भी प्रकाशक के इशारे पर नाचती है । इनमें से सीनो में किसी के भी व्यक्तित्व का कोई सूझ नहीं होता । इसका एक उपरिणाम यह हुआ है कि उपन्यासों की संख्या कितनी भी बढ़ क्यों न गई हो उनकी 'बचाविटी गिर गई है ।

उपन्यास का प्रकाशन प्रचुर संख्या में होने का एक पन्था पहलू भी है । प्राचीनकाल में साहित्य का संरक्षण पन्थे या बुरे उच्चवर्णिय-संरक्षकों (परिस्टो-क्रेटिक पैट्रुस) के हाथ में था । आधुनिक काल में बहो साहित्यिक संरक्षण प्रकाशक के हाथ में आया है जिसे हम पाठकों का पूर्ण सूचक एजेंट कह सकते हैं । संसार के सभी देशों में 'परिस्टोक्रैट' कहे जाने वाले वर्ग का ही साहित्यिक संरक्षण नहीं था । जर्मन जब तां धारम्म से ही और फिर धीमे ही आन्कीय संघ भी विधिष् प्रकार के साहित्य का संरक्षण करने लगा था । इंग्लैण्ड में तो संरक्षण प्रथा का हास १८ वीं सताब्दी के धारम्म से ही होने लगा था । कुछ समय तक साहित्य का आधिक पक्ष बढ़ा दुर्बल हो गया क्योंकि सामन्तों और धीमन्तों का साहित्यिक संरक्षण तो हट गया और पाठकों

1 Strangely enough, the spite of bad books is not due to the increase in the reading public. It is made possible by the way in which the tastes of that ever growing public are being served by the publishers. The reader no longer gets what he likes, he has to like what he gets from the publishing colossus.

की संख्या बड़ी नहीं थी। डा० आम्सन का 'ट्रैब स्ट्रीट' में संबंधित बीचन एवं उनका साईं वेस्टरफील्ड का साहित्य इतिहास प्रसिद्ध विरोध इन परिवर्तनों का संकेतक है पर इसके एक पीढ़ी के बाद ही प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि पोप ने केवल होमर की पुस्तकों के अनुवाद के बल पर ही प्रकृत पनरुधि उपान्ध की क्योंकि उद्यमशील तथा विश्वविद्यालय से संबंधित लोगों ने मानों की संख्या में उसकी पुस्तकें खरी लीं।

पर वास्तविक आर्थिक पुरस्कार मिलने का रूप केवल १६ वीं शताब्दी के आरम्भ में ही लघुलिखित इन से स्थापित हुआ। उस समय स्काट और बायरन ने साहित्यिक रचि एवं जनमत को प्रबल रूप से प्रभावित किया योन्पीम देशों में शान्तिपूर्ण और गेदे न मरक की प्रतिष्ठा एवं स्वतंत्रता होना की ही अत्यधिक परिमाण में वृद्धि को पाठक जनता की संख्या वृद्धि एवं आलोचनात्मक पथों (एडिनिबरा ऐंड स्मार्थरसी रिच्यु) ने साहित्य को प्रया स्वाधीन संस्था का रूप दिया जिसके समय में लिखते हुये सन् १८२० में ब्रास्वर ही बीएच में १८ वीं शताब्दी में स्थापित होने का दावा किया था<sup>१</sup>।

जैसा कि ऐंथनी बार्नहाइक ने दृढ़तापूर्वक स्थापित किया था १६ वीं शताब्दी की मुद्रित सामग्री की सबसे प्रबल विषयता उसका साम्यत्व अथवा निम्नस्वरीय होना नहीं है, बल्कि वा समझना चाहिये कि यह विषय कुछ अपने विशिष्ट जनतेजसोली अथवा विशिष्ट विषयवेषोली होना (स्पेशल इनेशन) है। बड़े मुद्रित सामग्री एक ही प्रकार की अथवा समान रचि वाली जनता को सम्बोधित करके नहीं प्रस्तुत की गई यह अनेक पाठकवर्गों में विभक्त है और परिष्कारस्वरूप अनेक विषयों-रचियों एवं उद्देश्यों में विभाजित<sup>२</sup> है। धीमती स्यू० डॉ० सीबिस की 'फिन्सल ऐंड द रीडिंग पब्लिक' को हन टीक ही रूप में बार्नहाइक के कथन पर समर्थन की सी टीका की संज्ञा है सकते हैं। वह इन बात की धार स्पष्टरूप से संकेत करती है कि १८ वीं शताब्दी का जो मुख्य पड़ना नीम लेता था जो शिष्ट लोग एवं विश्वविद्यालय के सम्पर्क में

1 Prosper de Barente *De la littérature française pendant le dix-huitième siècle* 3rd ed. 1822. (The preface is not to be found in the first edition of 1809 Barente's theory is brilliantly applied by Harry Levin in *Literature as an Institution* Accent VI (1946),—pp 159-60.

2 H THORNDIKE AVERY—*Literature in a Changing Age* New York 1921.—p 30

रहने वाले लोगों के द्वारा पढ़ी जाती थी पर कुमरो धार १९ वी सताब्दी के पाठकों की जनता पाठक वर्ग विविध बनता रहता ठीक नहीं बल्कि उन्हें पाठक जनता के वर्गों में विभाजित कहना ठीक होगा। हमारे समय की प्रकाशन मूल्यांकन और पत्रिकाओं के विकास में तो हम पाठक वर्गों की संख्या कई गुना बढ़ गई है। ए. स. १० वष के बादकों के लिए पुस्तक-कारि की 'बाजारपयोगी' पुस्तक हैं। हार्न मूल की समस्या वाले विद्यार्थियों के लिए समग्र पुस्तकें हैं। एकदली जीवन व्यतीत करने वाले माया के लिए कुमरो धार की पुस्तकें लिखा जाती हैं, इनके प्रतिरिक्त व्यापारिक मूल पत्र पारिवारिक एवं घरेलू जीवन सम्बन्धी साहित्य रचनाएँ पाठकालाओं के साप्ताहिक पत्राचार की रचनाएँ सन्धे कहानी में पूर्ण घटनापूर्ण रचना थी हैं। प्रकाशक साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ और लेखक नवी विविध प्रकार के साहित्य-सूत्र (स्पेशलाइजेशन) का उद्देश्य एवं रचनाएँ प्रस्तुत करते हैं।<sup>1</sup>

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी इसी तथ्य की उदाहरण है। प्रारम्भ में विद्वत् समाज का एक वर्ग होता था—वर्ग पंडित एवं साहित्य साक्षियों में। साहित्य का सेवन सामान्य के विद्यार्थियों एवं साहित्य रसिकों के सामान्यमान तक ही सीमित था। रीतिकालीन रूप तक की यही प्राचीन परम्परा थी। कुछ विविध वर्गों का सम्बन्ध इस साहित्य सेवन की भूमिका होती थी और कतिपय नुन रूप संस्कारों की रचनाएँ एक विविध वर्ग के पाठकों को प्राप्त हो सामान्य होती थी। परन्तु धर्मों के मूल में जम कर रह जाने के बाद और ईसाइयों के धर्म प्रचार के हेतु छापा जाने लगे धर्म पुस्तकों के बिना मुख्य विविध करने को प्रणाली ने पाठकों की संख्या में वृद्धि की। प्रारम्भ में यही भी साहित्य-सेवा व्यय के रूप में थी। जमका कोई साप्ताहिक पत्राचार न था बल्कि यहाँ सरस्वती एवं लक्ष्मी के परम्परागत बँद की माध्यम से साहित्य-सूत्र एवं विविधता का आवाहन एकदली सम्बन्ध जाता था। विरम मरम्भता के बरत पुत्र सामान्य में साहित्य सेवा के उपलक्ष्य में पुरस्कृत होने से पर हमने उनकी स्वतंत्रता में बाधा पड़ती थी। स्वाभाविक प्रवृत्तियों का सामान्यजन करने पर हार्न के पाठक की लक्ष्य बुझती जाती थी। समाचार पत्रों साप्ताहिक पत्रों एवं धर्म-पत्रों का प्रचार न गया बरकरार द्वारा स्थापित कालत्र एवं स्कूल के विद्यार्थियों के रूप में पाठकों की संख्या बढ़ी। उनके साथ ही साथ १९वी सताब्दी के प्रारम्भ में ही पत्राचार

इस की कहानी और उपन्यास की व्यवस्था होने से नये पाठक वर्ग की सृष्टि हुई जो केवल विशिष्ट प्रकार के उपन्यास ही पढ़ता था। वार्षिक पत्रों के लेखों के कारण एवं उपन्यासों की वार्षिक संख्या में वृद्धि के कारण लेखक का वार्षिक धारा बहुत से वार्षिक दूर हो गया। सरकार का ध्यान शिक्षा प्रसार की ओर होने से तथा ग्राम मुद्रा की योजना में सरकारों के केन्द्र तथा राज्य पुस्तकालयों की स्थापना से पाठकों की संख्या में और भी वार्षिक वृद्धि हुई। अंग्रेजी साहित्य के अनुकरण पर विभिन्न विषयों एवं विभिन्न वर्गों के उपयुक्त विशिष्ट साहित्य के उत्पादन की योजनायें भी कार्यान्वित हुईं। देश के स्वतन्त्र हो जाने से इस शिक्षा प्रसार एवं साहित्य के प्रसार में सरकार के सहयोग से और अधिक सहायता मिली है। पाठकों की संख्या-वृद्धि के साथ-साथ लेखक के पारिवारिक की भी वृद्धि हुई और भारतीय भाषाओं में जोड़ी के लेखकों की धारा अनादीत रूप में बढ़ गई। हिन्दी में प्रथम बार साहित्य के इतिहास में ऐतिहासिक प्रणाली के द्वारा एक लेखक को इतिहास से जोड़ने की सामर्थ्य सम्भव हो सकी है। इस प्रकार साहित्य के वार्षिक धारा का एवं लेखक की सामाजिक स्थिति का अध्ययन अभिव्यक्त रूप से पाठक वर्ग के साथ जुड़ा है।<sup>1</sup> उच्चवर्गीय व्यक्ति भी सुनने वाला ही कोटि में आ जाते हैं और यह बड़ी कड़ाई में लेखक से काम लेने वाला वर्ग है। यह केवल भारत प्रगता की कहानियाँ ही नहीं चाहते बल्कि अपने वर्ग की परम्पराओं को भी धरुण्ड रतना चाहते हैं। इससे और पहले के सामाजिक जीवन में उस समुदाय में जहाँ साक्षर-साहित्य का बोलबाला है लेखक और वार्षिक धारा के पाठक वर्ग पर ध्यान है। उनकी रचनाएँ यदि प्रकाशित होते ही पाठकों को धारकित नहीं कर लेती तो उनके व्यवहार का विस्तार पाठकवर्ग के मध्य में नहीं होता है। भारत के संभव के सम्बन्ध में वर्गों का स्थान विस्तृत ढीक इमो प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करने वाला होता है। लोगों ने टीवी के इन परिवर्तनों की ओर सफाई का प्रयत्न किया है जो कि संभवितर के जीवन के विभिन्न समयों

1 'Thus a study of the economic basis of literature and of the social status of the writer is inextricably bound up with a study of the audience he addresses and upon which he is dependent financially)

— JUDITH WARRREN & RENE WELLYK *Theory of Literature*  
— p. 95

में बुमानुभूत परिवर्तन के फलस्वरूप—'साठव बँक' में स्थित 'धोयेन एयर लोड' (जिसमें स्त्री-मुख्य एक साथ बैठने थे) ऐसे नाटकीय केन्द्र से हट कर 'मक प्लायर्स' (जो चारों ओर से बन्द था और वहाँ केवल उच्च-वर्गीय दर्शनकृष्ट होते थे) जाने के कारण हुए थे। धारम्भ में तो लखक और पाठक का परस्पर सम्बन्ध निश्चित करना सरल होता है पर धीरे धीरे कर यही काम उन समय बड़ा कठिन हो जाता है जब पाठक वर्ग का सीमता में संख्या विस्तार होता है, वह बहुत स्थाना में फैल जाता है और उसमें विविध प्रकार के तत्वों का समावेश हो जाता है तथा जब पाठक बनता एवं लेखक के बीच का सम्बन्ध सीधा न रह कर और अधिक गीण तथा सुमावधार हो जाता है<sup>१</sup>। पाठक बनना एवं लेखकों के बीच में होने वाले मध्यस्थों की संख्या बढ़ जाती है। हम कुछ इस प्रकार की मस्थापना और संबंधों के कार्यों का भी अध्ययन कर सकते हैं। जैसे मैसों काके कसब एवावमी और बिस्वविद्यालय। हम धारलोचना करने बाल पत्रों और मासिक पत्रिकाओं और प्रकाशन मन्त्रियों के इतिहास का क्रमिक अध्ययन कर सकते हैं। इस प्रकार के अध्ययन में धारलोचक को एक महत्वपूर्ण मध्यस्थ के रूप में लेना पड़ता है, साहित्य-पारखियों का समुदाय पुस्तक प्रती और संघ में रचि रखन वाले लोग कुछ निश्चित प्रकार के साहित्य को उड़ावा दे सकते हैं, और साहित्यिक जनों के संघ स्वयं वर्तमान लेखकों धरवा मावी लेखकों की पाठक बनता की सृष्टि कर सकते हैं। अमेरिका में बिद्येय रूप से वे रिनयाँ जो वेल्सेन के मतानुसार बाल्य व्यवसायियों के लिए स्थानापन्न व्यवसाय एवं क्लोपमोग की व्यवस्था करती हैं। साहित्यिक रचि को निश्चित करने वाली कर्मठ सक्ति बन गई हैं।<sup>२</sup>

साहित्य का कौनसा माध्यम सबसे अधिक सक्रियताली तथा व्यापक प्रभाव उत्पन्न करने वाला है इस सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय साहित्य शास्त्रियों में मित्र मत है। पर बीसवीं सदी के पूर्वार्ध के अन्तिम इराक के अनन्तर उपन्यास

1 AUSTEN WARREN & KYRLE WELLS *Theory of Literature*  
—p. 93

2 "In America especially women who according to Veblen provide vicarious leisure and consumption of the arts for the tired businessman have become active determinants of literary taste.

—*Ibid* pp. 93-96



विद्यार्थी तथा अध्यापकवर्ग के ह्रास में धार्मिक बग को साज सेने हुए हिन्दी उपन्यास के पाठकों की संख्या निम्न मध्य धरणी के विशिष्ट वर्ग में विनियोजन से बढ़ी। साहित्य-सोचियों का प्रायोजन करने वाली विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं काफ़े धीरे रेस्टा तथा विश्वविद्यालयों की हिन्दी परिषदों में उपन्यास के सुवस्तु पाठकों की संख्या में वृद्धि की। धार्मिक युग में कुछ प्रसिद्ध उपन्यासों पर जसचित्रों के बनने से भी कुछ उपन्यासों के पढ़ने की धीरे निरंतर भोगा की भी प्रभृति हो जाती है। धर्म की ( 'डब्लिड कापरफ़ीरड' प्रट एक्स्पेक्टेडन' 'प्राइड एण्ड प्रिडुबिस' गोन विथ दि किंग फ़ार हुमनि बेस टोस' ) स्वी डु धार्मिक ) फ़ेण्ड ( 'से मित्रेडुन 'काउन्ट घाठ मास्टैकिस्टो' ) स्वी ( 'बार ऐण्ड पीस' 'एना केरेनिना' क्राइम ऐण्ड पनियेन्ट इवर्स-कारमोन्वाव ... ) धार्मिक यूरोपीय मापार्थी में तो धर्मक प्रसिद्ध उपन्यासों के सवाक जसचित्र बन चुके हैं। हिन्दी में भी धर्मकी धीरे बंगमा ( 'दिनरास भीकन्ट 'पाकेर पांचाली' ) धीरे पुनरुत्थी ( 'पुष्पी बस्सम बैरनी बसूमाठ' ) उपन्यास पर धार्मिक जसचित्रों की धार्मिक 'देवदाम' सेवासदन' चित्रलेखा मछरी की धर्मी प्रभृति उपन्यासों पर धार्मिक चित्र बन चुके हैं। धीरे नये चित्र ( यथा 'मृगतयनी' पर धार्मिक चित्र निर्माण की क्रिया में हैं ) बन रहे हैं। उपन्यास के धार्मिककाल में निरंतर ध्यक्तियों द्वारा भी बड़ी संख्या में पढ़े जाने का धर्म केवल देवकीकन्दत जी जसो की 'जन्मकान्ठ' को है। पर धर्म धर्मक उपन्यासों का परिचय बिना पढ़-लिखे लोगों को भी जस-चित्र के माध्यम से प्राप्त होता रहता है।

### उपन्यास के पाठक का महुरव

इस प्रकार हमन देखा कि समय की यति के अनुसार उपन्यास के पाठक का महुरव भी बढ़ता जाता है। भागी संसार में हम समाज को चाहे जो नाम हैं पर समयों एक प्रकार का जीवन ( ऐजोमेलेइसाइज ) होने की धार्मिक मन्मावना बढ़ती जा रही है। हमारा युग धार्मिकों कीसत धीरे लफ़रिया का युग है। पहले का धार्मिक मनुष्य धर्म का धार्मिकों का संकेतक मानव बन गया है। हमारा धर्मिक परिचय-यत्र ( धार्मिकीस्टो काईसत ) की सख्या का मा है—एक निश्चित परिमाण में पोषक पदार्थों का उरमोन्ध मात्र जो बर्ष भर में कुछ सख्स लफ़रियों का कार्य करने वाले समुदाय को इकाई है। धार्मिकों की दृष्टि में हमारा कोई निश्चित मानव स्वरूप न होकर हम सब एक में लोगों की बड़ी संख्या हैं, जसकी दृष्टि में हमें धार्मिकीस्टोइस उदाहरण के लम्हे-लम्हे लोगों



के समान हैं ।<sup>१</sup> मानो हमारे सभी कार्य प्राप्त बनाने की सामग्री प्रस्तुत करने वाले होते हैं । कदाचित् प्राबुद्धिक उत्पादन के ढंगों तथा मनुष्या की बड़ी संख्या के घासन तथा बृहत् समाज के लिए एक साथ नियमों की रचना करने का प्राक्कल्पक परिणाम है ।

हम पूरे से किस प्रकार क लगे हैं इसका अनुमान हम विज्ञापना और चिन्तों को देख कर कर सकते हैं । उनमें हमारे व्यक्तित्व की परिधि घटाने संबंधित कर दी गई है । यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय की दो प्रमुख विचारधाराओं की प्रतिनिधि शक्तियों के रूप में यह बात सोवियत संघ तथा संयुक्त राष्ट्र दोनों के ही विषय में सच है कि इन दोनों देशों में सर्वोत्तम नागरिक बहा है या अपने को अपने भास-भास की परिस्थितियों के मेल में रखना सबसे अच्छी तरह से जानता है । इसका अभिप्राय यह हुआ कि आज के युग में उपयुक्त दोनों देशों में आदर्श-नागरिक बहो है या बिना किसी प्रकार 'मनुष्य' किये हुए प्रचलित प्रणाली की मीमांसा के अनुसार अपने को ढाल लेता है । यथा 'रजसु म राज्य' (स्टेट) क अनुरूप बनकर रहता है और अमेरिका में महान् उत्पादन धार विज्ञान के अभियान में सहायक सिद्ध होता है ।

पर वास्तव में जैसा ऊपर बताया गया है यह सब मानव का बाह्य रूप है और अन्य सभी गुणों में अधिक इस समय इस बात का बल लेकर कहने की आवश्यकता है कि मानव केवल सामाजिक प्राणी बनना चाहेगा का सबसे बड़ा भाग नहीं है । वह व्यक्ति है, मनुष्य है, उसके आत्मा है जिसका ऊर्ध्व कल्पना करना है और, उसका व्यक्तिगत एकान्त जीवन है—वह ऐसा मनुष्य है जो अपने लिये सभी संभव सामाजिक सेवाओं के उपलब्ध होने के परचास भी अपने को निरावृत्त एक एकका पाता है । यह सत्य प्रायः राजनीतिज्ञों के चाहेके प्रस्तुत करने वाले कार्य-वास्तविकता उपमात्त्र सामग्री क उत्पादका और उन लोगों की दृष्टि से भी जो इनका विज्ञापन करत है धारण रहता है । वे सब इस तथ्य को विस्मृत कर देत हैं क्योंकि इनका ध्यान न रखने से उनको धीरे-धीरे अपनी मध्य का समुचित होता है । शीघ्र ही इन बात की धीरे भी अधिक आवश्यकता है कि उन्हें निरन्तर इस बात का स्मरण दिमाया जाता रहे ।

इन्हीं उपयुक्त कारणों से वास्तविक माहिस्य की सर्वाधिक प्रभाव वाला विधा के रूप में उपस्था का कार्य इतना महत्वपूर्ण है । राज्य राजनीतिक

पार्थी प्रथम दार्शनिक सिद्धान्त धीरे-धीरे विचारण के बाद एबन्ट सभी शोधित मनुष्य को विज्ञान साक्षात्कार रूप दे देता है। ई मानव के ऊपर से बना का धारणित करने हुए उन के एक संघ का सम्पूर्ण मनुष्य कह कर पुकारते हैं। पर उनको बना कर कही गई बात का संशयोद्घ उन्मत्त के हाथ हो चुका है या होना चाहिये क्योंकि उन्मत्त एक ही मानव के स्वयं करने साथ ही गहा-कारिता होने के परिणाम-स्वरूप होते हैं। उन्मत्तकार धारणितक बिना किसी प्रकार का उन्मत्त विज्ञान उन्मत्त की सभी मनस्वियों को पश्चिम के सभी लोगों को एक कसौटी पर बसता है। किस प्रकार व्यक्ति को मनुष्य का समाज की इकाई के रूप नहीं उन्मत्त प्रथम उपभोक्त्य के रूप में नहीं बरतने के छोड़ने में पूरे के रूप में नहीं बरत मनुष्य के ही रूप में प्रभावित करते हैं, वह प्रथम बसु की व्यक्तिगत साक्षात्कार मनुष्य की कसौटी के स्तर पर लीजता जाता है।

वस्तुतः उन्मत्त मनुष्य के रूप एक व्यक्तिगत व्यक्ति विचारण एवं उसके उपभोक्त्य कर्मियों के विरुद्ध एक प्रकार का प्रथम साक्षात्कार धारणित है और उन्मत्त-कार धारणितक में मानव सहानुभूति के बोन को प्रकट करन साथी पक्षियों के विरुद्ध मानव-रूप के पक्ष में प्रतिवाद करने वाला बसा एव बोकेन है।

यह एक बड़ा काम मान कर हुए में उन्मत्त पर धारणित है और यह प्रथम मानव सहानुभूति के बोन के कार्य में बसा रहता है। इन कार्य में अपने को किसी रूपरे के स्थान पर रख कर दूसरे व्यक्ति को सामाजिक माध्यम में प्रथम का स्थान धारणित रहता है।

साठक की मनुष्यता का उन्मत्त विवेचनसाक्ष्य की एक ही पर धारणित मनुष्यता का भी कसौटी का धारणित हमारे मानने लाता है।

मनुष्य में हुए देखा कि विज्ञान प्रथम धारणितक का मनुष्य साठक की पर धारणित में है उसी प्रकार मनुष्य का मनुष्य उन्मत्त का धारणित म है। धारणित का मनुष्य धीरे-धीरे उन्मत्त मानव का लक्षण रहा है। पाठक की वृत्ति एवं साक्षात्कार उन्मत्त का लक्षण है। साठक के विचारण में उनके धारणितक में धारणित की वृत्ति का विचार स्थान रहा है उसी प्रकार उन्मत्त के निर्माण धीरे-धीरे प्रथम धारणित को वृत्ति का धारणित करते रहें हैं। यही कारण है कि प्रथम धारणित (धारणित) की धारणित प्रथम उन्मत्तों की संख्या भी धारणित है। उन्मत्त धारणित का धारणित विचारणसाक्ष्य माध्यम है। मन की निम्नधारणित की धारणित करन करन होता है। वह धारणितक रूप के धारणित धारणित उन्मत्तों के धारणित

पाठक के मनोविनोद की सामग्री रखती है। इस प्रकार के उपन्यास पाठकों की नज़रों में 'शौच के प्रश्नों' और 'बाँट के पूरे लोगों' में हाती है। यह जिस किस्म की शक्ति से मिलता है।

पढ़ने के साधन पुस्तक या सुलभ होना ही तो पाठक की संख्या बढ़ती-बढ़ती है। सरकुलेटिव लायब्ररी 'बल्लार-किरठा पुस्तकालय' केन्द्रीय-पुस्तकालय स्थानीय पुस्तकालय 'विद्यालय का पुस्तकालय' 'बर्मीय पुस्तकालय' 'सहयोगी संस्था' 'बबबा धम-केन्द्र का पुस्तकालय' 'विषय विरोध का पुस्तकालय' 'शोध मन्दिर का पुस्तकालय'—यदि सब पाठकों की संख्या बढ़ाते हैं और पाठकों की संख्या बढ़ने उपन्यास के अधिक संख्या में विकले से लेकको का उत्साह बढ़ता है और प्रकाशक पुस्तक का कमबल सजाने में रुचि लेते हैं। इस प्रकार पुस्तक के मुख्य में भी कमी हा सकती है। क्योंकि जितनी ही अधिक पुस्तकें उपन्यास ही श्रम्य अपसाइट कम होया।

विचारों के प्रचार के रूप में पाठक कभी-कभी राष्ट्रीय विद्यमानों का काम न कर उपन्यास पढ़ता है। इसके साथ मालबरो में इंग्लैण्ड के महान् राजाघात इतिहास का प्रसिद्धि के नाटक का पढ़कर जाना या। जब पाठक का स्पृहा उपन्यास के माध्यम के ज्ञान-संबंधन की हा जाती है ता उपन्यास के बर्ष-विषय की संख्या और सोमा का विस्तार <sup>कम</sup> जाता है ता उपन्यास जलबधि के परिष्कार की पाठगाला बन जाती है। कम की पचक योजनाघात को सर्वप्रिय बनाने में वहाँ के भेदक (विषय) शोधनसिद्धि) में बड़ा काम किया था। भारत के नव-निर्माण कार्य में भारतीय भाषा उपन्यासों का अनुदान इसमें कम महत्वपूर्ण न होगा।

जल-तन्त्र तथा उपन्यास का बड़ा धनिष्ठ संबंध है। जलतन्त्र की भाषा उपन्यास करने उमे घामे बढ़ाने में उपन्यासों का महत्त्व प्रत्यक्ष साक्ष्यक है। साथ ही हमें यह भी मानना पड़गा कि जलतन्त्र प्रथम जलतन्त्र का जो नीच-नाचना उपन्यासों के सुजन में महत्त्वक हुआ है। जलतन्त्र का इतिहास किया जाता है कि व्यक्ति अपने स्वातन्त्र्य का उपयोग कर विविध मुस्या का माध्यम होने बास मनुष्य अपनी-अपनी विद्या में घा और इस पर भी समाज का जलतन्त्र में घे अधिक सहायता ब मने हमें बहुमुता इष्टि घपिकाधिक महानुभूति महिष्युता तथा घा वाचित्त्व की प्राप्ति के लिए हम कार्य में हमारा हाथ बढ़ाता है।

एक और उपन्यास सब एक दूसरे को प्रेम करते हैं। उपन्यास का प्रबुद्ध पाठक 'वर्ग व्यक्ति के पुनरुत्थेपण' में व्यस्त होता है। व्यक्ति की महत्ता नैतिक दायित्वों का निर्वाह करने की क्षमता तथा स्वयं अपने और अपने, राष्ट्र के भविष्य को प्रभावित करने की शक्ति पर वे सामूहिक रूप से विशेष बल देते हैं। भाव का सुसम्भ्र हुआ पाठक तथा आलोचक दोनों ही उपन्यास की प्रसिद्धि प्युता तथा महत्ता का मनी भाँति अनुभव कर रहे हैं।

उपन्यास की महत्ता अनुभव करने के साथ-साथ भाव के उपन्यास क पाठक को अपने नये दायित्व के रूप में एक और सहायक कृत्य का ध्यान में रखना है कि वे उपन्यासों के आलोचक में जीवन को हृदयमय करने की चेष्टा प्रवर्धन करें किन्तु उपन्यासों द्वारा चित्रित जीवन को उत्पन्न की चरम स्थिति न समझें। उन्हें उन उपन्यासों में बहिष्कृत जीवन को एक सामाजिक प्रयोग का महत्त्व देना है। इस संबंध में उन्हें एक सावधानता भी बरतनी है कि वे प्रवृत्तियों को सिद्धान्त न समझें।

उपन्यास क पाठक को जिज्ञासु बनना चाहिये। उसे उपन्यासों के अध्ययन में जातिगत विश्वासघात तथा भाषायत पूर्वाग्रहों (कतिपय दुःखदृष्टियों) से अपने को मुक्त रखना चाहिये। कुछ पाठक अपने प्रिय विषय संबंधित उपन्यासों को ही सब से उत्तम उपन्यास समझते हैं। ऐसे पाठक अपने विषय के कितने ही बड़े पंडित क्यों न हों वे उपन्यास क अच्छे पाठक नहीं बन सकते। हिन्दी उपन्यासों क पाठकों के संबंध में यह बात विशेषरूप से लागू होती है। धस्तु उसे व्यक्तिगत विश्वास से ऊपर उठ कर अपने नैतिक पूर्वाग्रहों को भुल कर पूरी सहाय्य के साथ विभिन्न प्रांतीय एवं विदेशी भाषाओं के श्रेष्ठ उपन्यासों को मौलिक प्रवर्धन अनुचित रूप में अध्ययन करना चाहिये। यदि पाठक ऐसा नहीं करता तो उसका दृष्टिकोण-पूर्वाग्रह बाधित हो जाता है और जिस और राष्ट्रीयता प्रवर्धन विचार साम्यता के कारण उसका दमन होता है। उसी मौलिकता के कृति को वह प्रवर्धन समझता है तथा उसकी तुलना में अन्य सब कारणों से निरिच्छत रूप से प्रवर्धन कृति की ओर पक्षपात पूर्ण दृष्टि निर्माण कर उसे उसका वास्तविक सम्मान नहीं देता<sup>1</sup>। एक भावमय पाठक को इस पक्षपात से सबंध दूर रहना चाहिये।

1 The nationality of a reader leads to certain works an interest that inclines him to attribute a greater excellence to them than would generally be admitted"

एक अच्छे पाठक में इसके अतिरिक्त कुछ धीरे-धीरे कुलों की भी अपेक्षा होती है। कभी-कभी बुद्धिमानीपूर्वक रूप से उपन्यासों के बहुत-से पृष्ठों का सबका एक पृष्ठ पर ही अविचारपूर्वक मुद्रित सामग्री को छोड़ते हुए पढ़ना पड़ता है। 'बैसासी की मगर बधू' के बुद्धिमान पाठक इस पुण्य के उपयोग के लाभ को विशेष रूप समझ सकते हैं। जिसमें बरा ही समझ है वह उपन्यास को दूसरे के द्वारा दिया हुआ दियागी काम समझ कर नहीं पढ़ता। वह तो उस का उपयोग मन बहलाने के साधन के रूप में करता है। वह उस उपन्यास की दुनिया में कुछ समय के लिए रम जाता है<sup>२</sup>। फिर आगे बढ़ता है पर जो उपन्यास का सारा भाव है— वहाँ उसकी रक्ति कैविल है और वह उन स्वप्नों को उसी तरह खाता से पाता बसता है जैसे एक चिकारी कुत्ता केवल सू-सू-सू कर मोमड़ी का पीछा करता है। कभी-कभी लेखक की भुटि के कारण वह मटक जाता है। तब फिर वह हजर-उजर बहकर उस समय तक काटता है जब तक उसे अपना मशहूर मार्ग फिर नहीं मिल जाता और तब फिर वह झलांग भरता है।

एसाब तो हर एक मारता है पर बिना आवश्यक एवं वाञ्छित घस छोड़ें हुए झलांग मारना सरल नहीं है। इसे हम प्रवृत्तिगत कुछ कह सकते हैं अर्थात् इसे अन्वेषण से ही प्राप्त की जाने वाली कोई विशेषता समझ सकते हैं। डा० जाम्बून पढ़ने से भीखल रूप से एसाब मारने के सिद्धे प्रसिद्ध था। साइबेल के अनुसार यह उनका विचित्र कुल था। वह लिखता है कि पुस्तक का वाचस्पत पढ़ बिना ही जाम्बून पुस्तक के सभी आवश्यक तत्व हृदयबल कर लेते थे। साधारणतः हम तरह का पढ़ना कुछ अच्छा ढंग नहीं होता और अच्छे उपन्यास का समझ-समझ पढ़ना आवश्यक होता है, पर किन्हीं-किन्हीं पुस्तकों के संक्षेप में इस ढंग को अपनाया ही पड़ता है। साधारणरूप से पाठक को वैयक्तिक होना आवश्यक है जिससे वह १००-४०० पृष्ठ एकसाथ पढ़ सक। पाठक के इतने अध्ययन की अपेक्षा तो लेखक करता ही है। वह पाठक से इस बात की भी अपेक्षा करता है कि उनकी कल्पना की मात्रा इतनी ही होनी ही चाहिए जिससे वह लेखक के द्वारा प्राविष्ट कथियों के जीवन कुछ धीरे-धीरे मन और साहसपूर्वक रूपों में बहि ले सके।

2 "The wise reader will get the greatest enjoyment if he learns the useful art of skipping. A sensible person does not read a novel as a task. He reads it as a diversion." —*ibid.*—p. 2

पाठक के नव शक्ति की सर्वा करके हुए यह बताया जा चुका है कि उपन्यासों के समय के बीच में होकर अपना मार्ग निश्चित करने के लिए पाठक को प्रत्येक घासोपार्श्वों की सम्मति तथा पथ प्रदर्शन पर निर्भर रहा रहना है। इस मार्ग-सोपान तथा उसके बीच में रमने के स्थलों की मात्रा उमा (पाठक) का करनी है। प्रत्येक उपन्यास का पठन मनोरंजन के लिए होता है और यदि वह हमारा मनोरंजन नहीं करता तो जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है उस उपन्यास का कोई मूल्य नहीं है। इस दृष्टि से प्रत्येक पाठक को अपने प्रत्येक घासोपार्श्व का काम भी करना है। हमी अपने लिए प्रत्येक घासोपार्श्व उपन्यास की खोज कर सकते हैं। क्योंकि हमी अपने को अपनी गति को और अपनी प्रावृत्तता को सब से बढ़ कर जानत हैं। सावधानी से समझने से पाठक को पता चलता है कि वास्तव में 'प्रियेन्दा इज बेटर दैन क्योर' के मित्रानुसार उपन्यास में अनुभव की मूर्तों का निराकरण होता है। उपन्यास इस प्रकार उभे मानसिक मूर्तों एवं रोमों के लिए 'हा-बीज' के मान की समता करता हुआ अपना। उपन्यास का अध्ययन दूसरों की बुद्धिमत्ता को पाठक की बुद्धिमत्ता बना देता है। इस प्रकार प्रत्येक उपन्यास के अध्ययन के पश्चात् पाठक को अपनी बुद्धिमत्ता बढ़ती हुई लगती। पर साथ ही यह भी मध्य है कि बेवक उपन्यास पढ़ने से न तो मानसिक रोमों एवं मूर्तों का प्रतिबन्ध ही होता है और न पाठक की बुद्धिमत्ता ही बढ़ती है। उपन्यास में बुद्धिमत्ता के अनुभव का बीज इसी प्रकार दिया जाता है जैसे मूग में दाना। पाठक को यह महत्त्वता बरतनी होती है कि वह नाम-बीज की तरह उस मूग ही को अपना खान न बनाए, बल्कि बीजक की यत्ति मत्त बनाए की प्रक्रिया के माध्यम की महत्त्वता से जीवन के अनुभव प्रकटित करे।

हमके सम्यक अनुशीलन में एक बात का ध्यान पड़ा लगता है। जिस प्रकार उपन्यास में पाठक जीवन पढ़ता है उसी प्रकार वास्तविक जीवन में पाठक तथा उपन्यास पढ़ सकता है। इस सच्चे उपन्यास के साथ अपनी वास्तविक घासोपार्श्वों की प्रकृति एवं प्रकृत प्रभाव वाली भावनाओं के द्वारा अपने अन्तर का परिचय देते हैं जिनमें प्रकृत स्वयं मत्तक का भावनाओं की तीव्रता पर निर्भर रहता है।

### पाठक और घासोपार्श्वता

प्रारम्भ में विषय को समझने की सुविधा के लिये विनम्रता से पढ़ने और जाना-बनायक दृष्टि से पढ़ने के दो भेद बना लिये गए हैं। पर वास्तव में इन

केरा को होना नहीं चाहिये। जो पाठक केवल विनम्रता से ही पढ़ना जानता है वह अपने अपने पढ़ने वाली प्रत्येक साहित्यिक कृति को बिना किसी मेर-जाब के अपने उपभोग की सामग्री बनाता रहेगा। पुस्तक पढ़ना एक प्रकार का अनुभव है, पर कुछ अनुभव अन्य अनुभवों से अधिक मुख्यवान् होते हैं। अस्तु, जब पढ़ना समाप्त हो जाय तो जो कुछ भङ्ग लिया गया है उसका मुख्य-निर्धारण प्रत्यक्ष हो जाना चाहिये। किसी भी उपन्यास का अनुचित सुस्वागत करने के लिये पहले के घोर घत्र के अन्य उपन्यासों का विस्तृत ज्ञान अर्थात् आवश्यक है।

यह कार्य केवल एक ही समय के उपन्यासों के पढ़ने से सम्भव नहीं हो सकता है। सभी प्रकार की आलोचना का आसार तुलना होती है। इस तुलनात्मक ज्ञान की विधि एक प्रकार से लिये हुए उत्तमोत्तम ग्रन्थों के परस्पर सम्बन्धित आलोचनात्मक सम्मेलन के द्वारा ही सम्भव होती है। इसलिये हमें पहले के अनेक उपन्यासों और घत्र के अनेक उपन्यासों का तुलनात्मक सम्मेलन एक साथ करना चाहिये<sup>1</sup>।

उपन्यासकार का भी उसकी कला के प्रति कुछ दायित्व होता है। उसे उपन्यास की परम्परा के प्रति घोर उपन्यास के अधिक्य के प्रति विशेष उत्तर देना पड़ता है। इनमें से प्रथम का अन्तिम होता है—बीबल के अनुभव के प्रति ईमानदारी होना। मार्क ट्वेन के मतानुसार इस बात को स्मरण रखना कि उपन्यासकार को अपने यथार्थ पर पड़े हुए मनुष्यों एवं वस्तुओं के प्रति बिम्ब को उसी सच्चाई के साथ कहना है मानो वह सचो के रूप में ईश्वर की सपना लेकर सब कुछ कह रहा है। हम इसे उपन्यासकार की ईमानदारी कह सकते हैं और यह पाठक का काम है कि वह देखता रहे कि उपन्यासकार अपनी ईमानदारी को स्थिर किये हैं और ऐसा वह अभी कर सचता है जब वह सभी ईमानदारी पर स्थिर न रहने वाले उपन्यासकारों को अपने म दूर रखे।

1 "One cannot have one standard of judgment for the work of the past and another for the work of the present. The basis of all criticism is comparison, comparison with the best achievements in the particular medium being criticised. And this is one reason why the reader should mingle his reading of modern fiction as much as possible with a reading of the classic novels for ultimately they are the tests with which contemporary work must be judged."

इस सम्बन्ध में पाठक का कर्त्तव्य उपन्यासकार के कर्त्तव्य से कुछ बट कर नहीं होता क्योंकि उगो (पाठक) के प्रोत्साहन एवं ईमानदारी से किये गए प्रयत्न के प्रति सहानुभूति के द्वारा ही उपन्यासकार उसको ऐम ब्यस्त मनुष्य के रूप में स्वीकार कर सकता है जो कि निरपेक्ष तब से समय के प्रतिपादन में रुचि लेता है और ऐसा पाठक ही इस प्रकार के मानसिक बातावरण की सृष्टि कर सकता है जो ईमानदारी से लिखे जाने वाले उपन्यासों को समय के प्रवाह के बिना किसी एकाकी की सबसे पृथक कोटि की रचना न बनने देगा (जैसा कि प्रायः रोमा रोसा प्रथम प्रकाश के उपन्यास में देखा जा सकता है) प्रत्युत सबसे बड़ कर अपने घरों में पाठक और लेखक को बीच में स्नेहपूर्ण सहकारिता के भाव के परिणामस्वरूप धारण एवं सज्जत रचना बनाएगा।

वास्तव में प्रायःक युग को उसी प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती हैं बिनाके उपयुक्त बहू होता है। यह उपयुक्तता पाठक के धर्मबन्धन पर निर्भर होती है। अतः पाठक का कर्त्तव्य यह भी होता है कि उसका पुनः मित रचनाओं के उपयुक्त है उनमें से ही चुन कर अपने लिये धर्मयम कर्म का निर्धारण करे।

इसी प्रकार अतीत की विशिष्ट रचनाया के सम्बन्ध में भी अपने मत को निर्धारित करना चाहिए। समय की रुचि के परिवर्तन के कारण कभी-कभी हम अतीतकाल की प्रमुख रचनाओं को भी उनका उचित महत्त्व नहीं दे पाते। शक्यपियर और कामिदास भी इससे नहीं बच पाते। नवीनता में ही रुचि रखने वाले लोगों को फ्रीडिंग और बैबकीनमन की रचनाएँ अपरिभाषित एवं अद्विकोटी की लगती हैं। डिक्सेस पीकरे, प्रेमचन्द और अनेक आकस्मिकता से अधिक सुधारत्रिय एवं स्थियों की ही चिन्ता से एकांतरप से व्याकुल रहने वाले प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार कुछ लोगों को आधुनिक उपन्यासों में कुछ नहीं मिलता। क्योंकि पाठक एवं समय के साथ सहानुभूति एवं सहानुभूति के समाज में उपन्यास में जो दृष्टिकोण है उसे देख नहीं पाता इसका कारण है—समय और स्थान की प्राचीनता का भाव।

लेखक उपन्यास लिखता है और पाठक पढ़ता है। आलोचक को तो कोई गिणता ही नहीं है। प्रेमचन्द बहा करते थे— 'आलोचकों के लिये बोन मिलता है। उपन्यास के अक्षरी आलोचक होते हैं उसके पाठक—य पाठक जो किसी भी रूप से कोई साहित्यिक होने का हम नहीं करते जो पढ़ते हैं, कुछ अपना कर्म करके अपने धर्मकाय के समय में बिचको के केवल मनोरंजन में लगाया जाते हैं किसी उपदेशवार्ता में नहीं। वही पाठक श्रीनर-बुध-स्नात पर—



स्वामी या ब्रह्मती फिट्टी या सरकुलेटिव साबडोरी के रजिस्टर के पत्रों पर उपन्यासों की सही क्रियात्मक प्रालोचना लिखता है। इन सब के पास पहुँचा कर जो उपन्यास प्रालोचक के पास पहुँचता है वह प्रालोचक की सही पाठ्य प्रणाली में रजिस्टर्ड हो जाता है और जो उपन्यास इनके पास न पहुँच कर प्रालोचक की मेजबानी से अपनी प्रशस्ति लिखवाता है वह संग्रहालय की शीब नते ही बन जाय पर अन-साधारण की दृष्टि ( जो कभी साधारण नहीं होती ) में उपन्यास नहीं होये। इसके साथ ही कुछ पाठक की महत्ता को यह ज्ञान भी रहता है कि पटना केवल पत्रे पस्तता नहीं है।

उपन्यास में जो है और वही होता है उसको उसी प्रकार से प्रस्तुत करना सफल बसाकार की निधि होती है जिसमें जो अच्छा है उसी को करने का लेखक की ओर से उपदेशक का-सा माण्ड न होते हुए भी पाठक को उपदेशक की ओर स्वतः माह प्रकृति हो जाय अपने ध्यान बिना यह अनुभव किय कि लेखक का उद्देश्य ही उस अच्छाई को पाठक के ऊपर बोधना है और बुराई तो जीवन के परिभाष्य धर्म के रूप में करने तन्म से तन्म रूप में पाठक की पाठक के मन में लेखक का 'एडिब' माह न है और उपन्यास का प्रभाव वही पढ़े जो जीवन का पढ़ता है जिसमें पाठक की प्राण प्रत्येक समय केवल बुराई पर ही नहीं रहनी। इस प्रकार का प्रभाव पत्रे-पत्रे के 'मेडम बोधरी' पत्रे-पत्रे के 'यामा बि पिट' वीनेत्र की गुनीता' ग्रंथ की बहती पत्रे-पत्रे के 'दादा-कामरेड' में देखा जा सकता है।

इस प्रकार हमने देखा कि प्रालोचक पाठक का कार्य एक रचनात्मक बसाकार का-सा होता है। वह अपने लिए उपन्यास को संसार को अपने रूपना के बीच में प्रणुबान बना कर प्रतिमान करता है। लेखक उपन्यास में बिचारे जीवन को घटा की सीमा में बाँधता है। प्रालोचक-पाठक पहन ता उसे राधा की सीमा में स्वतन्त्र कर बन्धना के विस्तार में मुक्त करता है और फिर उस मुक्त संसार में उपन्यास के जीवन व्यापार के मोन्दर्व को अपने ध्यान में बाँधता है। लेखक के विस्तृत मनोराज्य में ध्यान के लिए प्रवेशक शीब की भाँति उसका उपयोग करता है। वह ऐसा करके कभी-कभी अपने ऊपर प्रभाव को सिपिबद्ध कर अपने से कम पैसा वाले पाठक को अपने ध्यान में प्रदर्शन भी करता है। अपने ध्यान में एक निरिचय धर्म का समावेश कर लेने के पदबाध पाठक प्रालोचक कभी-कभी विपुल प्रालोचक भी बन जाता है और तब उसकी नतिधीनता बहुमुखी हो जाती है।

हिन्दी उपन्यास सिन्धु के विकास में 'त्रैनेत्र' धर्म 'धर्म' और 'श्री' की रचना प्रकृति में इस दिशा में संशोधन से भी अधिक मौलिक विगुटना नवीनतम रचना-धर्मियों की उद्भावना हुई है—

- (घ) वर्तमान काल के विकास में चिन्तन-मग्न करना
- (ङ) चरित्र-विशेष के स्थान पर चरित्र-विश्लेषण करना
- (च) कर्म-विशेष और वर्तमान के विकास-क्रम में कर्म-मेरुस्थलों और चिन्तन-कृतियों का अनुभव करना ।
- (द) सेनाक का धर्मोपदेश के स्तर में हट कर इष्टा-वदन का धारण होना ।

(ध) उसका कथा-वाहक के स्थान पर भाव-वाहक बन जाना ।

इस नवीन एवं मौलिक स्थापनाओं के फलस्वरूप इन उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में से बेहोश-वृत्त के धर्म छूट कर निकाल दिये त्रिभू पाठक अपने आप समझ सकते हैं । इस प्रकार कथाकार ने पाठक पर विशेष दायित्व छोड़ दिया है और उन्मुखी प्रति में उसकी समस्या का अन्त-स्पर्धी कार्य-कारण और पाठों को अन्त-कक्षा और वर्धन की सीढ़ी है ।

### भाषी उपन्यास और पाठक

प्रायः लोगों की यह धारणा है कि उपन्यास का महत्त्व समय बीतने के साथ-साथ कम होता जायगा । पर वास्टर ऐसेन<sup>१</sup> लिखता है कि धीरे-धीरे वर्षों में उपन्यास का महत्त्व कम होने के स्थान पर और अधिक बढ़ जायगा । उपन्यास के महत्त्व के बढ़ने के साथ-साथ भाषी उपन्यास का पाठक वर्ग का दायित्व भी बढ़ जायगा । आगामी जीवन बहुत-कुछ धर्मों में वैज्ञानिक यांत्रिक तथा एक-सा होगा उस एक-ही सामाजिक समाज में एक-ही अर्थव्यवस्था का महत्त्व नगण्य-सा होगा । भाषी उपन्यास के पाठक बन अपने व्यक्तित्व की खोज उपन्यास के ही माध्यम से करने की चेष्टा करेगा । एक पाठक और एक उपन्यासकार परस्पर इकाई की धरती एवं उसके महत्त्व को रक्षा करने के लिये समझौता सा करेंगे । भाषी पाठक के दायित्व का एक धर्म यह भी होगा कि वह अपनी सहानुभूतिपूर्ण एवं उच्च प्रशंसालयक भावोत्पत्ति के सहारे ऐसे वातावरण की सृष्टि करेगा जहाँ उपन्यास की भाषी रचनाओं से प्रत्येक पाठक

१ धर्मोपदेश—(उपन्यास अ. ८)—पृ० १३६ ।

२ WALTER ALLEN—*Reading a Novel*—P 23.

मौलाना दर्शन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश पाने की कामना धीरे निश्चित रूप से प्राप्ता करेगा। भविष्य में साहित्योत्तर बांग्लादेश का प्रत्येक सौजन्य उपासक और नवीनतम सीमा का प्रयोग करते हुए अपने विद्यालय ज्ञान भण्डार को सहज रूप में साक्षरता के धारण से ही अपने को पाठक में उतारने का सूक्ष्म एवं सफल प्रयास करेगा। तब हम उपासक पढ़ कर शिक्षण विज्ञान का प्रारम्भिक परिचय पायेंगे। यही बात सभी प्रकार के कैरियर के सम्बन्ध में सत्य होगी। सभी प्रकार के साहित्य कला संश्लेष एवं विज्ञान के विषय में भी सत्य होगी।

भाभी उपन्यास निश्चित रूप से पाठक को नवीनतम अनुभव और संतोष प्रदान करेगा। वह नये क्षेत्रों में अपने प्रभाव का विस्तार करेगा और पाठक के लिये नई सम्भावनाओं की उद्भावना करेगा। कभी-कभी चरित्र के धीरे सूक्ष्म विस्तारण के साधन रूप में पाठक को व्यक्तिगत के उन व्यक्तित्वों का धार्मिक परिचय करेगा। जहाँ का धार्मिक उपन्यास को ध्यान भी नहीं है। पर साथ ही साथ भाभी पाठक को इस बात का भी ध्यान रखता है कि कहीं धार्मिक धार्मिकता के बोध में लक्ष्य ने चरित्र को इतना सूक्ष्म तो नहीं कर दिया कि वह अपनी सूक्ष्मता में अपनी भीतिरता ही खो बैठा हो। उसे संश्लेष पाठक रचना होया कि धार्मिकताप्रत्येक साहित्य लोगों के विषय में कहानी कहने की कला है।

कोई तो यह सोचता है कि पाठकों के माध्यम से भाभी उपन्यास का प्रधान अनुषंग पर इतना पढ़ सकता है कि वह मानव समाज का कायापलट ही कर दे। कोई भी यह धारणा कर सकता है कि कला कास्मिक लोगों के विषय में कही हुई कास्मिक कहानियाँ संसार में कौनसा परिवर्तन ला सकती हैं? और यह तो निश्चय ही है कि किमो सामान्य पाठक को हम प्रकार के प्रत्यक्ष की धारणा भी नहीं होती। जो लोग इस प्रकार की बात सोचते हैं वे और सब बातों के विषय में तो सोचते हैं पर न तो उपन्यासकार के विषय में सोचते हैं और न पाठक के विषय में ही कुछ सोचते हैं। भाभी पाठक तो उपन्यासकार से जतनी ही और उस प्रकार की प्राप्ता करेगा जो वह पूरी कर सकता है। लेखक को उल्लेखनीय भी इतनी है कि वह अपनी सम्पूर्ण अभिव्यक्तियों के प्रति ईमानदार रहे। वह अपने पाठकों को पचास बीस का दर्शन करा

सके माय ही उम धारणों की भी प्रवृत्तारण धरणी कृति में कर सके जिनके माध्यम से जीवन बन जाता है। बन्धुन-जीवन स्वयं एक कमा है। धीरे उपन्यास एक कलाकार है। उसे जीवन की कथा को ऐसा महोरम रचना करना है जो सत्य और विश्व के माध-माय परम मुन्दर एक रमणीय है। पाठक को सेवक से यही धारा है।

भाषी उपन्यासकार धन कर्तव्य को समाप्ति समझेगा और जो भाषी पाठक होंगे वे उससे उसी बात की धारा करेंगे जो वह सदैव से हर उपन्यास कार से धारा करते हैं वे सत्य नर के मिय एकान्त की प्राचार का नैदना चाहते हैं और धन जीवन की प्रामाणिकता के मिय धूमरे के जीवना में कुछ न कुछ पा जाने हैं और इसके अनिश्चित कुछ धीरे भी जो स्वयं उनके जीवन में उन्हें नहीं मिला पाया।

ऐसे मन्त्र के क्षण भाषी पाठक को विरम ही प्रवृत्तारण पर मियेसे इन क्षणों का सब धीरे मिला कर भी कुछ अन्ध समय न होगा पर इतल ही थोड़े समय में भाषी पाठक को परम्परा के क्रम से ऐसा कुछ प्राप्त हो जायेगा जो उसके पास पहले से नहीं था—धीरे जो वह प्राप्त करना चाहता था धीरे जो उसको प्राप्त करना ही था।

# हिन्दी उपन्यास का वर्गीकरण

उपन्यास नये युग को नयी धर्मव्यक्ति का नया रूप है। साहित्य के रूपों के उद्भव के सम्बन्ध में यह एक बड़ा सत्य है कि के व्यक्ति और युग के आसक्त और सामयिक रसायन का परिणाम होते हैं। उपन्यास भी अपना स्वरूप साहित्य की प्राणवही बिना के रूप में अपनी प्रयति तत्सम्बन्धी प्रयोग तत्कालीन प्रवृत्ति प्रस्तुत विषय सामयिक-वेजना तथा सैकल एवं प्रकाशन के व्यवसाय के अनुस्यू बढसता रहा है। हिन्दी उपन्यास ने अपनी यात्रा में संस्कृत धार्म्याधिकारों के अनुसार पुनर्नी की धार्म्यात्मिक धौपन्यासिकता अपनायी तथा त्रिमिस्री किन्ने जामुनी और ठपी के बृवात्त सामाजिकता तथा राष्ट्री यथा पर मधिक सुपारकारी रचनाएँ बरिज-बिजगण सम्बन्धी व्यक्तियत एवं बर्धयत समस्यार्थी से मुक्त गाबाएँ तथा ऐतिहासिक रोमांस की प्रेम-कथाएँ तथा मनोबिज्ञान की पहेलियों से बटित कहानियाँ प्रादि सभी प्रकार के प्रसंगों को अपने में समेटने का प्रयास किया है।

इन सबका वर्गीकरण प्रस्तुत करने के लिये हमें सर्व प्रथम धारत्रीय वर्गीकरण का सिद्धान्त ही स्थिर करना पड़ेगा। धारत्रीय ढंग में ऐतिहासिक विकास का घयबा प्रकार की क्रोडियों का एक क्रम होता है। उपन्यास का धारत्रीय वर्गीकरण बर्धयविषय की सामग्री तथा उस विषय को प्रस्तुत करने के ढंग पर निर्भर किया जा सकता है। प्रप्ययन क्रम की सुबिधा के लिये हम उसे ऐतिहासिक विकास के रूप में भी प्रस्तुत कर सकते हैं।

धार्मिक युग के धारत्र्य में साहित्य ने अनुप्यत्व का महत्व बड़ा। अनुप्य की गायारगता की प्रतिष्ठा हुई। यद्यपि कथा के मूल में 'हु' और 'मु' धर्पात् मण्यार्द और दुगार्द की प्रबिभिन्न धारा बनी रही तथापि यथार्थवाद के धारत्र्य में दुगार्द की बिबैचना दुगार्द करने बात के साथ पूरी महानुमृति रखते हुए की गई। अनुप्य द्वारा निमित्त प्राचीन नीतिशास्त्र में संशोधन किया गया। इसके लिये कथा-साहित्य में ममरतरन का बिस्सेपण भी धारत्र्य हुआ। उपन्यास का बर्तमानतः बहिर्जगत में उठ कर एकरम धारत्र्यमन में धा गया। अनुप्य की सभी माननिक निबतियाँ वा धर्प्ययन होने लगी।

बर्गीकरण का सिद्धान्त—इन परिस्थितियों में उपन्यास के नये प्रकारों का जन्म हुआ। इन अपनी अध्ययन की सूचिका के सिधे इनके बर्गीकरण का भी अध्ययन करेंगे परन्तु बीसा करों के प्रथम हमं बर्गीकरण के सिद्धान्त को समझना आवश्यक है। पूर्वीय साहित्य परम्परा में बर्गीकरण का सिद्धान्त प्रत्येक लक्षण ग्रन्थ की विशेषता है।<sup>१</sup> पश्चिम में धार्मिक युग के बर्गीकरण का सिद्धान्त सर्व प्रथम कोले ने धारम्भ किया।

कोई साहित्यिक प्रकार नाम का ही नहीं होता बल्कि साहित्य-सौन्दर्यशास्त्र की परम्परा उस विशिष्ट प्रकार का स्वस्व निर्धारित करती है। इस परम्परा का अनुसरण लेखकों को करना पड़ता है और कभी-कभी लेखक स्वयं नयी परम्परा पुरानी परम्परा को तोड़ कर या मोड़ कर ही बनाता है।<sup>२</sup>

बर्गीकरण का सिद्धान्त शास्त्र व्रम का सिद्धान्त होता है। इसमें साहित्य प्रथम साहित्यिक इतिहास का बर्गीकरण समय (काल क्रमानुसार) प्रथम स्थान (राष्ट्रीयता) के विचार से नहीं किया जाता बल्कि वह विशिष्टक्य से साहित्य के संगठनात्मक प्रथम संघटनात्मक प्रकारों के विचार में होता है।<sup>३</sup> ऐतिहासिक बर्गीकरण से भिन्न कोई भी आलोचनात्मक प्रथम मुस्वीकन करने वाला अध्ययन किसी रूप में उस प्रकार के संगठन पर ही विचार करने की अपेक्षा करता है।

वास्तव में आलोचनात्मक साहित्य का एक विशिष्ट प्रकार यह भी है कि हम नयी साहित्यिक विधा के नवीन संघटनात्मक स्वरूप के बर्गीकरण का आविष्कार करें।

संस्कृत साहित्य में हमें साहित्यिक बर्गीकरण के अग्निपुराण काव्यप्रकाश'

- १ साहित्यवर्णन—विश्वनाथ—काव्यप्रकाश-सम्मट-काव्यादर्श-बन्धी आदि
- २ Croce Aesthetic (tr. Ainslie), London, 1922. Chs IX and XI
- ३ The literary kind is not a name, for the aesthetic convention in which a work participates shapes its character. Literary kinds may be regarded as institutional imperatives which both coerce and are in turn coerced by the writer  
N. H. PEARSON *Literary Forms and Types*  
English Institute Annual 1904 (1941) P. 59  
—cf especially P 70
- ४ A. TRIBAUDET *Physiologie de la Critique* p 184

साहित्यदर्पण', 'काव्य मीमांसा' और 'काव्यानुशासन' के अनुसार निश्चित करते हैं। धर्मवीर साहित्य के वर्गीकरण के सिद्धान्तों का निर्णय धरस्तू और होरेज के सिद्धान्तों के अनुसार हुआ है। पर जिस प्रकार धर्मवीर ने प्राबुद्धिकतम साहित्यिक सिद्धान्तों को विवेचना में प्राचीनकालीन षष्ठ-षष्ठ के अन्तर को मिटा कर काव्यिक साहित्य अखण्ड (अन्याय छोटी कहानी-महाकाव्य) नाटक (गद्य अथवा पद्य में) और कविता (प्राचीनकाल के गीत काव्य के समान्तर) में विभाजित किया है। उसी प्रकार घास के हिन्दी में डा. ध्यानमुन्दरबाब आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का पुस्तकालय बस्त्रेय उपस्थाय एवं सीताराम चतुर्वेदी के व्याख्यानमालक शब्दों के आधार पर हिन्दी में प्राचीन संस्कृत परम्परा से मिलन रूप में साहित्यिक विधाओं एवं उनके प्रकारों का विवेचन किया गया है।

वर्गीकरण के सिद्धान्त की चर्चा करते हुए हम कतिपय रोचक तथ्यों पर विचार कर सकते हैं। कभी कभी अत्यन्त प्राचीन साहित्यिक प्रकार का पठ-बन्धन नये से नयी साहित्यिक विधा के नवीनतम प्रकार में किया जाता है। नवीनतम प्रकार को कभी-कभी प्राचीन परम्परा के अनुसार प्रसिद्ध रूप का प्राबुद्धिक संस्करण मात्र समझा जाता है। इस सिद्धान्त स्थापना के अनुसार रत्नोष्की दोस्तोव्स्की के उपन्यासों को प्रतिभा अथवा संज्ञा के सम्मान एवं प्रतिष्ठ प्राप्त धरराजी जीवन् से सम्बन्धित उच्चतम रूप में देखता है— (रोमा असेन्सोविया) पुस्तक के गीत 'प्रसन्न के शब्दों' से निकलते हैं, अर्थात् की कविता बिन्दी गानों से, मायाकोव्स्की की 'रचनाएं' फ्रीडेपर पोमेररी' के विकास प्राप्त रूप हैं<sup>1</sup>। हिन्दी में जाबरी ने परमावत प्रसिद्ध परम्परा की प्रकृतियों के आधार पर ही निष्ठा का फ्योरर रंगु की 'परती-परिक्रमा' बरती के गीतों का औपन्यासिक उद्घाटन है। जर्मनी में बरयोव्स्की और पपजी में घास दोनों ही अपनी कविता में लोक गीतों को गम्भीर काव्य में प्रस्तुत करते हुए दिखाते हैं। हम विचार को हम उन साहित्यिक विधाओं के

1 VIKTOR SHKLOVSKY *Art as Device Theory of Form* Moscow 1923 of the article "Formalism by R. Rognoli in Shipley's Dictionary of world Literature p. 234, also 'An essay Russian Formalism American Bookman (1944) pp. 19-30

न में से सञ्चये हैं जिसके अनुसार यह माना जाता है कि साहित्य किसी प्रक्रिया या अपने को सबद मवीन रूप में परिवर्तित करने की प्रयत्ना करता है।<sup>१</sup> लुईजोस का एक ऐसा ही विचार और है जिसके अनुसार साहित्य के चरम पर स्वल्प साहित्य के साधारण रूप के विकसित रूप होते हैं। जिस प्राचीन प्राथमिक रूपों को मिला कर घाब क मत्र प्रचलित साहित्यिक प्रकार बन। उनही सूची बोस के अनुसार निम्नलिखित हैं—मिजेड (बल्ट कथा) सापा (पौष माया) मिब (कपोल-कल्पित कथा) रेखस ह्यूस कासस मेमारेबील पंग बिरस।<sup>२</sup> उपन्यास के इतिहास में इसी प्रकार के विकास का उदाहरण मिला है। अंग्रेजी के उपन्यास में पामेला टामजेन्स 'ट्रिस्टमघर्षी' के गमन के पूर्व निम्न प्रकार के 'ग्राइनडैथ टोर्मन' हैं—पत्र शयरी प्रमख-ब (काव्यनिक भाषा-वर्तन) मंस्मरस १७ वीं शताब्दी के चरित्र डरेक्टरी), निवन्ध और इनके साथ ही साथ गगमंच का सुखान्त नाटक हाकाब्य और रोमांस।

हिन्दी उपन्यास के बर्णोकरण करने के प्रथम हमें हिन्दी उपन्यास के वृत्तित विकास को भी ध्यान में लाना होगा। रोमांस से समाज के मनोवै-  
निक यथार्थ की यात्रा में हिन्दी उपन्यास के विकास की तीन मुख्य अवस्थाएँ—(प्रथम) प्रथमचन्द्र का पूर्ववर्ती काल (द्वितीय) प्रथमचन्द्र का काल (तृतीय) प्रथमचन्द्र का परवर्ती काल।

(१) प्रथमचन्द्र का पूर्ववर्ती काल—प्रथमचन्द्र के पूर्ववर्ती काल की तीन  
व्य प्रवृत्तियाँ हैं—(१) कम्पनायाम विमलकण्ठा (विबकीनभन बन्नी गहमरा  
का मोस्वामी श्री के उपन्यास जिनमें तिमिस्मी जामुनी एवं खस्य-रोपाचपूर्ण

For the "rebarbarization" of literature, cf. the brilliant article "Literature" by Max Lerner and Edin Mirna, Jr *Encyclopaedia of the social sciences*, IX (1933) pp. 523-43

—Andre Jolles *Einfache Formen* Halle, Jolles list corresponds roughly to the list of folk-types or "forms of popular literature," studied by Alexander H Hrappe in his *Science of Folk-Lore* London, 1930 the Fairy Tale, the Merry Tale (or Fabliau), the Animal Tale the Local Legend, the Migratory Legend, the Prose Sage, the Proverb the Folk-Song the Popular Ballad, Charm Rhymes and Riddles.



जहाँ देख कर यह समझ गया कि शायद यथार्थवाद का भ्रामक धर्म साहित्य  
 कारों ने लमाया है। इस सम्बन्ध में श्री गुलाबराय का कथन है "—यथार्थ  
 वाद के नाम पर बिलास एवं वास्तवमय जीवन के प्रतिरहित चित्र संकित किये  
 जाते हैं। भारतीय जीवन को उमार में लाया जाता है और कल्पना के निर्वाच  
 और निराकरण मृत्यु के लिये निमग्नण दिया जाता है। तथाकथित यथार्थवादी  
 उपन्यासकारों की बुराई मुक्ति है कि वे समाज को उन गहन-गलों से बचाते हैं,  
 जिनमें कि लाभ प्रायः गिर जाते हैं। इसके बहाने वे वास्तव में उन गहन-गलों  
 और भीषण अपकारमय कन्दरायों का पथ-प्रदर्शन कर देते हैं।"

यथार्थवाद का वास्तविक स्वरूप समझने में प्रेमचन्द की निम्नलिखित  
 पंक्तियाँ कुछ सहायक हो सकती हैं— यह मैं नहीं कहता कि तुमने जो कुछ  
 लिखा है, वह यथार्थ नहीं है। उनको इच्छामा और प्रवृत्तियों के गन्ध यथार्थ का  
 रूप धारण भ्रमंकर होता है और इस यथार्थ को ही वास्तव मान ले तो संसार  
 नरक-दुःख ही प्राप्त है।

प्रसाद<sup>१</sup> के हेलो उपन्यास — ककाल और तितली<sup>२</sup>—में यथार्थवादी  
 प्रवृत्ति निसली है।  
 इस काम की बुराई प्रवृत्ति समाज-सुधार की है। या तो प्रेमचन्द के पूर्व  
 ही हम प्रवृत्ति का प्रारम्भ ही हुआ था लेकिन प्रेमचन्द के समय में इस धोर  
 विधाय ध्यान दिया गया। इस समय तक भारतीय समाज में—घिसित तथा  
 परिधिसित दोनों रूपों में—प्राचीनता की प्रतिक्रिया स्वरूप नवीनता की लहर  
 आई थी। परन्तु जन-जीवन की मास्यतायें बढ़त रही थी दृष्टिकोण बदल रहे थे  
 और विचार-विचार में भी परिवर्तन हो रहा था। इस व्यापक परिवर्तन के फल  
 स्वरूप अनेक धार्मिक सामाजिक तथा राजनीतिक धारणाएँ का मुनपन हुआ।  
 चूँकि हम यहाँ समाज-सुधार की प्रवृत्ति पर विचार कर रहे हैं, परन्तु हम केवल  
 सामाजिक धारणाओं—धोर धार्मिक में भी-यहाँ मतलब रसना चाहिये। इन  
 धारणाओं का हम अत्यन्त बलुन कर चुके हैं परन्तु यहाँ निरुक्त हम इस काम  
 के हिन्दी उपन्यासों पर उनका प्रभाव बताने का प्रयत्न करेंगे।  
 स्पष्ट रूप में यह कहा जा सकता है कि जहाँ तक प्रेमचन्द का प्रस  
 है, उनके सभी उपन्यासों में हमें किसी न किसी रूप में समाज-सुधार की यह

१ वास्तविकता — उपन्यास संक  
 २ 'प्रेमचन्द'—'कमलाकर'



देवराज के 'पप की खोज' 'बाहर-भीतर' डा० चर्मबीर भारती के 'दुताही के देवता' 'सुरज का सातवाँ बोझ' सिमारामचरण पुस्तक मारी तथा कुछ अन्य उपन्यासकारों के अधिकांश उपन्यासों में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है। कुछ उपन्यासकार अथवा वे काफ़ी प्रभावित दिखाई देते हैं। जैसे उपपुत्र सभी उपन्यास में न्यूनाधिक मात्रा में प्रेम विषयक समस्याओं पर ही विचार किया गया है। इनमें से कुछ पर धरतीसता तथा मन्म-विषणु आदि का शेष भी वर्तमान प्रामोक्षका द्वारा समया जाता है।

प्रेमचन्द के बाद का युग न्तीय महायुद्ध का दौर भारत की सन् ब्यासिस की संघर्ष क्रांति का युग था। साम्यवादी-समाजवादी तथा राष्ट्रीय विचार धाराया का काफ़ी प्रचार हुआ। अतः राजनीतिक प्रवृत्तियाँ तो इस काल के काफ़ी उपन्यासों में मिलती हैं। सन् १९३२ में मकर सन् १९५० तक तो पचास प्रतिशत उपन्यासों में ही यही प्रवृत्ति मिलती है। सन् १९२० के बाद से ऐसे उपन्यास प्रायः कम ही मिल जाते हैं। बृहाबनमान बर्मा एवं प्रयागनाथयल भीमास्तव होना में ही राजनीतिक उपन्यास को साहित्यिकता क बाने में ऐतिहासिक उपन्यास का रूप दे दिया है। इस प्रवृत्ति क उपन्यासकार तो बहुत से हैं परन्तु विशेषरूप से राहुल जी यगास गुजरात नायाडु न तथा संघर्ष राजब का नाम मुख्य है। वीनेत्र नयवतीकरण बर्मा इसाचन्द्र जोशी न भी इस रूप के उपन्यास लिखे हैं।

इस काल की प्रमुख प्रवृत्ति ऐतिहासिकता ही है। राहुल तथा बृहाबनमान बर्मा—चतुरान्न घास्त्री तथा रानियराजब ने श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं। राहुल के अययाधेय सिंह सैनापति बृहाबनमान बर्मा के मानी की रामी 'यदु' बार 'बिण्ट की पदमिनी तथा मृपनयनी आदि ऐसे ही उत्कृष्ट उपन्यास हैं। भी चतुरान्न घास्त्री के 'सैमासी की मगर बपू' बदनूरदास तथा रानियराजब का मुर्दा का टीसा भी इमी कोटि के उपन्यास हैं।'

सर्वाकरण—ग्रन्थ साहित्यापी को देखते हुए उपन्यास अथ हिन्दी क लिखे गया है। अतवा अन्त भारत में छापे की मशीन के साथ हिन्दी मद्य की उत्पत्ति के समय हुआ है। हिन्दी साहित्य के इतिहास म गद्य (विनेत्र राजी जोशी के

१—इस विवेचन में विभिन्न कालों की मुख्य-मुख्य प्रवृत्तियों का संक्षेप मात्र दिया गया है। डॉ. प्रेमचन्द युग तथा उनके बाद का युग हिन्दी उपन्यास के विकास से दो विभिन्न कारण हैं और इनमें प्रायः सभी विषयों पर उपन्यास लिखे गये हैं।

पद्य) साहित्य का आरम्भ पद्य के बाद हुआ और नव साहित्य में उपन्यास साहित्य की बाती डेर से घाई ।<sup>१</sup> पर इतने ही मोड़े समय में इतने अधिक उपन्यासों की रचना हुई है और उन उचित उपन्यासों के इतने प्रकार हैं कि उन्हें सहसा सरस ढंग से वर्गीकरण के नियमों में नहीं बाँधा जा सकता । विचारों की नयी कृतियों के अनुशीलन से उपन्यास की नयी प्रकृतियों का जन्म होता है । इस प्रबन्ध का पूर्वाह्न इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है कि समय के परिवर्तन के साथ साथ उपन्यास के प्रकार भी परिवर्तित होते जाते हैं । पद्य उपन्यासों का नवीकरण निम्न-निम्न शृण्वियों के क्रिया जा सकता है जिनमें से प्रमुख ये हैं—

- १—वर्ष्यवस्तु की दृष्टि से
- २—वर्षि की दृष्टि से
- ३—कथावस्तु के स्वरूप और लक्ष्य के अनुसार
- ४—क्रियाकलाप की दृष्टि से
- ५—उपन्यास संघटन के अनुसार
- ६—चरित्र चित्रण की दृष्टि से
- ७—शैली की दृष्टि से
- ८—उद्देश्य की दृष्टि से
- ९—जीवन के प्रति दृष्टिकोण के विचार से

उपन्यास <sup>विस्तार तथा प्रभाव की तीव्रता के विचार से</sup>  
<sup>जल-दृष्टि के विचार से</sup>  
<sup>(सक वर्गीकरण)</sup>  
<sup>संक्षिप्त के प्रति दृष्टिकोण के विचार से</sup>

- (१) - वर्ष्यवस्तु की दृष्टि से वर्गीकरण
- (२) तिप्तस्मी, जासूगी और साहसी उपन्यास
- (३) ऐतिहासिक कथानक वास उपन्यास
- (४) पौराणिक तथा धार्मिक कथानक वाले उपन्यास
- (५) ग्रन्थ कथा-संवादन उपन्यास
- (६) सामाजिक उपन्यास

२—नन्ददुन्दारे बाबूदेवी—

‘साप्ताहिक साहित्य पृष्ठ १२६

(र) राजनीतिक प्रवृत्ति राजनीतिक कथनक वाले उपन्यास  
 (घ) तिमिस्त्री-बाबूतो और साहसी उपन्यास  
 मानव जिज्ञासा एवं कौतूहल की दो धारों से देखता है। विचित्रता तथा  
 रहस्यात्मकता के प्रति उत्सुकता एवं उत्कण्ठ का भाव मालव बेतमा के चारम्भ त  
 ही गता है। उत्सुकता जिज्ञासा को पोषित करती है।

हिन्दी कथा साहित्य के चारम्भ में उस पर 'कमल' फरसी तथा पाश्चात्य  
 कथा वागमय का प्रभाव हिन्दी अनुवादों द्वारा पड़ा। पर हिन्दी उपन्यास  
 साहित्य में तिमिस्त्री तथा घण्टीरी माने वाले बा० देवकी लम्बनबाबी ही हैं।  
 और य किसी अन्य भारतीय भाषा में होकर नहीं पाया है। य होता मरती उच्च  
 है। घण्टीरी तथा तिमिस्त्री के इस प्रकार के उपन्यास लिखने की परम्परा  
 बहुत दिना तक बसा और बहुत से लेखकों ने इस ढंग की बहुत ही पुस्तकें  
 प्रस्तुत की पर हिन्दी उपन्यास के इतिहास के शेषकाल तक ही इनका  
 प्रभाव रहा।

संभव १९४ और सन् १९७५ के मध्य में मिल हुए घण्टीरी तिमिस्त्री  
 बाबू पादि ने उपन्यासों में विचित्र रचनाएँ निम्नलिखित हैं—देवकीलम्बन  
 घण्टीरी कथाकाला 'बग्नकाला सतनि (जोबोम माय) 'मूतनाब' (श्री बाय)।  
 दुर्गाप्रसाद लाली 'मूतनाब' के शय (पत्रह माय) 'रक्त मंडल' 'ताल पंजा'  
 'प्रतिपाद्य पुच्छ मीतान'। किशोरीलाल गोस्वामी 'राहुल तथा जो बलों का  
 तिमिस्त्री श्रीममहल। हरिद्वय मोहर—'म को मिसता है। 'तकटु  
 कल्पना की निर्बंध लीला का कल्पना-मिसता है। 'तकटु  
 नामा का लाल पाकपंख विस्मयजनक भाषों की कौमयपूर्ण पात्रों का  
 प्रयोजनित रहता है।

आज के प्रताप्यक मीरत क धर पर्याय में ही य उपन्यास एक अनोख  
 रंग-बिरंगे संसार की सृष्टि का है। बग्नकाला के संकल में इस बात को  
 स्वयं स्वीकार किया है। 'जयन्त राम-विराग' के संताप और हर्ष-भय

१ कुछ दिनों की बात है कि मेरे कई मित्रों ने सभासभों में इत विषय का  
 प्रागोक्त उदाहरण पा कि इसका (बग्नकाला) कथानक लम्ब है या  
 घण्टीरी। मैं नहीं लम्बना यह बात क्यों उड़ाई और बढ़ाई गई। श्रित  
 प्रकार बचताय हिलोपदेश बातकों को शिला के लिये लिखे गये उन्नी  
 प्रकार यह लोगों के मनोविनोद के लिये पर यह लम्ब है कि घण्टीरी

के मनुष्य वातावरण से भाप कर हम मनुष्य शोक में विविध विधाओं की प्रवृत्ति ही इन उपन्यासों की प्रेरणा है। ये जीवन का प्रतिबिम्ब नहीं तथ्य की विरस अनिर्धार्यता के विरस घाकाँझाओं के भाव पर कल्पना की सरस प्रतिक्रिया हैं। इनमें मानव के मूल मूल मानव राम-रूप क्रोध-कष्टी प्यार-भुगा भावि को उद्देशित करने का यत्किञ्चित् प्रयास पाया जाता है। इनके पात्रों की भाव कराह घोर हमारे हृदय के हाहाकार में कोई मेम नहीं दीखता।

इसके तुरन्तबाद ही घप्पारी से कही घबिक बुद्धिगम्य तथा स्वामाधिक जासूसी की परम्परा का श्रीमंगेश कुमा। कन्ता प्रकाश एवं वैविधपूर्ण रचनाओं की धारमिक सफलता के कारण गोपास-राम गहमरी ने युग की माँग के प्रभुत्व सांसारिक एवं विश्वसनीय बटनाचक की योजना करके जासूसी उपन्यासों की परम्परा का अगण्य हिन्दी साहित्य में किया। यों तो रहस्यमय एवं रोमांचकारी बटनाओं के प्रति साधारणतः मानव-मन का स्वामाधिक धारण रहता है पर साधुनिक जासूसी उपन्यास काफी जटिल और पंचवार समाज की बेम है। इन जासूसी उपन्यास को पूर्णरूप में योरोप-विशेषतः इगर्मन्ड की बेम माना जाता है।<sup>१</sup> स्कॉटलैंड बार्ड की धुनित और जासूसों के माहस निर्मयता तथा बुद्धिबलुकी को लेकर इर्मन्ड में जासूसी उपन्यासों की भरमार हो चली थी। घपेबी साहित्य की यह प्रवृत्ति हिन्दी में गहमरी की के द्वारा व्यक्त हुई और मूल सफल भी रही। यद्यपि चरित्र-चित्रण भावि की दृष्टि से इन उपन्यासों का विरोध महत्व नहीं है, परन्तु इनके द्वारा जनता में उपन्यास पढ़ने की रचि में व्यसन का रूप के मिया।

जासूसी उपन्यासों में भी धारण्य बटनाओं की बिलक्षणता पर ही निर्भर होता है। कही बोरी हत्या भावि होने पर जासूस किस प्रकार उत्कर्षता से मन्वद स्वर्णो व्यक्तियाँ और बटनाओं की सूक्ष्मता से जांच-पड़ताल कर के

इस पर कोई यह समझेगा कि चन्द्रकान्ता और बीरेश्वरसिंह इत्यादि पात्र और उनके विविध स्वभावों के ऐतिहासिक हैं तो बड़ी भारी सुम है। कल्पना का मैदान बहुत विस्तृत है और उसका यह एक छोटा-सा नमूना है। चन्द्रकान्ता में जो बर्से लिखी गई हैं वे इसलिये नहीं कि लोग उत्कृष्ट सचाई प्छाई को परीक्षा करें मरुत इसलिये कि पाठ को नुहल बर्षक हो।

—देवकीनन्दन खत्री।

घपसी घपराभी का पठा सयाठा है इसका रोचक मोर कीदूहसबर्दक विवरण ही इन उपन्यासों का बिद्युत्-आकर्षण होता है। इन बामूसी उपन्यासों का संबंध विशेषकर सामुहिक समाज से ही होता है। मोर इनमें बलिष्ठ बटनासों के अनुपात से समाज तथा इनके पाषा के चरित्र का कुछ बिबरण भी हा जाता है। यह पात्र मानव-दानव दोनों ही होते हैं मोर उनके साहस निर्भीकता तथा घटनाचक्र में फँसने-फँसाने निकलने की धीरता कुटिल-कोपस धारि ही का विवरण इनमें रहता है। घट ये मानव समाज के लिये कुछ उपयोगी बने जा सकते हैं।

इन उपन्यासों का कपातक प्रायः एक सा ही होता है। बोरी डाके घपरा मनसमीदार हत्या से प्रारंभ होकर पुनिस की पठा समाज में घसफसता से बामूस की सहायता की आबबयकता पकती है। उस समय किसी ह्यालि नाम बामूस का सहाय लिया जाता है। पुन उन घपराधिया मोर बामूस तथा उनके सहायका का संघर्ष प्रारंभ हुला है। बीच में बामूस की घसफसता तथा नूपाट बोरी तथा ह्यायो का बोल बाला रहता है। घपराभी घसफस होते से जान पकते हैं। किसी-किसी बामूसी उपन्यास में तो बामूस की जान पर सा बनती है। उसका घस मुनिरिबत सा हुला है। तमी घाकस्मिक एवं पुर्णस्नेण प्रशयाघित हंम से कहानी का घटनाचक्र परिवर्तित हो जाता है मोर नाटकीय हंम से घपराब का उदपाटन मोर घपराभी जिसकी मोर तो कमी-कमी पटक का घ्यान भी नही जाता उसका पठा बसता है। बामूसी उपन्यासों को बड़ी सम्बो लुकी के कुछ नाम ये हैं:— घटना बटाटोय 'बुनी कौम है ? 'बमुना का नून' 'बामूस की घूस' 'बेबराभी-बिठानी' 'बामूस की बोरी घये की घाय' 'बासराबा' 'बो बहिन' धारि।

ऐतिहासिक दृष्टि से मोर महत्त्व की दृष्टि से भी तिसली उपन्यासों के बाब साहसिक उपन्यासों का स्थान है। इन उपन्यासों में साधारणतः दर्दों का एक कुछ किसी मगर में घाता है मोर घनियों के घर डाके पकते हैं। पुनिस मोर बामूस बाधू पकड़ने के लिये छोड़े जाते हैं। मोर घस में ये घसफ भी हले हैं। साहसिक उपन्यास तीम प्रकार के हैं।

प्रथम प्रकार के साहसिक उपन्यासों का प्रतिनिधि बन्नेसेर पाठक का घमीर घानी टग है, जिसमें प्रमिठ ऐतिहासिक टग घमीरघसी घपसी घरीत की बहानी घुनता है। परन्तु उपन्यास का नायक घमघराम है जो मोर मोर उदार है। ये टग या बाधू मोर है, उदार है घनिमानी है मोर मास पर भर मिठने बाग हैं, परन्तु घसका कार्य वैजिक दृष्टि से निकट है। के घटाएकी घटाएकी

के व्योम के अनुगामी मान पड़ते हैं। उनका अपना स्वतंत्र नैतिक धारणा है, वे मन्थे प्रती घोर घोर होते हैं परन्तु उनके सामान उनके कार्य सामुहिक नगर के विचारों के प्रतिबन्ध हैं। इन दर्शनी उपन्यासों को अग्राह्यी घटाभी के व्योम के रोनाशकारी कृपा से बहुधा प्रेरणा मिली।

द्वितीय प्रकार के साहित्यिक उपन्यास के नायक उच्च प्रथम प्रकार के व्योम में निराल विपरीत होन हैं। वे कमी सोमी कठोर घोर सामानुषिक कर्म करने वाले राक्षसा क ममान होते हैं, वे सभी निर्बल मज्जम घोर दुष्ट सभी का नुटने-खसोटने हैं हत्या करने म जरा भी संकोच नहीं कंचन घोर कामिनी के प्रति उनको लोभ का कोई घन्त नहीं। वे बड़े ही साहसी घोर बहादुर होत हैं। पुंसिघ घोर बासून इनका पीछा करते हैं घोर घन्त में दर्शन पकड जाते हैं।

तृतीय प्रकार के साहित्यिक उपन्यास बोधनी घटाभी के हिंसामक मान्दो-नन क आधार पर लिखे मन। कुछ उग्राही देवभक्तों के मातृभूमि भारतवर्ष का स्वतंत्रता के लिये एक गुप्त संस्था बनाई जिसका उद्देश्य था हिंसामक रीति में भारत को स्वतंत्र बनाना। कपेकर संजुर्मा ने १८६७ म इसका प्रारम्भ महाराष्ट्र में किया जो क्रमश बढ कर बंगाल संयुक्त प्रान्त घोर पञ्जाब तक फैल गया। रंजित-महल उपन्यास इमी प्रकार का एक उपन्यास है।

(घा) ऐतिहासिक कथानक वाले उपन्यास

हिन्दी-उपन्यास के चौथ-जान में हिन्दी साहित्य के प्रतिरिक्त भारत की प्रथम सामुहिक नापाधों में ऐतिहासिक उपन्यास उज्जकोटि के घोर पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। संख्या में तो हिन्दी में भी ऐतिहासिक उपन्यासों की कमी नहीं रही यद्यपि वे तिलस्मो घोर जामुसी उपन्यासों से बहुत कम रहे परन्तु उज्जकोटि का ऐतिहासिक उपन्यास इस काम में हिन्दी में एक भी नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि हिन्दी में उपन्यास जगता की दृष्टि से देख जाते वे प्दिलित घोर प्रथम जगता उपन्यास मिलना तो दूर रहा परन्ता भी पसंद नहीं करती थी। तिलस्मो घोर जामुसी उपन्यासों की लोकप्रियता के कारण जनता ने भी कमी ऐतिहासिक उपन्यास की मांग न की। जो कुछ योद्धे-से सोय ऐतिहासिक उपन्यास पढ़ना भी चाहते थे उनके लिए बंगला घोर मराठी से अनुबाधित उपन्यास मिल जाया करते थे। साधारण जनता तो तिलस्म जामुस तथा ऐगारों के पीछे पागत हो रही थी घोर ऐतिहासिक उपन्यासों में भी रुकी की खोज कल्ली थी। इसलिये उपन्यासकार ऐतिहासिक उपन्यासों में भी तिलस्म धम्मर धारि की दृष्टि किया करते थे।



भारत के हिन्दी के अधिकांश ऐतिहासिक उपन्यास केवल नाममात्र के ऐतिहासिक हैं क्योंकि उनमें लेखकों ने इतिहास की ओर में तिमिस्म भयान और प्रेम प्रसंगों की ही धबधबाएँ की हैं। उस युग का सांस्कृतिक वातावरण महत् चरित्रों का विशाल तथा महान भावनाओं का प्रतिरक्षित चित्र उनमें देखना ही नहीं है।<sup>१</sup> अस्तु किछोरीलाल गोस्वामी रचित लखनऊ की बहमं तिमिस्म और अप्पारों का चित्रण है—‘भोगिण-तर्पण’ में जिसमें १८१७ के मिपाही बिड़ोही का हास है। किछोरीलाल गोस्वामी के १८१० में प्रकाशित मदनसला का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास कहा जा सकता है नाम-मात्र की ऐतिहासिकता को लिए हुए उपन्यासों में से धबधबित कुछ नाम उल्लेखनीय हैं—

बहमं इतिहास टाकुर—‘लोकव्यकुमुल जयमी एवं लोन्वर्धन।

किचोरीलाल गोस्वामी—‘मेला घोर मुर्गाधि’ ‘मालकुबर’ एवं रजिया बहमं’।

बजरंगदत्त महाय—‘लास बीम’।

दुर्गाप्रसाद रावो—‘मदनपाम’

शाबिन्दराम पठ—‘गुर्मास्त’

भगवतीचरण वर्मा—‘पठम’

श्यामचरण दीन—‘बहर’।

हिन्दी में कुछ ऐतिहासिक उपन्यास उपन्यास-रूप में इतिहासज्ञान हैं, जिनमें ऐतिहासिक कहानियाँ उपन्यासरूप में ढाल दी गई हैं। ‘रानी दुर्गाबती’ और ‘पत्नी बरबा मंगोकिता’ में रानी दुर्गाबती और रंगोकिता की कहानियाँ गद्य में बढ’ साठवींशदी में लिख दी गई हैं जिनमें कहीं-कहीं कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन भी कर दिए गए हैं।

इन समय के केवल इने-गिने ऐतिहासिक उपन्यास ही साम्प्रतिक ऐतिहासिक उपन्यासों की श्रेणी में आ सकते हैं। बजरंगदत्तसहाय रचित ‘मालबीम’ एक सुन्दर ग्रन्थ है परन्तु यह वेदमण्डिर के ‘सैकधेय’ शास्त्र का मध्यरासीय मुनिम इतिहास के वातावरण में एक रूपांतर मात्र जान पड़ता है। इयाम बिहारी मिश्र और मुत्तैबबिहारी मिश्र रचित वीरपण भी एक सुन्दर रचना है जिसमें पद्मिनी के लिए अलाउद्दीन का चितौड़ पर चढ़ाई के ऐतिहासिक प्रसंग में एक काल्पनिक प्रसंग का सुन्दर सम्मिश्रण किया गया है।

शा० भीष्मपुत्राल—‘धायुनिक हिन्दी साहित्य का विकास’—पृ० ३०२ ३

परन्तु इस समय ऐतिहासिक उपन्यास संख्या घीर भीष्टता दोनों ही दृष्टि से बहुत ही घबगत अवस्था में था। हिन्दी में ऐसा एक भी उपन्यास नहीं था जिसकी तुलना बंगला साहित्य के 'बगरोबर' 'माचबीकंकर' 'गदांक' 'कनगा' 'राजपूत जीवन सभ्या' और 'महाराष्ट्रजीवन प्रभात' अथवा मराठी के 'सूर्यग्रहण', 'उपाकाम सप्तमान' और सभ्राट अनाक इत्यादि उपन्यासों से की जा सकती।

सपार्थक हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यास लेखन का कार्य कृन्दावत सा बर्मा के पदकंडार' में प्रारम्भ होता है। भगवतीचरण बर्मा इत विभवेका गया कृन्दावतसात बर्मा का बूमरा ऐतिहासिक उपन्यास बिराटा की पदमिनी भी प्रारंभिक ऐतिहासिक उपन्यासों की कोटि में आती है। कर्वाचिद हिन्दी में प्रथमवार इन कृतियों के माध्यम से ऐतिहासिक तथ्यों को एक कलात्मक रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया गया। इनके पश्चात् तो ऐतिहासिक कथानक वाले उपन्यासों की परंपरा चल पड़ी। कृन्दावतसात बर्मा की पुस्तक 'चतुरसे' शास्त्री राहुत साङ्गणायन हजारीप्रसाद द्विवेदी एव यद्यपत्त रमियराजवालि न उच्चकोटि के ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की। उनमें से कुछ उपन्यास निम्नलिखित हैं—'बैशासी की गजरबधु' बिराटा की पदमिनी' 'श्रीमी कं रातो' 'कचनार' मुगलयतो' अहित्या बार्डि' आदि सर्वभूष कृतियाँ हैं। 'मुसाहिब बू' में सर्वे ऐतिहासिक कथानक है। श्री पुस्तक से 'स्वार्थमता' से पप पर' 'पबिक बिरबासबाठ' आदि मुगजीवन के सष्ठम बिब जीवने वाले उपन्यास हैं। ऐतिहासिक कथानक के माध्यम से मार्क्सवाद साम्राज्यवाद गांधीवाद आदि सब को ब्याख्या की गई है। यद्यपत्त की हिम्मा भगवतीचरण बर्मा की 'बिभवेका' राहुत का 'सिंह सेनापति' 'अबयोभेव' एव हजारीप्रसाद द्विवेदी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' आ रंगेयराजव का 'सुरों का टीमा' मध्यम ऐतिहासिक उपन्यास हैं।

इन ऐतिहासिक तथ्यों का निर्धारण यत्रतियरों इतिहास की पुस्तकों शिनामकों पुच्छतक को सामग्रिया मूर्तियों तथा पत्र-पत्रिकाया में समय-समय पर बिहानों के इतिहास बिपयक सेतों और बिबादों से लेवक कर लेते हैं और कुछ कस्यता का पूर देकर कथानक को ससंबद्ध एवं मुनियोजित कर देने हैं। ये कृतियाँ पर्याप्त सम्ययन एवं बिचार बिमर्द के उपरांत निर्धारित परिणामों के आधार पर सिनी जाती हैं। लेखन को प्रामाणिक सामग्री देन में बहुत कठिन परिश्रम करना पड़ता है।

ऐतिहासिक घनोचित्व से बचने के लिए जिस प्रकार ऐतिहासिक सामग्री तथा इतिहास का सच्ची तरह अध्ययन आवश्यक है, उसी प्रकार भौतिक अध्ययन की भी आवश्यकता है।

इतिहासकार उपलब्ध सामग्री एवं स्रोत के आधार पर प्रस्तुत युग की वैश्वता उद्दिष्टक तथ्यों का आकस्मिक आभेदन और उनकी व्याख्या करता है, ऐतिहासिक उपस्थापककार वातावरण की प्रामाणिकता में वास्तवता का समावेश कर एक नई बुनियाद ही रच डालता है। इतिहास का यह सृजन-आत्मक दृष्टा ऐतिहासिक उपस्थापककार अपने व्यक्तित्व के आधार पर नस्यमा के सहारे तथ्यों की बराबर अनायास ही 'अठ तथ्य' के अस्मृत स्रोतों की सृष्टि कर डालता है।<sup>1</sup>

(इ) पौराणिक धर्मवादात्मिक कथानक वाले उपस्थापक—धर्म की प्राचीन अवस्थाएँ विरल इतिहास में मिलती हैं—

- १—जब धर्म शास्ता और शासक का स्वयं प्रहण करता है,
- २—जब सामाजिक व्यवहार और रिवाजों को छोड़ कर धर्म का कोई स्वरूप नहीं होता और
- ३—धार्मिक धरिवादात्मिक युग में धर्महीनता की अवस्था।

धर्म के बौद्धिक युग का मनुष्य धर्म के परंपरागत धरिवादात्मिक तथ्यों तथा रीति-रिवाजों के परे कोई सत्ता स्वीकार नहीं करता। प्रायः प्रत्येक प्रगतिशील साहित्यकार धर्म की मनीषा-व्याख्या अपनी दृष्टि से उपस्थापित करता है। दूसरी ओर प्राचीनधर्म की लोच पुरानी दृष्टियों से चिपके रहने को धार्मिकता मानता है। अतः धार्मिक उपस्थापक जो दो बार हिस्से में हैं भी वे पौराणिक ढंग पर लिखे गये हैं। पौराणिक उपस्थापकों की सृष्टि धारम्य के ऐतिहासिक उपस्थापकों के ढंग पर ही हुई। इनका कथानक धरिवादात्मिक में पुराणों से लिया गया था यथा ('सती-सोता' 'बीर बर्ण' सुमद्रा' इत्यादि)। इन उपस्थापकों का उद्देश्य धर्मोपस्थापक और धारम्य सम्मता से प्रभावित तथा प्राचीन साहित्य और संस्कृति के प्रति उदात्त जनता को प्राचीन साहित्य से परिचित करना

1 "The ideal of an imaginative reconstruction of the past which is scientific in its determination and artistic in its formulation is the ideal to which the greatest of historians have ever aspired"

एक उपन्यासों की बराबर बढ़ती भाँग को पुराणों से सामग्री लेकर पूरा करता था। इन उपन्यासों का एक तीसरा उद्देश्य स्त्री-शिक्षा का प्रसार भी था। स्त्री शिक्षा के प्रसार से स्त्रियों को भी उपन्यासों की आवश्यकता पड़ी। तिस्रिस्त्री भय्यारी और जामुनी उपन्यासों के स्थान पर उनका लिये धार्मिक कहानियों पर आश्रित पौराणिक उपन्यास लिखे गये।

उष्णकोटि के साहित्यिक उपन्यासों का इस क्षेत्र में प्रभाव है। पं गौरीलाल मिश्र के दो उपन्यास—'बलिदान मंदिर' 'अपरेव' इस दिशा में कुछ सफल प्रयोग कहे जा सकते हैं।

ऐतिहासिकता रोमांस एवं सामाजिकता से प्रचलित धार्मिक उपन्यासों का प्रचलन बंगाली और पुर्बराठी साहित्य में पशुन ही से था। बकिम बाबू के 'घानह मठ' और 'देवी चौबराती' धार्मिक विश्वास की भासा बराप्रम एवं संममित जीवन के आधार रूप में प्रकट हुई थी। वर्तमान समय में कि एम० मुन्शी के धार्मिक रोमांसों ने उनके ऐतिहासिक रोमांसों में कम प्रसिद्धि नहीं पाई। उनके उपन्यास ब्रह्म (त्रिलोकी) 'भगवान परमुराम सोपामुद्रा' 'सामहृषिणी' ने भारतीय उपन्यास साहित्य में उपन्यासकारों के हृदय को एक नयी दिशा दी। उनके प्रथम उपन्यास 'बनी बसुनात' में 'तन्मम के चरित्र के उपरान्त धार्मिकता का बाताबरण तथा 'सिद्धनाथ' जैसे लौहपुरुष तथा ऐसे सिद्ध पुरुषों को सुदृढ़ व्यक्ति उपन्यास संसार में धार्मिकता की प्रवृत्तारणा करते हैं। हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिकता के साथ रूप पानी की भाँति मिली हुई धार्मिकता भगवती चरण वर्मा के 'बिचभवा' में धार के बाबूत मस्तिष्क का प्रदत्त बिम्ब बन कर आती है। राहुत जी तथा बतुरवेन धारणी के कतिपय उपन्यासों 'अपसोमनाथ' 'अपयोधेम' 'अपमरझाम्' के विषय में भी यही कहा जा सकता है। तथापि का चरित्र एवं उनसे प्रभावित स्त्री-पुरुषों के चरित्र तो हिन्दी साहित्य में भी मिल जाते हैं—यथा 'दिव्या' 'भारतपाली'।

(८) सामाजिक कथानक—प्रधान उपन्यास—इन वर्षों के अंतर्गत उपवर्ण किये जा सकते हैं—

(क) प्रसाध्यात्मक (ख) उपदेश प्रचार और (ग) समाज प्रकाश सामाजिक उपन्यास।

(क) प्रसाध्यात्मक उपन्यास—ध्यायी साहित्यिक और जामुनी उपन्यासों के अतिरिक्त प्रसाध्यात्मक उपन्यास भी हिन्दी में पर्याप्त संख्या में मिलते



पर उपरोक्तक कथानक सवार धारि का विधान होता था । इन उपन्यासों में कुछ ठा पौराणिक आधार पर और कुछ सामाजिक प्रश्ना का लेकर कथानक की सृष्टि की गई थी । पौराणिक आधार पर लिखे गये कतिपय प्रमुख उपन्यास य हैं—‘मती-आविर्भा’ ‘रामिष्ठा’ ‘मती मोती’ ‘मती मरामना धारि इस विषय में इतना स्मरणिय है कि इन उपन्यासों में जन-जीवन के मध्य सत्य दया पाठिष्ठ धर्म-नामन त्याग उपन्या परमार्थ धारि के गुणों की प्रतिष्ठा द्वारा मानवीय दुःखा के विकास में महत्त्वपूर्ण योग प्रदान किया । सामाजिक कुचोटियाँ तथा बाम-विवाह, कृत्रि-विवाह बहु-श्रया असुखता धारि के निवारणार्थ श्री मेखरो ने समकालिक औपन्यासिक कृतियाँ प्रस्तुत की । नाथ हो पारिवारिक-शोचन के भी कतिपय विश्व मयन हसके-गहरे रंग के नाथ उपस्थित हुए । इन विश्व के मूल में श्री मेखर पारिवारिक-मुक्त-समुक्ति की कामना का संज्ञोता रहता था । इस प्रसंग में यह कहना कदाचित् अप्राप्तिक न हुआ कि नलक की उपरोक्त प्रणय मनासृष्टि के कारण कला की कमनायता में कृत्रि नहीं हो सकी । इन युग की प्रमुख उपरोक्तक कृतियाँ य हैं— गोपालराम गहमरी के ‘बडा भाई’ एवं माय-पतोहू कातिक प्रमार कबी का ‘बोदालाय’ ईरकरोप्रमाह का ‘स्वराज्यदी’ रामनरेण त्रिनाथी का भारबाड़ा और पिछाचिनी’ लखाराम रामा का धारम हिन्दू ब्रजनन्दन सहाय का ‘धरप्य बाता’ तथा चारकरस का ‘बाबू हास्टम’ गिष्ठा एवं उपरोक्त प्रमान उपन्यासों के प्रथम भाग के प्रमुख एवं प्रतिनिधि उदाहरण हैं ।

प्रेमचन्द एक घान-घात उपरोक्त प्रमान कृतिया का प्रकथन प्राय स्तुता लिखून लेने लगा । मेखर का उपरोक्तक कृति का पापण धारिबानी भावनाओं की सृष्टि में होने लगा ।

### (ग) समस्या-प्रधान सामाजिक-उपन्यास

अन्य पापाओं के उपन्यासों का भाँति ही हिन्दा में था विपुल रूप से सामाजिक प्रश्नों को लेकर लिखे गये उपन्यासों का प्राय प्रमाण ही है । समाज का और राजनीति का बड़ा ही व्यापक एवं गभीर सम्बन्ध है । अन्तु, नरक न प्राय समाज धार राजनीति के प्रश्नों का एक ही साथ नल का ज्यटा की है । उदाहरण के लिये इन प्रेमचन्द के उपन्यासों को ही ले लें । उनमें राजनीतिक बातावरण का भी विश्व है । माय साय ही धान्य एवं वापिक शोचन की नाथ-समस्याएँ समिक रूपक एवं बहिक बग के विविध विश्व भी हैं । शीक-शोच में धार्मिक प्रश्नों एवं धनहातक समस्याएँ भा

विद्यमान है। समाज के विभिन्न वर्ग के व्यक्तियों के जीवन चित्र भी उपस्थित किये गये हैं। इस दृष्टि से प्रेमचन्द का 'सेवासदन' (सन् १९१८) अपना विशेष महत्त्व रखता है। 'सेवासदन' (सन् १९१९) में प्रेमचन्द ने अपनी इस कला का प्रत्यक्ष मध्य एवं जीवन व्यापी स्वरूप उपस्थित किया। उक्त परम्परा के कल्पित प्रतिनिधि उपन्यास नाम क्रमानुसार इस प्रकार हैं— 'प्रेमापन' 'देहाती दुनियाँ' 'रंगभूमि' 'जाया बरन' 'मीठी कुड़की' 'बिरा' 'बिर्मसा' 'घनाब-वल्मी प्रतिज्ञा' 'माँ बंदास' 'बेरवा-पुत्र' 'सत्याग्रह, राठवी' 'धन्धरा' 'पन्न' 'त्यागमया' 'हृदय की प्यास' 'धमर धमिसाया' 'सुनीता' 'कर्मभूमि' 'ठिठकी' 'गयाल' 'सवापे' 'बचन का मोल' 'धोला' 'बिजय' 'प्रल' 'बिकास' 'तमाक' 'कस्वाली' 'व्यापक' 'बहती धुन' 'उत्का' 'गारी'।

इन कृतियों में सामाजिक समस्याओं को लेकर लेखकों ने विभिन्न रूपों में विचार किया है। समाज का एक पदस्थित वर्ग है जिसमें कृषक श्रमिक भिक्षुक वेस्वाएँ विपदाएँ धारि हैं। इनका नारकीय जीवन कितनी भी हृदय का हिमा मकता है। इनकी करण कथा समाज के लिए एक कर्मक के रूप में है। लेखकों ने अपनी कृतियों में इनकी समस्याओं को प्रत्यक्ष उद्यार दृष्टि में देखने का प्रयत्न किया है। इन समस्याओं के प्रकारान्तर से समाधान भी उपस्थित किये हैं। उदाहरणार्थ हम 'हृदय की प्यास' एवं 'धमर धमिसाया' का ले सकते हैं। इनमें गारी-जीवन की कस्तुरि स्थिति का प्रत्यक्ष शार्मिक चित्रण है। इसी प्रकार ( 'बिरा' 'सुनीता' 'बिकास' 'उत्का' 'प्रल' 'ठमाक' 'कस्वाली' 'व्यापक' धारि ) कृतियों में गारी की विभिन्न समस्याओं पर लेखक ने प्रत्यक्ष परीक्षा के नाव विचार किया है।

(३) राजनीतिक अथवा राजनीतिक कथानक वाले उपन्यास

दुर्भाग्यवश सामाजिक उपन्यासों की कोई सुमम्बद्ध परम्परा नहीं है। यद्यपि एक राजनीतिक उपन्यास का कोई 'सूत्र' नहीं चल पाया है। सामाजिक धीर राजनीतिक भावनाओं का परम्पर इन भाँति सम्मिलण हो गया है कि जिस प्रकार कुछ सामाजिक उपन्यास नहीं हैं, उन्ही प्रकार कुछ राजनीतिक उपन्यास नहीं के बराबर हैं। विदेश के विख्यात राजनीतिक उपन्यासकार डिबर्नी 'एच० बी० वेस्' हृदयमें जाँच प्रसन्न धारि उपन्यासकार होने के नाव-भाव चिन्तक भी हैं।

आठवर्ष के राजनीतिक वापरण का इतिहास बहुत धंश तक राष्ट्रीय काव न क धान्दोलनों का ही इतिहास है जो प्रेमचन्द के नाव धारि होता

है। प्रेमचन्द के 'प्रेमात्मन' में किसान जापरख का 'कर्मभूमि' में सहयोग से उमड़ती जन भावना का गहन' म पुसिस के हृदयों का तथा ममतासूत्र' में क्रांतिकारी भावनाओं का धीरे 'दोषान' में गांधीबादो अहिंसारमक विचारों का चित्रण किया गया है। जनक की मुनीठा' मुसबा' धीरे 'विद्वत्' धारि में क्रांतिकारिया का रहस्यमय जीवन अपनी पूछ-सजीवता से साप व्यक्त हुआ है। राजा राधिकारमल प्रसाद सिंह के 'पुस्य धीरे नारी' म सत्याग्रह मान्योसन' का अन्धा चित्रण हुआ है। डाक्टर भीनाय सिंह के 'जागरण' में गांधी जी के 'मांन की धीरे सौते बाता माय अमिभ्यक्त हुआ है। धी रामकृष्ण बेनीपुरी का 'पठितों के बेध' में मोहनलाल महतो बियोगी के विचरजन' धीरे 'उपर' राजनीतिक हसनसो को व्यक्त किया गया है। इस प्रकार राजनीतिक दृष्टिकोण से समूचा प्रेमचन्द मंडल गांधीजी के धारणों से प्रभावित प्रतीत होता है। इनका समाजबादो दृष्टिकोण नैतिकता को कसौटी पर खण उतरता है। जब कि इस प्रकार के उपन्यासों का एक दूसरा वर्ग भी है जिसके विचार पहले-से सिद्ध हैं वह है—माम्यवाद से प्रभावित लेखकों का।

हिन्दो में साम्यबादी उपन्यास की वर्धा में उन्ही उपन्यासा का लिया जायदा जिनके लेखक विचारक्रम से स्वयं नी साम्यबादी हैं। इस प्रकार क लेखक अपनी रचनामा को साम्यबादी धारणों धीरे सिद्धान्तों की अमिभ्यक्ति की बाहिदा के रूप में प्रस्तुत करते हैं। साम्यबादी रचनाधा का मूसाधार हैं मार्क्सबादी दर्शन। मार्क्स की विचार परम्परा के अनुसार मनुष्य की बितना उनके अस्तित्व से निर्दिष्ट होती है। पारिब-दृष्टियों की अस्तित्व से विचारात्मक प्रबिया का जन्म होता है। अतः मूल में वस्तुबादो दृष्टिकोण होना सर्वथा अपेक्षित है। मार्क्सबादी साहित्यकार अपने साहित्य के नम्र में मानव की प्रतिष्ठ करेता है। मार्क्सबादी दर्शन के अनुसार समाज में कैबस दो वर्ग हो सकते हैं—सर्वहाण धीरे शोषक वर्ग के धात्र मसोम युग में बहुत बड़ा वर्ग धारिक दुसाजी से अस्त है। धारिक विपत्रता का अर्थ है—जीवन धारण के तर्कों का अभाव। भौतिक जीवन का यह अभाव व्यक्तिक को अत्यन्त संकीण निप्याण धीरे अड कर देता है। नैतिक माम्यसर्म्य धीरे धारिभक्त मूल्य अत्यधिक फिर जाते हैं। शोषक धीरे शोषित दोनों वर्गों में अनेक प्रकार की मनोवैज्ञानिक अल्प मानसिक विविधता धीरे योगविहृदियां धा जाती हैं। मार्क्सवाद के ही अन्वय में हम सब व्यक्ति धीरे समाज की अन्वयों का ठीक निदान कर पाते हैं। मार्क्सबादी अपनी इस विचार



चरित्र को प्रत्येक स्थान परिस्थिति और समय में प्रभाव रूप से प्रकृत करता है। इस दृष्टि से उसे बहु एक सादर और सार्वभौमिक दर्शन के रूप में स्वीकार करता है।

साम्यवादी उपन्यास में दार्शनिक आचार की खोज और दृष्टि का महत्व इतना अधिक हो जाता है कि उसकी सबसे भावपूर्ण वस्तु सचेतनीयता प्राप्त हुई जाती है। किसी भी साहित्य प्रकार की सफलता की सर्वोच्च कसौटी उसकी संवेदनशीलता है। सोवियत साहित्य में इस दृष्टि से बहुत कम सफल रचनाएँ उत्तर चुकी हैं। कमी-कमी सचक उत्साह में प्रथम वैज्ञानिक विश्वास और कृपित्व का ही चरित्र के क्रियात्मक चित्रण का रूप समझ लेता है। कलात्मक साधन और सचेतनीयता के लिए इससे बचकर पाठक प्रथम कोई मूल नहीं।<sup>1</sup>

माक्सवादी कलाकारों में यद्यपि नरोत्तम नागर, सर्वोच्चतम वर्गों प्रमुत्तराय नाबाहुन तथा रायेयराम प्रमुख हैं। यद्यपि ने 'शाशा कामरेड' पार्टी कामरेड' इस दृष्टि मनुष्य के रूप धारि में साम्यवादी विचारधारा की सफल अभिव्यक्ति हुई है। नरोत्तम प्रसाद के 'दिन के तारे' सर्वोच्चतम के नरमय तथा 'घान्त्व विवेक' प्रमुत्तराय के 'बीज' नागाहुन के 'बचनाना' तथा 'रतिनाथ की आधी' रायेयराम के विचार मठ और 'हुजूर' धारि में माक्सवादी विचार की जमकर लिस्ती उड़ाई गई है और जन-सहीय समस्याओं का चित्रण प्रचारवादी दृष्टिकोण से किया गया है। अन्तिम दो उपन्यासों में विचार रूप में भाव के समाज के सापण मजती, दार्शनिक और परबधता का चित्रण किया गया है। उपरुक्त उपन्यासों में जयकां न पाठक की संवेदना को महुराई में स्पर्श करने का प्रयत्न किया गया है। यद्यपि 'बढ़ती धुन' नई इमारत और जयका मेर माक्सवादी के 'इन्तु' गुदरास के 'स्वाधीनता स्वाधीनता के पथ पर', 'पबिक' 'पबिक' बिदुल छाया स्वराज्य शान 'माहुकता का मूल्य' 'विश्वासपाठ मरुत ज' के 'हुजूर न पाण', किमीरी

1 But for the form of writing which substitutes the opinion of the author for the living actions of human being they (Marx & Engels) always possessed the greatest contempt.

भारतगण के 'राष्ट्र के लिए प्राणिक उपस्थानों के विषय में वर्षों की गहनमूलक इलजतों का बड़ा ही नवीन चित्रण मिलता है।

### (ऊ) अथ कथा-प्रधान उपन्यास

इन उपन्यासों के अनिश्चित कुछ कथा-प्रधान उपन्यास ऐसे भी हैं जो इनके समतल नहीं माने। इनमें लक्ष्मीदान बोधो रचित 'उपा-कुसुम अथवा नई मुद्रि' में 'राजिन्दर कृमा' के इंग की एक मैत्राली की कहानी है, जिसे मध्यम कहा कहा जा सकता। ब्रजमदन महाय-रचित 'पारथ्य बाला बालु की 'बाईबरी का एक महा और अत्यन्त अनुकरणीय मान है।

इन कथा-प्रधान उपन्यासों की महत्त्व प्रदान विशेषता की—प्रेम का चित्रण। अथ की राज्य के 'राजिन्दर बालाबालु में ब्रजमदन के मन्तव्यन के लिए प्रेम से बहकर और कील-मा विषय हुआ करता था ? भारतवर्ष में प्रेम पाहित्य का एक मुख्य और चिरन्तन विषय रहा है। हिन्दी में उपन्यासों का भी प्रारम्भ उन्हीं प्रेम के चित्रण से हुआ है। कथा प्रधान उपन्यासों में प्रेम की महत्त्व प्रदान विशेषता की समझा परंपरागत चित्रण। महा उपन्यासों में प्रेम की धारा अथावक बहने से बहती है।

इन कथा प्रधान उपन्यासों में चरित्र-चित्रण बहुत ही कम मिलता है। चरित्र नवी प्रायः किसी प्रकार-विषय प्रतिनिधि ('टाइप') के रूप में ब्रजमदन है। वे चरित्र अविशाल हैं या तो बिनकुल बने ही हैं या बिनकुल ही बने शेष में कोई नहीं।

इस कथा-प्रधान उपन्यासों में लक्ष्मीदान का एक अत्यन्त हृदयकला के देखा। उनके अनुमान मानव और और कायर, बुद्धिमान और पूर्ण सुन्दर और कुलप हुआ करता है परन्तु स्वार्थ स्यागो और उदार कभी नहीं हो सकता। ब्रजमदन बर्षों की परलक्षणा में अनुपम हिल-पर-दिल अथवा स्वार्थों और हीन होने पर। इन उपन्यासकारों में सामाजिक समाज के इन विमूर्खता को ही देखा और उन्हीं ही मध्य मान लिया। निम्न उपन्यासकारों में भी समाज को इन्हीं रूप में पाया परन्तु उनमें मानव चरित्र के उदात्तताओं के देखने की भी क्षमता की इन्हीं कारणों इन्होंने इन बर्षों बर्षों के चित्र अस्मिन् विषये परन्तु इन उपन्यासकारों में केवल एकाकी चित्र अस्मिन् विषये और सबसे आश्चर्यजनक बात ता यह भी कि इन प्रकार का हृदयकला होने हुए भी उन्हीं काव्य-न्यास (Poetic Justice) पर इनका अर्थिक और विषय।

विषय-प्रधानता की दृष्टि से इसी वर्गीकरण को एक प्रकार के रूप में प्रस्तुत किया गया है—

(१) काव्यनिक कथानक-प्रधान उपन्यास । इसके तीन उपभेद हैं—(क)

रोमाञ्ची (ख) आध्यात्मिक एवं (ग) बुद्धीविषय ।

(२) सामाजिक कथानक-प्रधान उपन्यास ।

(३) ऐतिहासिक कथानक-प्रधान उपन्यास ।

(४) मनोवैज्ञानिक कथानक-प्रधान उपन्यास ।

(५) राजनीतिक कथानक-प्रधान उपन्यास ।

(६) पौराणिक कथानक-प्रधान उपन्यास ।

२—इति की दृष्टि से वर्गीकरण—

(क) कथा के रूप में ।

(ख) आत्मकथा या आत्म-कथा के रूप में ।

(ग) चिट्ठी-पत्री के रूप में ।

राजशेखर शुक्ल उपन्यासों के दृष्टांत के अनुसार तीन मुख्य भेद करते हैं—  
कथा के रूप में आत्मकथा के रूप में और चिट्ठी-पत्री के रूप में ।<sup>१</sup> उनमें से  
प्रथम प्रकार उदाहरणों का प्रथम कही मन्त्र में हुआ करता है । द्वितीय के उदाहरणों  
में धर्म-हिन्दुओं में काष्ठ है जैसे हिन्दुओं का धाम (को पा० धीवास्तव)  
कम्पली 'म्यान्वय मुखबा' म्यतीत (जैनेन्द्र) वास्तुमृत् की आत्मकथा  
(हजारी प्रकाश प्रिन्टर्स) धारि । तृतीय के उदाहरणों हिन्दी में बहुत कम पाए  
जाते हैं जैसे 'बंद इमीनी के लल्लु' (उद्य) धर्म के 'नदी के द्वीप' का उदाहरण  
एक प्रकार से उदाहरण उपन्यास का रूप में लगा है ।

३—कथावस्तु के स्वरूप और समय के अनुसार

कथावस्तु के स्वरूप और समय के अनुसार पं० राजशेखर शुक्ल<sup>२</sup> ने बर्न  
मान उपन्यासों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—

(१) अन्त-वैश्वस्य प्रधान—अन्त-धर्मवत् कुतूहलजनक जासूसी एवं  
वैज्ञानिक आश्चर्य का समन्वय विज्ञान वाले उपन्यास धारि यथा—  
अन्त-प्रधानता धर्मवत् ।

(२) अनुषंग के अन्त-पारम्परिक अन्त-धर्मों की साक्षरता पर प्रधान लक्ष्य  
रखने वाले जैसे 'महा मन्त्र' 'विद्वान्' 'गोलाक' धी विश्वम्भरनाथ 'कौशिक'

१ राजशेखर शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास—पृ० २४१ ।

२ वही "पृ० ४१-४२ ।

का 'वा' निष्कारिणी भी प्रदानमाद्यया श्रीराम्य का 'विद्या' 'विद्या'  
'विद्यया' चतुस्त्रय सादरौ का 'हृदय' की व्याप्त ।

(३) ममात्र के भिन्न-भिन्न रूपों की परस्पर स्थिति और उक्त संज्ञक  
का चिह्नित करन बाप जैसे प्रेमचन्द जी का 'रमभूमि' 'कर्मभूमि' प्र  
का 'कदास' तिलसौ ।

(८) सन्मृत्ति प्रववा शील-वैचिष्य और उक्तका विवाह-क्रम धरि  
करन बाप जैसे प्रेमचन्द जी का 'गहन' भी जैन-प्रभुनार का 'नपोर्नी'  
मुनीना ।

(९) भिन्न-भिन्न शक्तियों और ममानुयायिया क बाप मनुष्यता क व्या  
मध्यम पर बार देने बापे जैसे राजा गणिकारमणुप्रसादमिहू जी का—'र'  
—रूपीम ।

(१) ममात्र क पाठ्य-द्वय कुम्भित पधा का उद्घाटन और विज्ञप्त क  
बाप जैसे पाठ्येय बचन धर्म उय का 'दिम्मा' का हतास 'मरका' मुन्हा  
सांवा म 'हुपुका' का बटी ।

(३) बाह्य और धाम्यतर प्रकृति की सम्युत्पत्ता का समन्वित रूप  
विज्ञप्त करन बाप सुन्दर और धनकृत पर-विद्याम हुम् उद्योग जैसे स्वयं  
धी बहा प्रभाव 'हृदय' का मयक प्रभाव ।

४—क्रिया-रूपाय की रूति म उपन्यास बार रूपों म विमल विन्  
मचते हैं—

- (क) धरता प्रधान उपन्यास ।
- (ख) धरित प्रधान उपन्यास ।
- (ग) बातावरण प्रधान उपन्यास ।
- (घ) भाव प्रधान उपन्यास ।

कर्म-कथा उपन्यास म धरता धार धरित का मनुष्यन रचना है । प्रम  
क प्रायः ममा उपन्यासा म धरताएँ और धरित ममात्र रूप से प्रभाव है  
धरताका की मुक्ता म धरित प्रयातना का परिचय उम समय मिलना है ।  
कि ह्यम अक्षर और मय्य क उपन्यासा का धनुनीतन करन है ।

१—उपन्यास मचटन क धनुमार

पिचबिन म्यार दि मृत्पर धाफ दि मय्येन क धनुमार उपन्यास ।  
बनीकरण बार विभावा मे लिना जा मचना है ।

- (१) धरता और धरित प्रधान ।

‘एडविन म्योर के धनुषार ऐसे उपन्यासों की संख्या सबसे अधिक है जो विचित्र घटना-क्रम को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं जिससे पाठक का मनोरञ्जन हो सके।’

‘एडविन म्योर’ अग्नि प्रदान उपन्यासों को कथारमक बच साहित्य का प्रमुख ग्रंथ मानता है।

## (२) नाटकीयता प्रधान-उपन्यास

सिबनारायण श्रीवास्तव<sup>१</sup> के धनुषार नाटकीय उपन्यास उपन्यास-वाङ्मय का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। इनमें कथावस्तु और अग्नि का भेद नहीं रह जाता। कुछ विद्वानों का ठा कहना है कि इन्हीं उपन्यासों में कथा की पूर्णता विकसित होती है। इनमें कथावस्तु और अग्नि का भेद नहीं रह जाता। दोनों का अन्वयान्वाधित सम्बन्ध होता है। सिबनारायण श्रीवास्तव के विचारपूर्ण अद्विकस रूप से एडविन म्योर के विचारों पर प्रभावित है। इन उपन्यासों में घटनाओं और अग्नि के उचित पारस्परिक सम्बन्ध निरन्तर धारण्यक है।

१—जीवन के इतिहास जड़ के रूप में अथवा इतिवृत्तात्मक क्रम के रूप में—

जब हम जीवन का प्रधान रूप में समय की व्याप्ति एवं स्थान के विस्तार में मनमोह की शक्ति में संशय द्वारा उपस्थित किया हुए दृष्ट रूप में देख पाते हैं, तब हम वास्तव में जीवन को उससे अधिक पूर्णता से समझते हैं जितना कि उस समय जब कि हम उस समान रूप से जानते हैं कि साधारणतया होता है। दोनों में ही स्थित रूप में देखते हैं। कुछ क्षण होते हैं जब हम एक बार ही ही अपने समस्त कल्पना की उनक कारणों का उनके परिणामों की समय की व्याप्ति में उनके समस्त-क्रम की भूल-सी पा जानते हैं। कुछ दूसरे देखते हैं जब हमें इस बात का भाव होता है कि हमारा पूर्ण साधारण एक बर्तन-विषय का-ना है। हम अल्प मनुष्या की अति परिस्थितियों के धनुषार साधारण करते हैं और हमारी भावनाएँ और साधारण उन्हीं के-स है। ये दोनों धनुषार साधारण धनुषार में अधिक मोह एवं पूर्ण प्रतीत होने के कारण साधारण धनुषार में पृथक्त्व का विषयता स्थान है। यही क्षण है जिसको हम में नाटकीय एवं अग्नि प्रधान उपन्यासों में स्थापित किया जाता है, वे पूर्ण तथा स्पष्ट हैं। हम उन्हें कभी एक साथ पा ही नहीं सकें। वे हमारे अल्प

१ एडविन म्योर—द्वि स्तुतकर घाट वि मोबेल —पृ० २१।

२ सिबनारायण श्रीवास्तव—‘हिन्दी उपन्यास’—पृ० ३६।

सगुण स अचिद पूर्ण होते हैं क्योंकि हम जीवन को समय की ध्याप्ति में, अपना स्वान के विस्तार में उसके विषय रूप और महत्व के सहित विस्तृत रूप में प्रस्तुति द्वारा एक मात्र देख सकते हैं और हम उसे पूर्णता में भी देख सकते हैं पर ऐसा समय और स्थान दोनों में एक साथ ही नहीं देखा जा सकता । जीवन के क्षण में हम जीवन को इस प्रकार प्रबन्ध बिना विस्तृत रूप में प्रस्तुति द्वारा एक मात्र देख सकते हैं । हमारे दैनिक जीवन में समय और स्थान दोनों क तथ्य समान रूप में तात्कालिक महत्व रखने हैं और जिस बात का हमें ज्ञान होता है वह है केवल निरंतर रूप में घटित होने वाला परिवर्तन जिसके साथ एक-दूसरे महत्वपूर्ण एवं निश्चित रूप से निर्मित स्थायी अणु होते हैं पर उनका कोई रूप नहीं होता है । सांख्यिकीय सौन्दर्य को प्रस्तुति द्वारा स्पष्ट रूप में चित्रित करने का उद्योग हमें इस निरंतर रूप में घटित होने वाले परिवर्तन का एक मात्र निवास देते हैं । उस निरंतर रूप से स्थिर एवं अन्तर्हीन रूप के स्थान पर जिसमें इष्टि एक मात्र हमारी घोर संबन्धी रहती है और जिसमें उसको एक निश्चित केन्द्र पर बाँध रखने के लिए कुछ भी नहीं जाना जो स्वयं का रूप विस्तार हमारे सामने घाटा है वह एक घोर पूर्ण होता है वह अस्पष्टता से हाकर निश्चित हुआ होता है वह अपने अन्तःकरण को हटा हुआ होता है और अपने ही अन्तःकरण में पूर्णरूप में कुछ का भग हुआ होता है ।<sup>१</sup>

इसके बाद एक तीसरा विभाग है जो महत्व में इन दोनों विभागों से कुछ ही कम है पर इस विभाग के संबंध में सबसे बड़ी बात यह है कि इसी के प्रस्तावित रूप में अज्ञान औपचारिक कृति की रचना की गई है । उपस्थास-रचना के सब मान्य-विभागों को प्रबोधना करने के लिए भी बार एष्य वीम जीवन का ध्यानक बिना समय और स्थान दोनों क ही विस्तार में प्रस्तुत कर सर्वभौमिकता का कुछ प्राप्त करता हुआ प्रतीत होता है । स्थान विस्तार एवं समय की

1) Instead of a continuous endless scene in which the eye is caught in a thousand directions at once with nothing to hold it to a fixed centre the landscape that opens before us is whole and single- it has passed through an imagination it has shed its irrelevancy and is compact with its own meaning

स्वाति बोना ही बार एषट पीस में मय है पर यदि मय पूजा जाय तो उसकी पत्ता की मतिशीलता केवल समय में ही है ।

'बार एषट पीस' में मानव जीवन को न्याय प्रपचा समाज की वृष्टभूमि के साथ नहीं प्रस्तुत किया गया है । बल्कि उसे छासकत रूप में परिवर्तनशील मानव जीवन की वृष्टभूमि के साथ प्रस्तुत किया गया है । यह किमी साधारण नियम का विद्विष्ट साकार रूप नहीं है, इसमें विद्विष्टता एक सामान्यता एक ही साथ है ।

इतिवृत्तात्मक उपन्यास का संघटन सांस्कृतिक उपन्यास के संघटन से अलग रहता है । सांस्कृतिक उपन्यास की कथावस्तु के विस्तार का विकास कदाई में धीरे-धीरे मय पूरा रूप पर होता है और इतिवृत्तात्मक उपन्यास का कथावस्तु का विस्तार घटनाओं की सीमा में समाप्त हो जाता है जो एक कड़ी काय प्रकृति के भीतर बंधा रहता है जो वह समय है जिसकी मानव मस्तिष्क के द्वारा गगना की गई है ।

#### (४) सामाजिक उपन्यास

इतिवृत्तात्मक उपन्यास में भिन्न पर ऊपरी दृष्टि से इतिवृत्तात्मक उपन्यास में बहुत अधिक समानता रहने वाला सामाजिक उपन्यास का एक और वर्ग है । इन वर्ग का सबसे प्रमुख प्रतिनिधित्व कर्नैंगर (उपन्यास) मयी में होता है जिसे 'कारसाइट सामा' 'दि मू मेकिंगबोली' और 'मिस्टर ड्राइवर्स रेकार्डस प्राय धर्म रिजन सायक' के द्वारा किया है । सामाजिक उपन्यास का लक्ष्य इतिवृत्तात्मक उपन्यासों के लक्ष्य से भिन्न है । यह उनसे कम महत्वाकांक्षी है और कम बातों को अपने में संकोचता है पर उनसे अधिक सांस्कृतिक प्रभाव उत्पन्न करने वाला और अधिक उपयोगितावादिता वाला है । इस प्रकार का उपन्यास कभी इतना दुःसाहस नहीं करता कि वह समाज के उस चित्र को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करे जो हर समय के लिये ठीक हो इसका उद्देश्य प्रकृत हस्त और एक साम प्रकार का होता है । यह केवल वर्तमान समाज के एक भाग को दिखाता है और वह भी परिवर्तित होता हुआ है ।

सामाजिक उपन्यास स्वरूप का विचार करने में इतिवृत्तात्मक उपन्यास में न केवल उत्तमता की कोशिश के विचार से भिन्न है बल्कि प्रकार में भी यह उन मानवीय मयों को देने का प्रयत्न नहीं करता जो एक समय के लिये मय हैं, यह तो केवल परिवर्तन के एक 'स्टेज' पर स्थित समाज में प्रपचा आगता रहती है और चरित्र की मयों के ही होने हैं जो जहाँ तक हम समाज के प्रति

निधि अग्नि होने का संबंध है पूर्ण मरवम्बल्य प्रशंसित करने है । इस प्रकार का उपन्यास हर बात को विविध मानेय और ऐतिहासिक बना देता है । यह जीवन की सार्वभौमिकता देने वाली भावों में नयी देवता बरम् उसे वह एक अल्प सूचना-संग्रहीत दृष्टि में दृष्टता है जिसके व्यापार में प्रतिपादन व्यापार प्रकृत भाषा भी सहायक होती रहती है ।

(घं) अरिष-चित्रण को दृष्टि में—

अरिष-अध्यास उपन्यास—साहित्य क्षेत्र में अरिष-अध्यास उपन्यास भी विशेष महत्त्व रखने है । इसकी एक विशेषता यह है कि पात्रों की सृष्टि कथानक के आभास पर न होकर स्वतन्त्ररूप से होती है । लेखक अपनी रधि एवं पद्धति में अनुभव ही उनके समस्त क्रिया कलापों को व्यक्त करता है । उन रचनाओं के कथानक का उद्देश्य पात्रों के गुणों और प्रकृतियों पर प्रकाश डालना रहता है । प्रमथम् के 'रमभूमि' और गवत अरिष-अध्यास उपन्यासों में प्रमुख स्थान रखने हैं । इन उपन्यासों में अल्प अरिष का प्रकार के होने है—(१) व्यक्तिगत प्रकृति विकसित अरिष (इतिवृत्त-प्रकृति प्रकृति) (२) प्रतिनिधि प्रकृति अरिष (टाइप्स प्रकृति फॉर्म) प्रमथम् के सभी पात्र विविध वर्गों के प्रतिनिधि हैं । जब कि इसाध्यास अरिष प्रकृति के पात्र अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं में ही सब कुछ हैं, वे प्रमथम् के पात्रों को नैतिक किरी विविध वर्गों के प्रतिनिधि नहीं होते ऐसे उपन्यासों में लेखक पात्रों को अर्थकर परिस्थितियों में घाते बढ़ने को विवश करता है ।

मनोवैज्ञानिक उपन्यास—मनोवैज्ञानिक उपन्यास का विकास अल्प रूप एक आलोचक ने लिखा है—'मेरे लेखे प्रमथम् में जाते-जाते और मगधती-करण बर्मा न प्राप्त हो व्यक्ति को एकाधिक सत्ता के अध्ययन को अल्प महत्त्व कर ले भी लेकिन व्यक्ति की सत्ता और व्यक्ति-भाव का महत्त्व अनेक कुमार के उपन्यासों के साथ आया ।' श्री सिवनारायण श्रीवास्तव के मत से भी हिन्दी साहित्य में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आध्यासों को विवश करने का सब में अल्प प्रयास अनेक ही का रहा<sup>१</sup> । उनके 'परम' 'रमभूमि' 'मुनीता कल्याणी' 'त्यागपत्र' 'अज्ञेय' आदि प्राय सभी उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक

१ साहित्य सर्वेस—भाष १८—अंक १२

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास—राजेश्वर कुप्त एम० ए० ।

२ सिवनारायण श्रीवास्तव पृ० २११-१२



विश्लेषण की प्रयातता है। धादि मे समस्त लक्ष इनके पात्रा की प्रत्येक बात उनका प्रत्येक बात उनका प्रत्येक संकेत उनके मनोभावों की वास्तविकता का प्रदर्शन करने की चेष्टा करता है।

(क) टीसी की दृष्टि से—

- (घ) बर्लानात्मक टीसी
- (ङ) विश्लेषणात्मक टीसी
- (च) पत्र टीसी
- (छ) म्हापत्र टीसी।

हिन्दी के धर्मिकग्रंथ उपन्यासों की टीसी बर्लानात्मक है। प्रेमचन्द प्रचार (नोटिड बल्बम) पत्र तथा प्रेमचन्द स्कूल के धर्म उपन्यासकारों के उपन्यास इसी टीसी में हैं।

जोड़ी 'धर्म व भगवती' चरित्र बर्लानात्मक धादि उपन्यासकार विश्लेषणात्मक टीसी के लेखक हैं। पत्र टीसी में प्रफुल्लचन्द घोषा मुक्त का पत्र घोषा 'पुष्प' नामक पुस्तक ३८ पत्र है। 'उप का चम्पू इतिहास के पात्रों' नाम प्रकार का चम्पू उदाहरण है। जोड़ी का 'न्यासी स्वगत टीसी का उदाहरण उदाहरण है। स्वर लीप है कि पत्र टीसी एवं स्वगत टीसी में रचनाएँ बहुत ही मूल संख्या में हैं।

(ख) बहस की दृष्टि से—

- (घ) केवल मनोरंजनार्थ सिद्ध गये उपन्यास
- (ङ) हास्यरस के उपन्यास
- (च) धार्मिकमूलक मनोरंजक उपन्यास
- (छ) पद्यार्थकारी उपन्यास
- (ज) समस्यामूलक उपन्यास
- (झ) प्रयोगकारी उपन्यास
- (ञ) अनुरिक्त उपन्यास।

(घ) केवल मनोरंजनार्थ सिद्ध गये उपन्यास—उपन्यासों की यह धार्मिक नामकरण खेती जाती गई है। कठिन धार्मिक इन्हें कुत्तार के उपन्यासों की संज्ञा प्राप्त की है। इन उपन्यासों द्वारा केवल मनोरंजन को ही सिद्ध होती है। उदाहरण के लिये 'प्रिया लीला-संज्ञा' का नाम दिया जा सकता है। 'गङ्गा लीला' के सम्बन्ध में श्रीर संज्ञा कुत्तारों के सम्बन्ध में लक्ष्मी कुत्तारिता सिद्ध धार्मिक का वर्णन प्राप्त है। पाठकों को इसी विषय में समझ करके का

मायक प्राप्त हो जाना है। 'घाम्हा-ऊदल' 'किस्सा गुलामावली' 'सिंहानन बलीसी बीनास पकीपी खरीमी नरियारी' 'किस्सा माहे तीम घार' और एक रात ये तीन जून घाबि इमी प्रकार की रचनाएँ हैं।

(ब) हास्य के उपन्यास—घाम्हाऊदल मद्र रचित 'पी घवाल एक मुजल' हास्यरस की प्रतिष्ठ कृति है। पी बी पी घीबाम्हा क लतलोरीलाम और 'स्वामी बीलटानन्द नामक उपन्यास में हास्यरस प्रबल है पर इनमें संयम का प्रभाव लटकता है। निराला जी के 'कुम्भी नाट और बिम्बेमुर करिजा' भी हास्यरस की कृतिवाँ हैं। पर इनमें हास्य परिम्बिदि प्रमूठ न होकर बेबल बलुंगत है। 'उप' की 'बुबुबा की बेटी' बिम्बी का बलाक' 'बन्द हुसीनों के बलुठ' और 'दाराबी' में व्यस्य और हास्य का सम्मिश्रण है। इस तीनों के कृति पय प्रस्य उपन्यास में हैं।

'मूर्खराज' महा कवि बधा येन बोरुमल काट का उल्लू बल्लू चोरी का बूटा' पिंगमन की शायरी 'मिल्लर मेकीकल का मेकीपील 'नबार मन्कन' 'गुनाइ बेकजमत' घाबि।

(स) धारार्थमुक्त यथार्थवादी—धारार्थवादी का ही निरूपण करन वाली परम्परा उपन्यास क्षेत्र में प्रथम संभव नहीं है। यदि धारार्थवादी का ही बिस्स पस या निरूपण किसी कृति में होया तो यह कृति फिर जीवन की कृति न होयी क्योंकि लौकिक जीवन में निराला धारार्थवादिता साधारणतः नहीं मिलती। बल्लू यथार्थ को ही बिसेष महत्व प्राप्त हुआ है। हाँ यह प्रबल हो सकता है कि इधारा यथार्थ धारार्थ को लेकर चलन बासा हो। बल्लू यथार्थ की धारार्थमुक्तता ही जीवन का सत्य है। प्रसार' में 'कंधाल' और 'निलमी' में इमी सत्य को देखना चाहा है।

(द) यथार्थवादी उपन्यास—जीवन को वास्तविकता जब कला क लत्र में प्रतिब्यक्ति की समस्त समन्वीयता के साथ प्रबतरिठ होती है। तब उसे हन यथार्थवादी साहित्य के नाम से परिचित करते हैं। यथार्थ का निरूपण बहुत कुछ सापेक्षता रखता है इसलिये युगोप परिस्थितियों के अनुकूल यथार्थ के रूप भी परिवर्तित होन रहते हैं। यथार्थवादी उपन्यास का प्रत्येक मसल भी अपनी मान्यता के अनुकूल होता है, इसका उदाहरण यदि देखना हो तो बिष्णु प्रमाकर लिखित 'निशिकान्त' उपन्यास पढ़िये। इसमें मायक का चरित्र सिधक की धार्य समन्वी-मुबार की मनोकृति के अनुकूल हुआ है। अहाज के 'पछी' नामक उपन्यास में इमाबन्द बोली न गजनीति और समाज के अनेकानेक दुराचारों पर हलि

पात किया है। 'उप' के उपस्थान उनकी 'पर्यायवाची प्रकृति का पूर्ण बोध करने हैं। फणीश्वरनाथ रेणु हुए 'पिता मांभवा' तथा उपपदका बहु-कृत—'माय' महर्षे और मनुष्य' भी पर्यायवाची उपस्थानों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं।

(घ) लक्ष्मणभूलक उपस्थान—समस्याभूलक उपस्थान दो प्रकार के हो सकते हैं—प्रथम के जिसमें केवल एक समस्या हो, और द्वितीय के जिसमें किसी एक प्रधान समस्या के बाद विभिन्न समस्याएँ संलग्न रहती हैं।

(१) प्रयोगवादी उपस्थान—द्वितीय साहित्य में प्रयोगवादी तरीका कोई बार उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। पर इस बाद की कक्षा उसकी अधिक है कि प्रतिपक्ष लोग प्रयोग के लिए प्रयोग के स्वर का क्षेत्र करने का पावे प्राप्त है। और वस्तुतः 'सी घृत म कृष्ण उपस्थानकाग म भी अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'सी हृष्टि के अन्तर्गत—'गन्ध—'एक जीवनी' प्रकृत है। पर्यायवाची भारतीय हृत—'गुरु' का मतलब बोझ और 'गुनाह' के रचना मंत्र प्रभाव प्रकृत—'बाली गया' मायाकुलहृत बाबा बटेनरनाथ प्रभाकर माधवेष्ट 'परलु' और फणीश्वरनाथ रेणु हृत 'पिता मांभवा' आदि रचनाएँ भी प्रयोगवादी दृष्टिकोण से अपना स्थान रखती हैं। इनमें एक प्रकार का नवीन शिल्प विचार प्रस्तुत करने का प्रयास परिभाषित होता है।

(२) सुरुचित उपस्थान—सुरुचित उपस्थानों की परंपरा का प्रचलन भारतीय मुकाम से पता जाता है। प्रारंभ में संस्कृत और बर्षमा उपस्थानों के अनुवाद अधिक हुए। अनुवाद की दृष्टि से साधुनिक उपस्थानों में 'स्काट' आस्टिन और 'टिकेम्स' हार्डी सारेण बर्षानिवास्तुक्त तथा वालेंट आदि के उपस्थानों का नाम उल्लेखनीय है। इन लेखकों ने नवार्थनिक विचारों की ओर विशेष ध्यान दिया था। इन उपस्थानों में जीवन के यथार्थ चित्रण की ओर विशेष प्रकृति पाई जाती है। इस प्रसंग में यह कहना अनुभविक नहीं होगा कि प्रभाव की औपस्थानिक रचना पर तुर्किक, टानस्ट्राय कोर्से तथा मैन्कोव आदि की छाया विद्यमान है। उनकी रचनाओं में साम्यवाद की भूमक-निम्नवर्ग एवं मध्यम वर्ग के समाज के प्रति महानुक्ति का चित्रण बहुत-बहुत इसी प्रकार का परिणाम बना या गत है। इन उपस्थानों में प्रभावित यथार्थ की रचनाओं में गोपक वर्ग के प्रति आस्था की भावना पाई जाती है। इन उपस्थानों का अनुवाद हिन्दी में अधिक हुआ है। हिन्दी उपस्थान साहित्य पर केवल भाषा के उपस्थानों का ही व्यापक प्रभाव पड़ा है। दुर्भाग्य से अपना अन्तर्गत प्रयोग

बान्धक रोमारोपी आदि के उपन्यासों का हिन्दी में सफल अनुबाव हुआ है ।  
(ग) जीवन के प्रति दृष्टिकोण के विचार में (प्लाट टथापत्त्य)

- (घ) रोमानी उपन्यास
- (ङ) आदर्शवादी रोमानी उपन्यास
- (च) पश्चार्थवादी उपन्यास
- (छ) आदर्शवादी उपन्यास

(घ) रोमानी उपन्यास—इसकी कथा का निमग्न केवल दार्शनिक रंगी नियों के आकार पर होता है । इस धैर्यी व अनर्गल सामूहिक दिसम्भी साहसिक वैज्ञानिक प्रामद आदि उपन्यास आते हैं इनमें उच्च वर्ण के जीवन के लोका के स्वप्न प्रत्यक्ष विवेक होते हैं । इनका उद्देश्य केवल मनोरंजन की सृष्टि करना होता है । इन रचनाओं में जीवन का विशिष्ट एक दार्शनिक स्वप्न के रूप में ही होता है । ये रचनाएँ पश्चार्थवादी प्रकृति में प्रभावित होती हैं ।

(ङ) आदर्शवादी रोमानी उपन्यास—दिसागीराम गास्वामी के अतिहास उपन्यास आदर्शवादी रोमानी उपन्यास है । इस प्रकार की रचनाओं में मनोरंजन के लिये सामग्री का चूहो ही है साथ ही नीतिपरक भाषा एक उपदेशों का भी समावेश रहता है ।

(च) पश्चार्थवादी उपन्यास—इन रचनाओं में लेखक तटस्थ रूप में जीवन के स्वरूप को देखता है और वैज्ञानिक पद्धति से उसको विश्लेषण करता है ।

(छ) आदर्शवादी उपन्यास—इस प्रकार के उपन्यासों में लेखक की दृष्टि पश्चार्थ को आकर्षक बनाने की धार रहती है । इसके लिये वह आदर्शवादी भावनाओं का अपनी कृतियों में समावेश करना चाहता है । सामाजिक उपन्यासों में इन आदर्शवादिता का विशेष रूप से स्थल होता है ।

(१) दोष विस्तार तथा प्रभाव की तीव्रता के विचार में—

- (घ) बृहत् उपन्यास
- (ङ) सघु उपन्यास

बृहत् एक सघु उपन्यास का अन्तर मुख्यतः आकार द्वारा स्पष्ट किया जाता है । बृहत् उपन्यासों का दार्शनिक विस्तृत आकार अपनी सीमा के अन्तर्गत अनेकानेक घटनाओं की सृष्टि होती है ।

सघु उपन्यास का आकार उसके नाम के अनुरूप प्रायः बहुत ही सीमित होता है । इस प्रकार की रचनाओं में लेखक के दार्शनिक जीवन की अनेका हानी है । विद्याभवन 'रत्नमूर्ति' 'गोदान' 'गिरणी बीबा' उपन्यास बृहत् उप-

स्थान की कोठि में हैं और निर्मला स्वामयन भादि उपन्यास मनु उपन्यास की कोठि में परिमणित किये जा सकते हैं ।

(१) वाच्यारण्य जन-दृष्टि में उपन्यासों का वर्गीकरण—

समीक्षाशास्त्र<sup>१</sup> के लेखक के अनुसार उपन्यास में अनुभववाचक वास्तविकता का चित्रण इतना घापित होता है और उसके रूप प्रपचा र्थों के विषय में पाठकों की उदासीनता इतनी है कि उपन्यास के निम्नांकित वर्ग ही मान लये हैं—

१—सामाजिक २—मध्यवर्षीय ३—मनोवैज्ञानिक ४—स्थानीय चित्रण युक्त ५—प्रपचारक और ६—साधारणपूर्ण । इनके भी और बहुत से छोटे-छोटे भेद हो सकते हैं । सामाजिक उपन्यास में किसी एक विशेष रूप और स्थान का वहाँ के मानव आचार-विचार पर वहाँ की घापित तथा सामाजिक परिस्थितियाँ के पड़ हुए प्रभाव का चित्रण होता है । इन उपन्यासों में विषय अत्यन्त परिमित होने के कारण और सौन्दर्य निरपेक्ष होने के कारण इनका महत्त्व केवल प्रत्यक्षता के भिन्न तथा किसी विशिष्ट स्थान के लिए ही मकरा है । इस प्रकार के उपन्यासों के अन्तर्गत एक नवस्था-उपन्यास (श्रावणम भावना) होते हैं जिनमें कोई विशिष्ट सामाजिक प्रश्न होता है जैसे पति-मरती परिस्थान (शाहबेगी) प्रपचा प्रसूतप्रया एवं पालीय रंगमैत्र-भावना आदि । दूसरे प्रकार के उपन्यास हैं जिनमें किसी एक वर्ग का परा मेकर दूसरे की निन्दा की जाती है । उन्हें प्रचारवादी उपन्यास कहते हैं । कुछ मजबूरवारी उपन्यास होते हैं जिनमें मजबूरों की समस्या के साम सामानुभूतिमय विचार किया जाता है । स्वातन्त्र्य (लेखन) उपन्यासों में वही की परिस्थिति और प्रवृत्तियों का तथा मनुष्य द्वारा निर्मित घापित प्रणाली का ही नहीं बल्कि वहाँ की भरती उदात्त जगत प्रपचा कहीं दूर की घापित भूमि का चित्रण होता है । स्पेन और स्पेनी अमेरिका के उपन्यासों में 'कोस्त्रिस्ता' नाम के लेख की प्रचारवादी चित्रण जैसे त्रिजग आचार-विचार के अध्ययन की ही महत्त्व दिया गया है ।

इस प्रकार समीक्षा शास्त्र में सब स्थानों के बनार कर उपन्यासों के अनेक प्रकार एक मात्र प्रमुख दिये गये हैं जिनमें से प्रमुख ये हैं—

ऐतिहासिक उपन्यास विवरणवाचक उपन्यास नाटकीय उपन्यास शीघ्र स्थापित विवरण (सामाजिक वैश्टेय या कानिबस) प्रपचारक उपन्यास नीचि

उपग्यास (मध्यकालीन कथा तथा विचार के पक्षों में युक्त) मनुकथापुत्र उपग्यास (सिन्टिमेंटल फिक्शन) बामुनी उपग्यास (इटली की थियोडोसियो (मयात्मक कथाएँ नावेता) बर्ननी की 'घाबेन्टेइएरोमल' (छाहस पूर्ण उपग्यास) एोन का विकारेक्स (दाबागर्हों क बीजन में संबंधित) अमेरिका के ऐस्बर उपग्यास (बाल-उपग्यास) एक्स क 'फुइलता (निघ-उपग्यास) नाउवेस (मनोरंजक उपग्यास) तथा 'रामा (मध्यकाल की बाल्यक कथाएँ) बमिक उपग्यास (बिमिक चरित्र कई उपग्यासों में कमस चलते हैं जैसे बन्धकाम्ता बन्धति वा एर काथिकेय' का 'बहुती मया : नीली बुक (ब्यबसामी निम्न कोटि के लक्षका द्वारा सिद्ध हुए बासना का उत्तैरित करन वाले बरिष्ठ तथा मस्ते भयालक उपग्यास जिन्हु बेनी डेइपुल' 'घितिन-शाकर' 'गुडुड' 'हाइम नावेस' धमका 'मनीवीक कहत बे धौर बिमम भवानक रोमांचकारी कथाओं का समिबध होता था), वैज्ञानिक उपग्यास उपग्यासिका (नाबलट धायल छोटें उपग्यास)

### १२—ऐतिहासिक वर्गीकरण

एक प्रकार का ऐतिहासिक वर्गीकरण केवल धर्मयन के रूप क सहायक क रूप में होता है। जैसे हिन्दी के उपग्यासों में—

- (अ) धार्मिकीय उपग्यास ।
- (ब) प्रमथन के पुरुष के उपग्यास ।
- (स) ब्रैमथन के समय क उपग्यास ।
- (द) प्रमथनांतरकाल के उपग्यास ।
- (इ) धातुनिक काल के उपग्यास ।

इस वर्गीकरण के धर्मयन धाने बाल उपग्यासों में रचना की हृष्टि में किमी शास्त्रीय पद्धति बिधाय का धनुसरण नहीं किया जाता। केवल काल बिधेय की घटनाओं को हृष्टि में रख कर रचना की जाती है।

१३—धर्म-विषय के प्रति हृष्टिकरण के विचार में धर्मविषय की हृष्टि में उपग्यासों के निम्नलिखित रूप में विभाजन किये जा सकते हैं—

- (अ) घटना प्रधान ।
- (ब) चरित्र प्रधान ।
- (स) मानवीय ।
- (द) इतिवृत्तत्वक ।
- (इ) आत्मिक ।

(१) बौद्धिक एवं मनाईज्ञानिक ।

(स) समस्यात्मक एवं प्रजापत्यक ।

(क) सीसी प्रभाव ।

(घ) बटना प्रभाव इसका अन्तर्गत व उपन्यास पावने जो कौतूहल-शक्ति का मध्य में रखकर साधारणतः मनोरञ्जन की सृष्टि करते हुए तथा खरिज विस्तार का पीछा स्पष्ट रूप से न छोड़ते हुए आश्चर्यजनक बातों को पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं ।

(ङ) खरिज प्रभाव उपन्यासों में जीवन्मयापी नामा प्रवृत्तियों का निर्धारण किया जाता है और कथा-विकासक्रम में ऐसी ही बटनाप्रा को नियोजना की जाती है जो खरिज के विकास में योग दे सके ।

(च) नाटकीय ढंग में लिखे गये उपन्यासों में अनेक किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी नहीं कर सकता है । नाटकीय पात्रों की भाँति उपन्यास के पात्र भी केवल आत्मस्यक्त बधापकधन उपस्थित करते हैं ।

(ज) इतिवृत्तात्मक उपन्यासों में इतिहास के अन्तराल में प्रच्छन्न जीवन का व्यस्तकथन प्रदान किया जाता है । 'इतिहास में कबल समय का ऊपरी नकशा देखने को मिलता है और इतिवृत्तात्मक उपन्यास में उम समय को धारणा के दर्शन प्राप्त है ।

(झ) सामयिक-इतिहास में हम समय का बीजन है और सामाजिक उपन्यास में हम इतिवृत्तात्मक उपन्यास का समय के घन्टरे में बीजन है ।

(ञ) बौद्धिक एवं मनाईज्ञानिक उपन्यासों में अनेक पात्रों के कार्यों का बलुन न करके उनकी मानसिक क्रियाप्रा का बलुन करने सब जाता है ।

(ट) समस्यात्मक एवं प्रजापत्यक उपन्यासों में अनेक प्रायः प्रजापत्यक-उत्प्रेक्षा का मकर जमना है । उम का विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक ज्ञानिया का उन्मग प्रचार एवं समपन उमा प्रकार क उन्मया द्वारा मयक जाता है ।

(ड) 'सीसी प्रभाव-मुक्त उपन्यास धीपम्यामिचना क भीम धावरण को बसस सीसी व मह्य पर टिकाव रखन है । हमम धीपम्यामिचना बिदा सीगरी हुई मालूम पड़ना है और मन्संबंधी पाठित्य अपनी पूर्ण बना व नाब प्रकट जाता हुआ ।

धवन महाँ की उपन्यास-रचना का धारम मुक्त इस प्रकार हुआ कि बिना पहन को बीजो क देन धाव की बीजो को बाहर ही बाहर देनकर हमने धावने

यहाँ उसी के अनुसरण पर रचनाएँ धारण कर हों। इसीसमये उनसे प्रारंभ से ही 'घाउटर्बिन्ड' विह्वल शक्तिमोचक होत हैं। इसी सब हम उसमें रम गये हैं। हमारा ध्येय कृष्ण भी इस क्षेत्र में हा गया है ता सब हम हमारा ध्येयपत्र उसमें प्रसूय रचना पढ़ना। बाहर के उत्तम उदाहरणों का हमें पूरी तीर से पर साध ही ध्येयनी तैयारी की हुई मूर्ति का भी न छोड़ें।

उपन्यास वर्तमानकाल की सबसे बड़ी साहित्यिक रचना है। इन साहित्यिक विधा की मूलप्रवृत्ति तो 'कारंवर्य' के समाप्त पुस्तक में पहले ही से ही पर पश्यतात्प्र प्रभाव है इसके अन्तरी रूप को अत्यन्त प्रभावित किया पर अर्थ विषय भारतीय रहने से इसमें पहले के प्रकाश की-सी प्रतीकता सब थी है। (कायाकल्प-प्रोबन्ध तथा बिक्री का मन्त्र—प्रताप नाटयण श्रीवास्तव)।

इस प्रकार हमें देखा कि वर्तमान रूप में उपन्यास प्राच्यिक युग की रचना है। विश्वसाहित्य में उपन्यास को सिधु-हिमासय साहित्य के रूप में न समझते हैं। हिन्दी में औपन्यासिक परम्परा का जन्म संस्कृत सांख्यिकियों के अनुवाद तथा तुमसी की प्राच्यिक औपन्यासिकता से होता है। तदनुसार रामायण के रूप में कादम्बरी के अनुवाद तथा बण्डुमारचरित की सभी सांख्यिकियों के अनुकरण पर तथा बिदेसी एक प्राचीन सांख्यिकों के साहित्य के रूप में हिन्दी रोमांस का जन्म हुआ। वही रोमांस जब जातीय जीवन की विशेषताओं का भी ध्येय में समेटन चलत है तब साहसपूर्ण कथाना के रूप में उपन्यास का रूप बन कर घाट है। यहाँ विकसित होकर उपन्यास साहित्य के इतिहास में अग्यारी जामुसी और प्रारम्भिक सामाजिक एवं साहित्यिक उपन्यासों की परम्परा का भीपरीत होता है।

यह हिन्दी के उपन्यास साहित्य के इतिहास की संघात है कि धारम में ही हर्ष हिन्दी के उपन्यास के विपुल रूप के दर्शन होने हैं। प्रमथन के उपन्यासों में धोर उस परम्परा को 'कौशिक' प्रतापनागण श्रीवास्तव तथा अनेक (के धारम के उपन्यास) में पुष्ट होत हुए पात हैं।

अनेक के बाद के उपन्यास तथा मनार्थकालिक एक मनार्थकालिक रूप परम्परा तथा कथानी अनेकों तथा कथन और रमो उपन्यासों के अनुवादों से उपन्यास साहित्य में रीतिकाल की पुनरावृत्ति हो जाती है। उपन्यास का केन्द्र बन जाती है—नारी उपन्यास का प्रतिपाद विषय बन जाता है—श्रीमती पर घाट है।



स्वतन्त्रता आन्दोलन के पहले के आन्दोलन काल में राष्ट्रीय चेतना की महार ऐतिहासिक परंपरा को धारण करती है और नारी प्रेम तथा धैर्य और का स्वातंत्र्य आन्दोलन का मातृ से जाता है ।

आन्दोलन का संघर्ष एवं क्रान्तिकारी भावनाएं राष्ट्रीय चेतना को बिस्फोटक साहित्य की आभारयकता बतलाती हुई धारण का अनुकरण करती हुई विभिन्न देशों के प्रचार का माध्यम बनती हुई—बर्न संघर्ष के प्रतीक में हरिजन समस्या को लेते हुए संघर्ष के उपन्यासों की सृष्टि होती है । नारी का विद्रोह समाज से और पुरुष से निम्न बर्न का विद्रोह उच्च बर्न से और निर्मला का मोर्चाबानियों से एक संघर्ष में पूर्ण अध्यात्म की सृष्टि करते हैं ।

मुफ्त के बाद धान्ति का जेता में 'धाम-मुफ्त शिक्षा प्रचार धान्ति' मातृ स्वयंसेवा स्वयं १९४२ की क्रान्ति तथा महारकाशील पाठों एवं परिभा को लेकर एक उपन्यास नवी धारा प्रवाहित हुई । इसमें धान्ति स्वाभंग का उद्योग तथा स्वतन्त्रता संघर्ष में कीरलति प्राप्त करने काल धरम महीबा की भठानि के रूप में उपन्यास धपन नव रूप में आया ।

ऐसा प्रतीत हुआ जना जन-व्यवस्था बक कर बैठ गई है । प्रथम के बाद किसी मछ मछक के न हान कर बह प्रकट किया जा रहा वा कि उपन्यास के क्षेत्र में नये प्रयोगों का धारण ही गया—सांख्यिक उपन्यास धान्य कीधन जन-जोवन बरती है प्रथम धान्ति है । पौरुष उपन्यास तत्त्व स्वतन्त्रता की मोद में पल रहा है और इसी धन के विकास में रूप में हमें उपन्यास के उन्नततन ब्रह्म की धारा है ।

हमने यह ही धना कि अब साहित्य का साहित्य में संभावना के फलान की सीमा एवं धूम के धोर के गति स्वतंत्र पर कल्पना के विस्तार का धारण होता है नव धीपन्यासिकता का प्रथम हुआ है । वैज्ञानिक नर्णप्रणाली अब तन्वी की धूम धूमि को छोड़ कर धनुमान में बालनिकता का टटान कर हुआ धारण करती है नव वैज्ञानिक की धीपन्यासिकता का धारण जाता है । इसी प्रकार 'नति-नति' की भावना एक ब्रह्म नव्यन्वी विचार सांख्यिक धीपन्यासिकता की कोटि में रूप का मकडे है । पुराण आनक धीप नवधिम एवं धुराण के इष्टान्त एक धामिक गाथाएं अपने में धीपन्यासिकता के पूर्ण प्रवाह को धियाव बनती हैं । धीपन्यासिकता का सब में महार धीप बना पुन पितता है हमें धुरधुनों में—जहाँ कीरलम धीप महार जी का नैकर धाटीमधी धीप धनधन की धान्य में नवा धरगिन सांख्यिक धनधन के इधाने के नदर में स्वाभाविकता की नवध धाकृति होती है ।

हमारा जीवन धागे बरता है। कुछ तो बाहर से आकर पड़ने वाले प्रभावों को आत्मसात् करने में और कुछ अपने ही में उठे हुए विचारों का बाहर से कार्य का रूप देने में। साहित्य के प्रकार भी इसी भाँति कुछ तो पूर्वा पर सम्बन्ध भवना यथानुगति के अनुसार धागे बढ़ते हैं अपना परिवर्तित होते रहते हैं और कृष्ण कृतियों में अपना लेखक से बाहर से आकर पड़ने वाले प्रभावों से पोषित एवं पल्लवित होते हैं। सांसारिक प्रेरणा एवं विस्फेपण तो स्वाभाविक रूप से विकास में सहायक होते हैं पर बाहर से आकर पड़ने वाले प्रभाव सहायक भी हो सकते हैं और बाधक भी। जब बाहरी प्रभाव कर्मण्य का ऊँचा धारा हमारे सामने रखते हैं तो वह मन उठने हुए साहित्य के प्रकार को बल देते हैं—ऊँचा उठाते हैं। यथा—प्रमथन के पहलु बयला धर्मोत्री शैल्य तथा कमी उपन्यास। जब बाहरी प्रभाव धर्मविकृत भाव-भूमि पर उठ कर अपने अन्त-स्वीकृत अपना प्रायः धर्मविकृत रूप में धर्मविकृत अपना धर्म स्वामीय कलाकार को प्रभावित करने का उपक्रम करते हैं तब वह मुसलमान का भी स्थिति में पता है इस बड़ा प्रभाव का प्रमाण करने वाला व्यक्ति। किन्तु वह न ता अपनी बरती का पुत रह पाता है और न पूरे रूप में बाहर किसी का बल कर रह सकता है। ऐसा ही कुछ मार्क्सवाद यामवाद के सिद्धान्तों का हबम न करके सिद्ध करने वाले लोगों के उप-वर्गिताई हाता है यथा आती धर्मक बगपाम आधिक रूप से अतिरिक्त और धर्मय भा। बाह्य प्रभाव का अपेक्षागीय रूप हाता है—उसका प्रत्येक धर्म पीपन धर्मि वाला। जहाँ बाहर का महान् कृतिय प्रभावित व्यक्ति से प्रभाव का-मा कार्य करवा सकता हो बड़ा बाह्य प्रभाव अपने सर्वाधिक बाधित रूप में हाता। इसके उदाहरण सिद्ध हैं हमें प्रेमचन्द अपनी-बरेलु बर्मा कृष्णकर्मण्य बर्मा ऊँचा विधा धर्म-कीर्तिक' में।

हिन्दी उपन्यास के सर्गीकरण के सामर्थ्य विचरन तथा अद्भुत हिन्दी उपन्यास के विकास के बर्लुब विचार में यह बात स्पष्ट कर दी है कि हिन्दी उपन्यास सब धर्मकलाओं के बीच सब नवाकविन दुगाइया के बीच धर्म सब प्रकार से उभरने जाने वाले प्रभावों के बीच से निदान कर जीवन के घट्टे काम को प्रस्तुत कर सकता है। और सामयिक जीवन के बर्लु की संज्ञा पा सकता है। धार्मिक तथा सामा उपन्यास जीवन का कड़ा हुमा रूप प्रस्तुत करता है। धर्मविकृत पापण्य प्रणिमा न आचार्यक धर्मविके की धर्मि। रोषानी उपन्यास का जीवन हाता है न्याय विचर की धर्मि मुख्य पर नून। धर्मविकृत

उपन्यास का जीवन होता है जिसके चर्हमात्र से लिपा-मुता सा 'मृत्योरविलकी  
 घसफल पेन्टिंग' सा जिसमें जो जीवन में नहीं है उसके सहारे जीवन बीसा नहीं  
 है बीसा बिलामा जाता है और हम मरा जाता है जीवन के प्रतिगिधि स्वरूप  
 प्रस्तुत करने का । उपन्यास का वास्तविकस्वरूप ता 'मोक्षान' में धाये हुए  
 देहती जीवन के रूप—'मैसा घोषल' और बलचनमा' ऐसी कृतियों के  
 परिच-बिबलु मे और 'मृगनयनी' तथा 'झंसी की रानी' क कृदुदुदी पैसा करने  
 नाम मानस के अन्तर के भिन्नभिन्न को बाहर मामे नामे ममापलों और  
 बर्णनों में 'दुःख और समुद्र' और पत्नी परिक्रमा तथा बिहा और  
 'रंगभूमि' तथा परब' के साधारण जीवन क बातालापो एवं उद्देश्यों  
 के अनुशीलन में समारम्भता के रूप में प्राप्त होता है ।

उपसंहार

# उपन्यास का भविष्य तथा हिन्दी उपन्यास की सम्भावनाएँ

यह स्वामाबिक ही है कि हिन्दी उपन्यास का शास्त्रीय विवेचन मन की बिराम देने वाले प्राचीन उपन्यासों की भाँति ऋषिय की ओर दृष्टि लगाये हुए संकाष्ठ हो। इस विवेचन के उपसंहार रूप में यह अनुमान लगाने की इच्छा स्वामाबिक होती है कि उपन्यास का भविष्य क्या होगा? क्या यह अधिक मपार्थवासी हो जायगा? क्या सिनेमा के द्वारा इसका अन्त हो जायगा यादि किन्तु ही प्रश्न सामने आने हैं। ऋषिय के सम्बन्ध में अनुमान चाहें आसानी से हो सकता है कि यद्यपि निराशाजनक दशा ही दशाओं में प्रभावशाली लगने का गुण विद्यमान रहता है। ऋषिय के संबन्ध में अनुमान प्रयत्न के हीसल अन्वय भी होते हैं। यद्यपि इन के ऊँचे आदर्श के रूप में भी उनका अपना महत्त्व होता है। कभी-कभी किसी साहित्यिक विद्या के स्वरूप की कल्पना का उद्भव उनको वर्तमान उल्लिखितों एवं यथावत की 'बैलमयी' से होता है। इस समय प्रचलित स्वरूप को नकारने के प्रयत्न की प्रवृत्ति यत्नसंधी अनुयायियों की परिणति होती है।

उपन्यास के भविष्य के संबन्ध में विचार करने के प्रथम हम इस बात का निश्चय रूप से जान लेना है कि उपन्यास कभी मरेगा नहीं। साहित्य के माध्यमों में नै कोमला माध्यम सब से अधिक मजबूत तथा प्रभावशाली है। इस संघर्ष में विभिन्न विद्याओं के अपने-अपने सल रहे हैं। इन्हीं संघर्षों में उपन्यास की महत्ता सर्वमाध्यम से प्रतिपादित की जाने लगी है। भारतवर्ष की अनुसृष्टि की संसार के प्रत्येक देशों में अनुसृष्टि जीवन की उन्नत स्थिति के रूप में स्वीकार किया है। संघर्षों के प्रसिद्ध आलाचक तथा 'टाइम्स लिटरेरी सन्वीमेंट' के संपादक 'एलन ग्राहम जॉन्स' के अनुसार इसी आलाचक की अनुसृष्टि की उपलब्धि करना उपन्यास के प्रयत्न दायित्वों में से एक है। इन्हीं के संधर्षों में यह सल समझिये कि प्रायः कल्पनिक परिस्थितियों में प्रभावशाली होने के लिये उपन्यास रहने हैं। यद्यपि उन्हें रहने हैं विम प्रकाश अन्व

लोग प्रार्थना करते हैं, स्वयं अपने अपने अन्वेषण के लिये। और क्योंकि अन्तिम अन्वेषण कभी संभव नहीं हो पाता इसीलिये उपन्यास की कमी मृत्यु नहीं होती।

आधुनिकता के साथ-साथ उससे सम्बन्धित सत्य के अन्वेषण की बात आती है। आत्मा अविद्यमान है या सत्य अस्तित्व में। जोस महाकवि के अनुसार या सत्य का वास्तविक अन्वेषण उपन्यास के प्रतिरिक्त साहित्य के अन्य किसी भी माध्यम द्वारा संभव नहीं। उनका कथन है— 'सत्य की बात यह है कि सत्य तक पहुँचने के लिए उपन्यासकार की दृष्टि ही एकमात्र महाराज है'। जिस प्रकार आत्मा की खोज कभी समाप्त नहीं होती उसी प्रकार सत्य का अन्वेषण भी कभी समाप्त नहीं होता और इसीलिये उपन्यासकार कभी इस बात का अनुभव नहीं करता कि प्रत्येक बात कह दी गई है अथवा सत्य का कोई भी पहलु अन्तिम निरूपण के साथ अनावृत्त कर दिया गया है।

सांस्कृतिक दृष्टि से यह का विश्वास गहराई को अनुभूति का विकास है। जैसे जैसे संस्कृति आगे बढ़ती है। पदार्थ का पारस्परिक सन्धि में अंतर्भाव की गुणवत्ता परिवर्तन होता जाता है और मानव का अंतर्भाव में एक नव आयाम का भाव होता है। ऐसी वृत्ति में हमारा 'स्व' शौर्यात्मक अथवा 'एपि क्रो' नहीं बल्कि शौर्यात्मक और अतृप्त हो जाता है। उपन्यास के रूप-विधान में जो विकास हुआ है उसमें पीछे अंतर्भाव 'स्व' के प्रति गहराई के आयाम के रूप में दृश्य बढ़ती हुई आत्मिकता को अविद्यमान करने का प्रयास ही है। एक नव दृष्टि आया जो अंतर्भाव अथवा की छाया उपस्थित करता है बल्कि उसे अर्थ भी देता है।

उपन्यास की सबसे महत्वपूर्ण बात यही है कि मानव अंतर्भाव, मार्भकता अथवा अंतर्भाव के विभिन्न अर्थों का अंतर्भाव एक विश्व साहित्य का कोई माध्यम प्रस्तुत नहीं करता। अंतर्भाव यही है कि उपन्यास अथवा और तर्क-संघर्ष के विचारों में गूँज-गूँज हो जायगा। लेकिन जब हम इस पर विचार करते हैं कि अनुभूति या न कला हुआ कोई भी अंतर्भाव केवल अन्वेषण और अंतर्भाव ही होगा तो हमारे सामने शौर्यात्मिक अन्वेषण की अन्तर्भाव प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। अंतर्भाव यह हमारा अंतर्भाव कि उपन्यास एक अन्वेषण की दृष्टि में अन्वेषण ही होता है जो कि अन्वेषण और अनुभव अथवा और अंतर्भाव अन्तर्भाव के अन्वेषण का प्रयास हमें अन्वेषण ही के लिए विवश है। अंतर्भाव ही अंतर्भाव अन्वेषण का अन्वेषण अन्वेषण अन्वेषण है। 'किसी' का

धनुमार—उपन्यास लिखने की क्रिया यथार्थ की दृष्टि से कृत्रिम प्रतीति को मानना ही सही है। जतना प्रपञ्च इच्छा के कृत का प्रतिफल प्रपञ्च विद्युत् सम-मापिके यथार्थ में बोधन के मूल में ही लिखना ही है। वैज्ञानिक बुद्धि द्वारा भी इस करने का प्रयास मात्र उमे कठिन होगा है। उपन्यासकार का प्रयास जेतना की जित गहराई का सेवन करना है उतने मर्यादा है कि जित प्रकार जिनम मार्मिक्य प्रयत्न है उतनी प्रकार उपन्यास का धर्म भी प्रयत्न है।

उपन्यास में मानवत्व का जन्म जाता है। यह मायागन्ध के बरीबूह में निष्कला हुआ जलना-ममोदा द्वारा प्रतिपादित और उसके धारणकर्तृ कर्तृ बाने चिरमयी कुतूहल का दुःख पाकर व्यक्तिगत तन्त्रि की गोपिया का मन मानव कुरा कर कृत्रिम का प्राप्त होता है। यह मानवत्व का प्रकृत पावन ही पर परे-परे शक्त की कुतूहली को स्वीकार करता है और अपनी प्रीतिभावना में ही उसकी रूपा और रूप में मोहा सेन जमना है। मानवत्व के ज्ञान का प्रकृत यह इसका मिश्रण के प्रयत्न में कमर नहा रखता और यह भी चिर प्रमत्तगिरि कि बिप के बोध को भी धरन स्वर्ग में प्रमूठ बना लेता है। धन में स्वर्ग ज्ञान का प्रकृत यह इसके हाथों अपनी ही मया में पराजित होता है और यह मानवत्व स्वयं ज्ञान के यह के पिता विमानु को राजमिहामन पर पुन प्रतिष्ठित करता है। तब मानवत्व अपनी उदारता का परिधि में सबकी समेट लेता है।

उपन्यास लेखक भगवान् वेदव्यास की धरना शुरू बना कर पुत्रता है। उसकी पत्नियों का धर्म नहीं (पुत्रक के ममाण्ट होल पर भी)। उसकी मेखता बुद्धिदेव (गणेश) के बन्धान से धर्मिकृत होती है या विद्याम मना जानती ही नहीं और उसकी प्रतिमा मरुत्नी की शोर में इच्छानी कृत् धरन धरन हास्य को धरुत्तु बनाए रखती है।

उपन्यास धरन है। उपन्यास का कब नहीं? जब से मनुष्य ने एक दूसरे के पाम बैठना मोखा या तब इस सामाजिक मयाप के उपन्यास की कृति का जन्म हुआ था। जब मानव ने ज्ञान की महामिषा पहूनि के बीमाध के धरुत्तु पौनर्व के पार्थ में डालने मया तब उपन्यास की जेतना में धर्म शोधी थी। जब मानव मयात्र न अपनी किनोराकम्पा को पार किया या तब चिर शोचना उभुजता के माप उपन्यास की मयाई हुई थी। फिर जब मनुष्य के प्रकृतान ने जय कर प्रपञ्च का भी तब उपन्यास का पदचरण जन-त्रि के

साप हुआ । उत्सुकता क संसृष्टक्य जन शक्ति का सुहाग अपने में धराय है—  
 धरय है । अतः उपन्यास भी धरय है अपने में धरय है ।

ई० एम० कार्टर ने अपने ऐसपेक्ट्स ऑफ बि गार्बेस' में धरय तक के  
 सब उपन्यासकारों को एक मसन में बैठ कर एक साप एक समय ही उपन्यास  
 की रचना क्रिया में रस भागा है । इसी प्रकार यदि हम भी धरामी बोली  
 बपों के उपन्यासकारों को भी एक साब बड़े हान में जमा कर दें तो स्वाभा  
 बिक है कि उसके बिषय में बड़ा भारी परिवर्तन हूँ विल प्रतिदिन के जीवन  
 के सारी क्य में एवं बिभिन्न रोधा में अकस्य दृष्टिगाकर होमा । परन्तु यदि  
 हम बिभिन्न कालों में कथा का मधा हुआ स्वाभाविक क्य देखें तो यह सर्वत्र  
 एक मा मयोगा' । कथा में श्रितना की भावना होती है । इस दृष्टि में  
 कथा बिरामणीस इतिहास की प्रकृति में धरया भिन्न है । उपन्यास के बर्ण  
 बिषय में भदे ही समय के धरय पर परिवर्तन होता रहे पर उपन्यास  
 कार का बुक्ति ता सर्वत्र धरामानुभूति एवं तथ्याम्बेपण में एक ही  
 रहती है ।

बुद्ध साभा के अनुसार यह कठिन कार्य है । उनके अनुसार हम समय का  
 कुछ भी नियम बनाये जाये अथवा साधारणक्य में कथा जायगा यह निश्च हूए  
 उपन्यासों क संबध में ही सत्य हागा । भविष्य के उपन्यास के सम्बन्ध म  
 निश्चन के सिधे ता किमी भविष्यबद्ध की ही धरया है । ऊपर-ऊपर बेचन म  
 से यह कथन ठीक प्रतीत होता है । किन्तु भविष्य क धीमन्यासिक स्वरूप के  
 निर्धारण के सिधे धरित के ज्ञान का धराना धीर धरतमान की प्रमुख धरिब  
 निश्च धरया धर्यधिकसित प्रवर्तियों का धरययन धरयस्यक है ।

ज्ञान कश्चर में एक बिचार-बोधिस छोटा निबन्ध सिधे है । धरया  
 धीरक है धरयजारी एण्ड दि पत्रुकर धरक दि इ गसिय गार्बेस' इसने धनुसार  
 जीवन में एक निश्चिन स्वरूप हान के धरयण उपन्यास में भी एक निश्चिन  
 स्वरूप की धरया करती हा होती है । उपनु क निबन्ध मेगक क धनुसार  
 भविष्य म उपन्यासकार का इस सिधे धरयण में धरुधरारा भिल जायगा ।  
 जीवन में मानव को पूर्णत्व की प्राप्ति नगी हाती धन बरया में पूर्णत्व की  
 प्राप्ति को कथ्य धरना धरने ही को धरया देने क समय है । इसके बिबद्ध बह  
 ण सध्य में धरयण जमाएगा कि धरयो कृति को गतिधीम स्वरूप देने की

प्रक्रिया में वह जीवन में निहित प्रेरक शक्ति का ही अनुसरण कर रहा है और अपने में ठोस रूप से पूर्ण जिन कला-वस्तुओं को वह बनाता है उनमें यही वास्तविकता है जो वह अपने भाव-वास के कठिन पर बिपुल तप्य वाले संसार में पाता है ।<sup>१</sup>

अपनी उपन्यास के प्रविष्ट की विवेचना करते हुए कैम्ब्रिज साहस ने कहा है कि उपन्यास का प्रविष्ट एकलक्ष विषय नहीं है । वह ज्ञान के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विषय के साथ जुड़ा हुआ है । प्रत्येक प्रविष्ट में भी प्रच्छेद उपन्यासकार की कला की कसौटी यह रहेगी कि वह अपने प्रपन्था कलाकारों की भाँति अपने समय के गंभीरतम प्रश्नों के प्रति कितनी ईमानदारी और सघर्ष में उत्तर दे सके है ।<sup>२</sup>

यह भी जीवन के प्रत्येक क्षण का ही जहाँ उपन्यासकार का ध्यान रहना है । महान् उपन्यासकार वह है जो किसी नये अर्थ को उपन्यास के प्रविष्ट में लाये और बिशिष्टरूप में उसकी प्राकृतता प्रपन्न समय में सम्पूक्त हो । साधारणतया उपन्यासकार का प्रपन्न समय के भी नहीं होने । वे न तो अपने समय में अग्रगण्य होते हैं और न उसके स्पर्श में रहते हैं । वे जीवन से जीवन नहीं पाते बल्कि साहित्यिक परंपरा से उत्पन्न होते हैं ।

पृ० श्री वेस्म ने सम-सामयिक उपन्यास पर निम्नलिखित सिद्धांत दिये कहा है, 'जहाँ तक मैं समझता हूँ मात्र उपन्यास ही ऐसा साहित्यिक माध्यम है जिससे द्वारा हम अपने सामाजिक जीवन में उठने वाले अधिकांश समस्याओं पर विचार कर सकते हैं ।' यही नहीं वह उपन्यास की परिधि में राजनीति और धर्म से संबंध रखने वाले प्रश्नों को भी समझ सकता है । वह उसे मन बहलाने का माधन मात्र नहीं समझता बल्कि और स्पष्टरूप से उसमें उपन्यासों को कला कृति के रूप में भी स्वीकार कर दिया है । सबसे विचित्र बात तो यह है कि वह अपने उपन्यासों को प्रचारात्मक उपन्यास कहने पर टोप प्रकट करता है, क्योंकि उसके अनुसार प्रचारात्मक उपन्यास किसी मर्कटिष्ठ पाठों (बस) पत्र-संस्था धरबा सिद्धांत के प्रतिपादन करने वाले उनमें और लोगों का विचारों अमान बात होती है पर अब इस शब्द का प्रयोग अधिक व्यापक रूप

१. 'ज्योत संकल्पत अहंकारों' पृष्ठ ३० पृष्ठ ३१ का कि इ पत्रिका मासिक—  
पृष्ठ ८-९

२. श्री० एम० जिनैव 'विशेष इ वि निर्दिष्ट प्रश्नों' पृ० १११



म होने लगा कि बात कर घबरा मिल कर इस बात को मजबूत करने के उमाने का प्रयत्न करना कि मापके बिचार ठीक हैं न्यायोचित हैं अथवा बुरी बात बुरी गई घट छीड़ देने योग्य । एच०बी० वेम्स, ने उपस्थाओं में किसी न किसी मिश्रांत अथवा इन्फिन्स की घल्लबाग प्रवाहित होती रहती है; और इसी को प्रोपेयंडा कहते हैं ।<sup>१</sup>

### विश्व उपस्थास का भावी स्वरूप

जब हम १९२१ के बाद, मिल जाने वाले उपस्थास की चर्चा धारण करने हैं तो हमें हमने वाले उपस्थास का भावी रूप क्या होगा इसके विषय में भी अनुमान और घटक से काम लेना पड़ता है । काम के अनुसार मन्त्रिय का उपस्थास मानव प्रकृति की उमर पर प्राथित रहेगा । वह मोक्षता है—स्वैयं प्राप्त दि पेशुलम<sup>२</sup> के मिश्रांतनुसार भावी उपस्थास कभी तो यथार्थवाद की ओर मुड़ेगा और कभी प्रतिक्रिया के रूप में धार्मिकवाद का पन्ना पकड़ेगा । उनके मतानुसार उपस्थास के विश्व विद्यालय का संस्कार होता रहेगा और इसके प्रमाण के लिये वह बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में धीपस्थासिक प्रयोगों को प्रस्तुत करता है ।<sup>३</sup>

काम का ठ पुराना हो चुका है । उसने काम के उपस्थास का प्रथम मुद्र के भी पहले की मनोवृत्ति के माध्यम में देखा था । पर इसका यह भी धर्मिप्राय नहीं कि वेगा अनुमान या घटक भावी उपस्थास के स्वरूप में इन पृष्ठों में लगाया जायगा वह बिस्मूट ठीक ही होगा । वास्तव में जिस किसी के अनुमान एवं घटक की भांति वह धर्म्य भी हो सकता है, ठीक भी हो सकता है और कुछ भी हो सकता है गम्य भी हो सकता है । पर इतना तो निश्चित है कि १९२० से पहले के समय में ही बड़ी ही धार्मिकप्रवृत्तियों वाले हुए और हो सकती हैं । नव धर्म्य तथा धर्मिता और कम द्वारा प्रथम प्रवृत्त बनाने और निश्चित के घटों में वाले का उत्क्रम इन प्रकार की बातें उदाहरण के रूप में भी जा सकती हैं । तीसरे विरूप्युद्ध की भी सम्भावना की जा सकती है । जब यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि मुद्र में क्या होता है ? मुद्र ग पत्नी बात का यह ज्ञानी है कि वह उत्थापान परिस्थिति में उपस-मुपस उत्पन्न करके घटने समय के माध्यम को अपने देस के माध्यम से ही अवरुधित भी होने का स्थिति में जा देना है । इनके प्रतिष्ठा एक बात धारण होती है और वह यह कि प्रबन्धी वेगक

१ मोवेस्त ऐन्ड वैसर धीनल 'मान ।

२ विन्डर लल धाम—दि डब्लेपलेट धाक दि इपतिता कावेल ५०-२९३

स्वेदण के मशीन सम्पर्क से पृथक् होकर घर्षणी हो माया में घस्यत्र बैठ कर  
 निकले हुये मार्गी घर्षणी ही कृति की म्यानीय छाया में धनुवाह-ना करने लगी  
 है ।<sup>१</sup> हेनरी जेम्स ने कुशल एवं निश्चिन्त एवं घस्यत्र नियम पर भी इसका  
 प्रभाव दिखसा<sup>२</sup> पढ़ता है ।

परं यह सब होते हुए भी यह निश्चितरूप में कहा जा सकता है कि भविष्य  
 प्रत्याप्त उद्भवत है । प्रत्येक उपन्यासकार को उपन्यास के भविष्य की चिन्ता  
 है । बर्बोसा उपन्यासकारों ने तो इसके विषय में लिखा भी है । हेनरी प्रीम  
 वास्टर ऐमेन म्यायेम केरी भी जो स्तो किरिलिप टबायम्बी की एम प्रिन्सट  
 एलिजाबेथ बोवेन घाहमग्रोन और एलेक्स बरल प्रेमचन्द जीनेग्र घादि सभी ने  
 उपन्यासकार की समस्याओं के विषय में लिखा है । उनकी रचनाओं में बहुत कुछ  
 यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भविष्य में क्या होने जा रहा है ? इस सम्बन्ध  
 में प्रोत्साहन देने वाली बात यह है कि उपर्युक्त सभी लेखक स्वयं उपन्यास के  
 घट्ट कर्म के प्रति विश्वस्तम्भ में मानधान हैं । उन्हें इस विषय के महान् जना  
 कारों का पता है और उन्हें यह भी ज्ञात है कि प्राचीन तथा पश्चात्तम महान्  
 पौन्यामिकों ने उपन्यास का लिये क्या किया है भविष्य में उनके लिये वे क्या  
 कर सकते हैं और प्राचीन उपन्यासकारों के उचित मूल्यांकन के लिये उन्होंने  
 क्या किया है । यदि यह-उन प्रकाशित पुस्तकों की सामोचनाओं की संख्या को  
 देखा जाय तो पता चलेगा कि डॉ. मशीन में भी हजार से ऊपर उपन्यासों की  
 प्रचीर आलोचनाएँ प्रकाशित हुई हैं और जिस साहित्यिक मशीरता के साथ  
 उपन्यास कला तथा तत्संबंधी भविष्य की समस्याओं का निरूपण किया  
 गया है वह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है । इसके साथ ही साथ यह भी  
 सत्य है कि निम्नकोटि की पत्रिकाओं में बड़े हस्त और बाजार ङंग में  
 की गई एक हजार उपन्यासों की आलोचनाएँ भी इसी समय की अवधि में निकल  
 चुकी हैं । इन विद्वत् उपन्यासों को हम प्रकाशकों के पैट भरने की साधन  
 नामों का रूप ले सकते हैं । सबभग चासीस बर्ष पहले ही एम इतिवट ने  
 टूठीसन पेन्ड वि ईन्वीकुपम 'सेस्ट' शीर्षक निबन्ध में इस बात की स्थापना की  
 की कि 'जो कुछ भी एक नवीन कथाकृति के निर्माणकाल की अवधि में चलि  
 जाता है बिन्दुस बही बाग एक साथ उन सभी नवीन कला-कृतियों की सृष्टि के  
 समय पठित होती है जो अपने पहले रची जा चुकी हैं । जो भी विद्विष्ट कला

इतिहास अस्तित्व में होती है वे सब मिल कर अपने बीच में एक घाघरी की प्रतिष्ठा करती हैं, जिसमें तरसम्बन्धी क्षत्र में नवीन कलाकृतियों के समावेश होने के साथ ही साथ सुचारु होता रहता है। उस समय से अब तक सारे साहित्य में और सबसे अधिक उपन्यास साहित्य में इसी प्रक्रिया के चटित होने का परिचय प्राप्त होता रहा है। इसी के साथ ही मात्र मात्र के उपन्यासकार प्राचीन सिद्ध धीपग्यागिक कलाकारों में भी उस नवीनता को भी दृढ़ निकाशने में उत्पन्न रहते हैं जिसका आनास उस समय के अन्य उपन्यासकारों को तथा अब से अब तक के आलोचकों को भी नहीं बसा था। इसके साथ ही भविष्य की महत्ता की धारण नाम इन प्राधान्य उपन्यासकारों के द्वारा प्रमुख इन धीपग्यागिक तरसों अथवा उपन्यासकारों को इन नवीनताओं का भी समयानुसार पूरा उपभोग करते हैं जिसका आधिक उपभोग ही मौलिक धीपग्यागिक रचना के समय किया गया था। उनमें से कुछ उपन्यासकारों के महान् प्राधान्य जोला श्री धार उन्मुख होते हैं। बाल्टोम्बकी गोगोस और टास्टकाम अब भी अनुकरणीय उदाहरणों के बहाने बंधार हैं और जेम्स ज्वायस तो ऐसी क्षान के समान हैं जिसमें अभी कार्य ही नहीं धारम हुआ है। और उसमें स्थित संभावनाओं की शोच की ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया है अतीत के महान् धीपग्यागिकों में स्वयं अपने उपन्यास के स्वयं का आधिकार किया है।

वे सब लेखक इस बात में भी सहमत हैं कि आधुनिक भारतीय कथा साहित्य पर गिनेमा का बड़ा प्रभाव पड़ा है। कहीं तो गिनेमा न उपन्यासकार को ऊँचे पर लड़े होकर सामने देख पड़ने वाले हृदय विस्तार के रूप कथामक को दिया है अथवा उसकी अपनी कृति को लम्ह टुकड़ों में तोड़ कर रखने को बाध्य किया है। यथाक विषय की बर्णनात्मक धीपी न भी मात्र के उपन्यासकार का उस रचनात्मक धित्य को ग्रहण करने के लिये विवश किया है। जिसमें नायकानो में सतुमित लड्डु सखों का एक में बरके परिणामतः पूर्ण प्रभाव को उत्पन्न करने हैं। और भी अनेक ऐसे उपन्यास धित्य के बंग हैं जिसका विकास गिनेमा के महाने हुआ है और जिनके नियम अभी तक कोई नाम भी नहीं जुना या मना है। यह प्रभाव दिन प्रतिदिन बस जान जाने गिनेमा द्वारा गती पत्ता है। प्रभाव की दृष्टि न तो वे समाचारपत्रों और हस्त-छाटे उपन्यासों की भीति होते हैं। उपन्यास की बसा पर प्रभाव बाला बाले न संभार काटि के कृती, जर्मन केम्ब तथा इंग्लिशन बिज है जिसका प्रदान समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय

बिना प्रदर्शनियों अथवा फ्लैम-समिथियों से होता रहता है। डॉक्टर कैसीमरी 'पोटे बिना' हि जमरस जायन' 'स्टार्म घोवर एशिया ग्रब' 'बार्मिग चौबोक सुपमियां सुसेखाठ कु पायी सिटेबन केन धोर बर्बेइ डूम धाहि विरव-विस्तुत बिना उसी प्रकार साहित्य की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हैं बिना प्रकार बिदेधों से सिधे हुए महान् उपन्यास ।

मदिय के सम्बन्ध में भासात्मिक होन का एक कारण धोर बी है । यह इमें बहुत से नये लेखकों की बिनामता में मिलता है । काम्पात्मक नाटक में परम्परा लघु रूप से धारण होकर महान् कृतिया की रचना संभव हो सकी । इसी सफलता का प्रतिबिम्ब इन मध्यात्मक नाटकों में भी होगा जो ऐसे लेखकों के द्वारा रचित हैं जिनमें काम्पात्म्य का सेध भी नहीं है पर उन में जादुति होवी क्याकि (उन में सिधत) नाटकीय मूल त बा का उकसा बिया गया है । निश्चल बरक में बहुत से ऐसे उपन्यासकार हुए हैं जिनमें धारण्यर्यजनक इय परिपक्वता एव भावी महानता के सहाय मिषत है । कोई भी महीना ऐसा नहीं जाता जिसमें महीरणा से ध्यान देने योग्य कोई न काई उपन्यास नहीं प्रकाशित हुवा है । उदाहरण के रूप में ऐन्जोनी बिस्सन का 'घान ए डाक नाइट' पैपमैन मार्टि गर का हि स्ट्रेम्बर धाम हि स्लेमट' बिबियन सेन्सम की धरम्परा मानुष्तापुर्ण रति हि बार्डी पी० एच० न्यूबी धमृतसास नायर, फलीस्वरनाथ रेणु ऐम सखकों के उपन्यास प्रस्तुत बिने का सचत है । इनम बहुत से ऐसे उपन्यास भी होते हैं जो उच्छकोटि के होते हुए भी प्रकाशम के समय अनप्रिय न होने के कारण सिटी के मोस बिकते हैं । कुछ उपन्यासकार ऐसे भी होते हैं जिनका प्रत्येक उपन्यास एक नई धीपध्याधिक समस्या लेकर आता है धोर उध उपन्यास कार का मुस्बाकन नए सिरे से करना पड़ता है । हेनरी व्रीन बरबीनिया कुम्फ धोर मिब क्लाम्प्टन-बर्नेट तथा फलीस्वरनाथ रेणु इसी प्रकार के प्रत्येक बार नई समस्या के उपस्थित करने वाले उपन्यासकार हैं ।

इस प्रकरण के प्रवेग में किसी प्रकार का 'धतबा' अथवा व्यवस्था केन का प्रयत्न नहीं किया गया है यह तो एक ईमानदार परीची करने बाम का ठक है जो अपनी बात में रचय विरवास रखते हुए दूसरों को भी उध सम्बन्ध में बीमा ही विरवास दिमागा चाहता है । इन सिबन्ध का निर्णय उपसंहासत्मक ही है । साहित्य तो सच ही जीव की कसौटी पर रहता है धोर कभी कभी उधे इन जीव के विवाक विस्तुधों के द्वारा बिनेध हानि भी पहुँचाई जाती है । उनके मिम-मिध नाम धोर प्रकार होते हैं—साधारण सूचना देने बामे (हि कामन इन्फार्मर)

बैबल घटकर मगाने वाले (दि स्मिथर) विषय का ज्ञान रखने वाले (दि तोरिंग वन) खुस्ती के निर्णय देने वाले (दि स्मार्ट एमक) घबरा केबल मनोरंजन कराने वाले (दि इन्टरनेशन) ; कलाकार को गेव ने विभिन्न प्राप्त कर रहे बाला-बाली 'बक का निर्णय तो यह होता है— दोषी तो नहीं हो पर सब घाव में फिर कभी ऐसा न करना ।

यह बड़े लेख की बात है कि साहित्य के शत्रुओं के बीच में बहुत से ऐसे भी लोग हैं जो अपने का साहित्य का प्रती हो मानने हैं और वे साहित्य-सेवी होते भी हैं पर वे साहित्य को उम-उमति के क्रम के पार नहीं करके देना चाहते हैं जहाँ तक उसे वे स्वयं ले जा सकें हैं । उनकी प्रायुक्तिका ही साहित्य की हीमान्तरेखा बन जाती है ।

यदि विनाश होना है तो स्थापुर्वा की कड़ाई अपेक्षित नहीं हटती विनाश के लिए किसी सुरक्षा रीति की भी आवश्यकता नहीं होती और उसके लिए हम सर्वत्र साम्य होना की दुहाई भी नहीं देते । यदि बाबरल कात माना है तो प्रयोग हाने ही । बिना प्रयोग के साहित्य की गति की इति हो जाती है, बिना प्रयोग के युग की समाप्ति हो जाती है । लेकिन इन प्रयोग की प्रक्रिया का ईमानदारी से होना है । भागे की प्रगति के लिये यह जानना बहुत आवश्यक है कि वर्तमान समय में क्या हो रहा है और प्रतीत में क्या हो चुका है । यह विज्ञान बोलो धोर में काम करता है । इस सम्बन्ध में एजेंट रिक्वर्ड ने बड़ा प्रकाश कहा है कि यदि प्राचीनक वर्तमान साहित्य के प्रति उठी उदात्ता में काम लेने जिसका प्रयोग के प्राचीन साहित्य की प्राचीनता करते समय करते हैं तो साहित्यिक इतिहास रही की टोकरों ( जैना कि यह इस समय बना हुआ है ) न बनना ।<sup>१</sup>

साहित्य की प्रगति के लिए परम्परा एवं प्रयोग दोनों का समान महत्त्व होता है । परम्परा तथा प्रयोग साहित्य की अग्र्य धारा की प्रवृत्तमान बनाने हैं । परम्परा की दृष्टि धनीत की धोर हाजी है और प्रयोग की धारें अविष्य की धोर नवी रहती हैं । परम्परा अनुकूलण तथा अनुधीनता की प्रवृत्ति का आशय लेकर रचनात्मक विप्लवता को निरूपण करता है, जब कि प्रयोग केतना प्रवाह की नवीनतम अभिधों का अनुसंधान करके अभिव्यक्ति के लक्षण एवं नव मार्गों का उत्पादन करता है— प्रयोग का परम्परा के साथ निरन्तर का

तार्मजस्य है। प्रयोग पूर्व परम्परा से घटीत के अनुभवों का संकलन लेकर सतत रूप से प्रगति-पत्र पर प्रकाश होने की प्रेरणा प्राप्त करता जाता है क्योंकि घटीत का अनुभव भविष्य के सिधे दृष्टि का द्वार खोलता है। परम्परानुसृत सत्य की सक्ति से अनुप्राणित होकर नए-नए प्रत्येक करने में ही प्रयोग की सार्थकता है। स्वस्थ परम्पराएँ नवीन प्रयोगों को जन्म देती हैं। प्रयोग का मध्य भी भविष्य की परम्परा बनने का ही रहता है। इस प्रकार परम्परा तथा प्रयोग क्रिया तथा प्रतिक्रिया के रूप में चलते-चलते हैं तथा साहित्य की बात को निरन्तर बलिधीन एवं प्रबलमान रखते हैं।

साहित्य की प्रगति के लिए अन्तरी सम्मति का द्वार उत्पन्न किन्हे हुए जाता बरण की भी अपेक्षा रहती है। इस प्रकार के साहित्यिक प्रोत्साहन का कार्य प्रासंगिकतात्मक पत्र द्वारा हो जा सकता है। 'दि क्वार्टरलिन्' और 'हीरोइजन' ऐसे टकसाली सम्मति प्रकाशित करने वाले पत्रों का प्रकाशन तो कम का समाप्त हो चुका। अमेरिका में इस प्रकार के चार पत्र हैं— 'दि केम्पो रिब्यू' 'दि मेन्सो रिब्यू' 'पाटिजन रिब्यू' और 'दि इन्डियन रिब्यू' इन्ग्लैण्ड में तो 'द क्वार्टली स्क्रिप्टो' है। समस्या निदान साधारण है। इन्ग्लैण्ड में 'एडिजलर रिब्यू' की स्थापना मात्र स लमभग १८ वर्ष पहले इसलिये हुई थी जिससे सम्पन्न प्राप्त वाली प्रेरण मज-युस्या को मुक्ति प्रदान के पठन के कार्य में सम्मिलित कर सकें। इन्ग्लैण्ड और अमेरिका में 'दि न्यू क्रिटिसिज्म की स्थापना' पत्र की साहित्य के प्राध्यापकों का अपने सीमित रूप में कविता के पढ़ाने की शोर हुई। इन समय तो एक एक सामयिक-पत्र की आवश्यकता है जो अन्तर्देशीय साहित्य को प्रकाश हटा कर इन्ग्लैण्ड उत्तर-दक्षिणी अमेरिका फ्रान्स जर्मनी इटली स्पेन स्कन्दनेविया सह और पूर में जहाँ को कुछ साहित्य में प्रकाश हो रहा है उससे लेखक तथा पाठक दोनों को ही परिचित कराव। मात्र के सामयिक पत्र का न तो विविष्ट संसृष्ट शक्ति वालों का पत्र बन कर रह जाना है और न किसी बन्धनमूर्ती और संविक्षेप का पत्र बनना है।

कारिणी प्रतिभा के रूप में की जाती उपन्यास के लिए एसी शोषण एक सामर्थ्य वाली प्रतिभा की अपेक्षा है या अनप्रीय उपन्यास और अन्तरे टकसाली उपन्यास के साथ की शक्ति को भी पाठ मके। इस विचार से मात्र के उपन्यास की बड़ी समस्या है जो मात्र के विज्ञ-अज्ञ को समस्या है। भविष्य के उपन्यास कार को अपने अन्तर एक सामाजिक उत्तरदायित्व को धारण ही है। उपन्यास लेखक को सामाजिक मध्यम का कार्य संपादन करना है। वेस्त में अपने निबन्ध



भावार्थों के साथ प्रतिष्ठित करना है। उसके आत्मान्धेपल की पूर्ण प्रसार प्रदान करना और उसकी आत्मोपसमिधि को पूरी महारथ तक उठा कर चिचित करना है।

पाश्चात्य उपन्यासकारों की तुलना में हिन्दी के उपन्यासकारों का कुछ भुविभार भी है, कुछ समुच्चिभार भी। हिन्दी उपन्यास को धनी धरणा समझार पाठकवर्ग बनाया है। हिन्दी उपन्यास का चित्त को प्रीति करना है। उसकी भाषा को देश-काल एक पात्रानुसार गइया है। 'पोरान' 'मुयनयनी' बाणमठ की आत्मकथा' और परती परिकथा' में हिन्दी उपन्यास की भाषा को एक उदात्त लय और आभिजात्य संस्कार मिला है। इसके माध्यम में आत्मान्धेपल की सूक्ष्मतम वृत्तियों को आभिभक्ति मिलने की सम्भावना है। 'नदी के द्वीप' 'बया का बोंसला' और साप' नयी पीठ 'बहुती मया' और 'मैला आँसु' में उपन्यास की भाषा को नय लोका-संसार मिला है। प्रमथनर जी के द्वारा जिन उपन्यास के स्वल्प की प्रतिष्ठा हुई थी उसमें धरीत की धीप आधिक उपसमिधि को समग्रता अपने पूर्णरूप में विद्यमान है। अब हिन्दी का भाषी उपन्यास को मानव-सत्य को उसके समग्र परिवेश और बहु-विधि भाषानो में अभिव्यक्त कर पान की विद्या में अग्रसर होना है। हिन्दी के भाषी उपन्यास के मार्ग में कुराणपूर्व प्रतिष्ठियात्मक दृष्टिकोण की कोई विद्या भाषा नहीं होनी ऐसा विश्वास किया जा सकता है।

वास्तव में देखा जाय तो किसी साहित्यिक विद्या के विकास के मूल में किसी चिर-प्रतिष्ठित पर नूतन दृष्टिकोण का समावेश ही होता है। किसी विचारक ने कहा भी है कि तत्कालीन आध्यात्मिकता के अतिरिक्त नये नये विचारों की महामता से कोई बहुत ही आश्चर्यकर्म कार्य संपादन किया जाने लगता है, या होता तो बहुत महत्त्वपूर्ण है, पर उस समय तक उसकी धार ध्यान नहीं किया जाता तब साहित्य में एक नूतन आविष्कार होता है। हिन्दी उपन्यास के प्राथमिक रूप के विषय में यह उक्ति पूर्णतया अतिरिक्त है। रोमांस(बटनापूर्व कथाओं) में लंकर मात्र तक के उपन्यास को विनासभाषा इस उक्ति के सत्य को प्रमाणित करती है। अविद्य में उपन्यास मानव-जीवन के धीर निरुद्ध या आध्यात्मिक उपन्यासों के उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात् करता हुआ हिन्दी का भाषी उपन्यासकार बाह्य संसार में जितना एक आचार को न गकर अपने में आत्मनिरोक्षणार्थक पद्धति में लोन होकर अपने अन्दर ही (तत्त्वज्ञान की मोठि) आचार्यता प्राप्त करेगा।

हिन्दी के भाषी उपन्यास में चित्त का एक धार्मिक अग्रसर हुआ होगा।



सबमें प्रयोगों की सुव्यवस्था आवश्यकमाना ही होगी। भाषी हिन्दी उपन्यास में विधि का भाषा का संस्कारित भाव चाहिए भाषा का विद्यास्त नहीं साधू होना। हिन्दी भाषी-उपन्यास में भाषा और चित्रण का महत्व बढ़ जायगा। यदि चित्रण कालिका के अर्थ प्रीति है तो रचना स्वीकृत हो जायगी प्रावरणीय होगी। अतः भविष्य का औपन्यासिक कलाकार अपनी रचना को 'टेक्निक' को उत्तमता प्रदर्शय प्रकाश करेगा।

कथा साहित्य में आत्म निरीक्षणता का प्राबल्य इन युक्त युग की अत्यन्तता की अंत है। हिन्दी प्रेमचन्दोत्तर-युग के कथा-साहित्य का बृहत् अर्थ आत्म निरीक्षणतात्मक हो गया है। प्रेमचन्द स्वयं अपनी अंतिम कृति 'मंगलसूत्र' में आत्म निरीक्षण हो बने थे। अन्त में का त्यागपत्र 'कल्याणी' 'सुलभा' विवरण और अतीत 'इलायत' की 'पर्व की राती' उपसंस्कार अन्त का वह जो मैंने देना अन्त का 'मर प्रदीप' सब इनी रीति में है। हिन्दी के भाषी उपन्यास में यही आत्म निरीक्षणतात्मक पद्धति प्रमान हा उठेगी। भविष्य में अत्यन्त संसार में किसी एक प्रकार का न पाकर उपन्यासकार अपने में भी अन्त वह हैकला बाह्या कि कही उनके अन्त ही शायद वह बाह्य विद्या प्राप्त हो जाय।

उपन्यास के जीवन में कुछ भी लकर यदि उसे बाध बढ़ाना है तो हम आत्मिक पात्रक-शक्ति पर आश्रित रहना होगा। हम जो कुछ भी अपने में पाया लेंगे वही पत्नी फल पुन बनकर उपन्यास के जीवन में एक नया संसार बना देगा जिसमें जो है उसी के माध्यम में इस परिस्थिति में जो अन्त में पश्ये हा लकटा है उसकी संभावना का सीधा परिचय मिलता है।

आत्म का उपन्यास आत्म के ज्ञान का पूर उपबल में लगे हुए बने। पर ध्यान रहे आत्म-बाह्य लक्ष्य या टट्टू या बीन बन जाय भविष्य के उपन्यास आधुनिकी आत्म के ज्ञान और आत्माही देनों के उपन्यास का अन्त खोली के हगे ही क्योंकि भाषी उपन्यास का विद्या भी विद्या भाग के प्रकार का अन्तकार्य बनाया जा लकटा है।

आधुनिक युग में प्रेम का जीवन बहुत अस्मि हा गया है। अन्त-अन्त और गीरी-अन्त सब ही पैदा हात है। यदि कुछ भी कह पर सब बात ना यह कि प्रत्येक आकर्षक के जीवन में दो-आत्म शक्ति और प्रत्येक बहुवच्य गुण के आत्म न नात है। आत्मा ही है। जीवन में कौन टट्टूटा है, कौन बना आता है यह परिस्थिति और आत्मिक का बहुवच्य पर निर्भर रहना

है। लोगों का कहना है कि पहले प्यार को कोई मुक्त नहीं पाता लेकिन इसके उपरान्त भी जीवन में एक ऐसा बड़ा प्यार या सक्ता है जो सब कुछ मुक्त करे। उदाहरण के लिए 'दिल्लर एक जीवनी' के प्रमुख पात्र तथा उनके बर्णित लक्ष्मियों के प्रेम-व्यंग्यार धरणा बनेन्द्र की 'बस्पाणी' बर्णित स्त्री बरिषों क उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकते हैं। प्रेम के क्षेत्र में कुम्भन न सार्विक होता है और न सग्यातिक वह केवल कुम्भन होता है। जहाँ प्रेम की पहली अनुभूति हो सकती है वहाँ की मानसिक स्थिति में सभी सामाजिक सम्बन्ध एक ही न हो पाते हैं। प्रेम के विविध सम्बन्ध एवं नारी जाति की समस्याएं भावी हिन्दी उपन्यास को मुख्य बर्ण्य विषय होये। परम्परागत प्रेम से परे भी प्रेम के विठने भी हो सकते हैं जब भावी उपन्यास में पाए पाएँगे। बस्पाक के उपन्यासों की प्रवृत्ति भी इस तथ्य के विरव-वर्गीन होने की जाती है।

प्रेमचन्द ने उपन्यास के सम्बन्ध में लिखते हुए एक स्थान पर लिखा है 'भावी उपन्यास जीवन-बर्णित होना और जब यह काम करने कठिन होता बितना धर है। 'बर्णम' जी ने 'रोमरः एक जीवनी' का प्ररापन करके कुम्भानन मान बर्ण ने 'स्योकी की रानी' लिख करके और भी हवारी प्रसार विवेदी ने बरुणधर की ध्यात बर्ण लिख करके उस नहान साहित्यकार की बारी की धत्य सिद्ध किया है। भावी धीपन्यासिक प्रतिभा के हाथ की नूती से धनेक बरिषों की धनेक बरिषों का बितर होना निरिचय-भा है। पारबान्य उपन्यासों के उदाहरणों (रोमा रोमा के धीन बिन्धीक वेम्स ज्वाएस के धीन उपन्यास) में भी इसकी संभावना पुनः होती है। बनेन्द्र जी की नवीन-धय उपन्यास 'जवबर्न' धरने धात्य एवं बिचार रोमों की संभावनाओं की हिन्दी के धावी उपन्यास के धरुत के रूप में प्रस्तुत करता है।

धनीना-धारन के बिज्ञान लेखक उदारान बनुबेरी के धनानुधार— 'धधधर्णीय धनान न धधधधारी उपन्यास में जो धानोधनात्मक धरुण धाना का नह धर धीधन से धरन रखा है। धरनुधार ने उपन्यास के धरुणों में धी धरिधरन होना धाधधध समझते हैं। वे हिन्दी उपन्यास के धावी रूप को निधिय रूप में तो नही बजाते पर धमय धान के धरुणों में उसकी धति का धिन्ध धरुण का होना बजाते हैं, 'धधधधध धीर धधधधध से वे धिधध धानध धेरी (धधध) के धिधध धीर धीधधध हो धाधध। ध धह भी धाना करते हैं कि धरीधधध धीधध धीर धाधधधध धधधध धधधध धी धर धरने धधधध

उसमें प्रयोगों की श्रुतता प्रकल्पनाधी होगी। भावी हिन्दी उपन्यास के लिये का भाषा का संस्कारण आवश्यक मान्य का सिद्धांत नहीं लागू होगा। हिन्दी भाषा-उपन्यास में भाषा और चिन्तन का महत्व बड़ा बढेगा। यदि चिन्तन कठिनाई के घंटा प्रौढ़ है तो रचना स्वीकृत हो जायगी। आधुनिक होगी। अतः भविष्य का उपन्यासिक कलाकार अपनी रचना को 'टेक्नीक' की उच्चतमता प्रकल्पन करेगा।

कथा साहित्य में आत्म निरीक्षणता का प्रारम्भ इस श्रुतन युग की प्रारम्भता की लक्ष्य है। हिन्दी प्रकल्पनोत्तर-युग के कथा-साहित्य का गूढ़ अर्थ आत्म निरीक्षणतात्मक हो गया है। प्रकल्पन स्वयं अपनी अन्तिम कृति नगसन्तुष्ट में आत्म निरीक्षण हो मने के। 'अन्तः का त्यागपत्र' 'कल्याणी' 'सुखदा' 'विजय' और 'स्वर्गीय' इत्यादि को 'पर्व की रातों' उदयपर्यन्त मनु का वह जो मैंने देखा अन्त का 'नव प्रदीप' मनु इसी सीमा में है। हिन्दी के भाषी उपन्यास में यही आत्म निरीक्षणतात्मक पद्धति प्रचलन हो चलेगी। भविष्य में बाह्य संसार में किसी एक आकार को न पाकर उपन्यासकार अपने में लीन होकर यह देखना चाहेगा कि कहीं उसके अन्दर ही सत्य यह आकार धिमा प्राप्त हो जाय।

उपन्यास के जीवन में कुछ भी लेकर यदि उसे घान बढ़ाना है तो हम मानसिक पाठक-शक्ति पर ध्यान देना होगा। हम जो कुछ भी अपने में पाया लेंगे वही पत्नी अन्त कुल बनकर उपन्यास के जीवन में एक नया संसार बना देगा जिसमें जो है उसी के माध्यम में उस परिस्थिति में जो अन्त में प्रकल्पना हो सकती है उसकी संभावना का सीधा परिणाम मिलता है।

आज का उपन्यास आज के आत्म का पुर उपन्यास में लाते हुए अन्त में पर ध्यान रहे आत्म-बाह्य मनु कथा या टट्टु या बीस बन जाय भविष्य के उपन्यास शत्रुमन्त्री टट्टु के लिये और सामान्यही अन्त के उपन्यास का लक्ष्य येली के लिये ही कथात्मक भाषी उपन्यास का लक्ष्य भी विचार आत्म के प्रचार का अन्तर्भाव बनाया जा सकता है।

आधुनिक युग में आत्म का जीवन अन्त अन्तिय हो गया है। 'सीमा-अन्त' और 'सीमा-अन्त' कम ही लक्ष्य है। कई कुछ भी कर पर सब बात का यह कि प्रत्येक आधुनिक के जीवन में हो-आत्म अन्त और प्रत्येक अन्तिय युग के जीवन में आत्म अन्त अन्तिय है। जीवन में अन्त अन्तिय है, अन्त बनना जाना है यह परिणामिता और आधुनिक का बहुगर्ह पर निर्भर रहना

है। लोगों का कहना है कि पहले प्यार को कोई मुना नहीं पाता लेकिन इसके उपरान्त भी जीवन में एक ऐसा बड़ा प्यार था सकता है जो सब-कुछ मुना दे। उदाहरण के लिए चिन्मयः एक जीवनी के प्रमुख पात्र तथा उसमें बलिष्ठ लक्ष्मियों के प्रेम-व्यापार यमबा जैनेन्द्र की 'कल्याणी' 'व्यतीत' स्त्री चरित्रों के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। प्रेम के क्षेत्र में कुम्भन न सात्विक होता है और न समात्मिक वह केवल कुम्भन होता है। यहाँ प्रेम की नहीं अनुभूति हो सकती है वहाँ की मानसिक स्थिति में सभी सांसारिक सम्बन्ध एक ही से ही भाँटे हैं। प्रेम के विविध सम्बन्ध एवं भारी भाँति की समस्याएँ भारी हिन्दी उपन्यास की मुख्य वर्ण विषय होये। परम्परागत प्रेम से परे भी प्रेम के विभिन्न भी हो सकते हैं सब भारी उपन्यास में पाए जायेंगे। बन्धक के उपन्यासों की प्रवृत्ति भी इस तथ्य के विरुद्ध प्रतीत होने की जाती है।

प्रेमबन्ध ने उपन्यास के सम्बन्ध में लिखने हुए एक स्थान पर लिखा है 'भारी उपन्यास जीवन-चरित्र होगा और तब यह काम उसके कठिन हाथों वितना धर है। 'धरा' की ने चिन्मय एक जीवनी का प्रत्यक्ष करके कृपावत आन वर्मा ने 'भाँटी की राती' लिख करके और भी हज़ारी प्रसार प्रियेरी के बाणभट्ट की धार्य कथा' लिख करके उस महान साहित्यकार की भाँसी को सत्य सिद्ध किया है। भारी धीपन्थायिक प्रतिभा के हाथ की मूनी से धनेक चरित्रों का धनेक चरित्रों का विषय होना निश्चित-सा है। पारंपार्य उपन्यासों के उदाहरणों (रोमाँ रोमाँ के बीच विन्मैक वेम्प ज्वाएस के पश्चिम उपन्यास) से भी इनकी समाधान सुट होती है। जैनेन्द्र की की लकीन-रुम उपन्यास 'अमर्षन' अपने धिस्य एवं विचार दोनों की समाधानों को हिन्दी के भारी उपन्यास के समूह के रूप में प्रस्तुत करता है।

समीक्षा-शास्त्र के विद्वान लेखक सताराम अनुबेदी के मतानुसार— 'मध्यवर्गीय समाज ने यवार्थवारी उपन्यास में जो धाराधनान्तरक दर्शण पाया था वह धर लौहवा से बरत रहा है। तदनुसार ने उपन्यास के रूपों में भी परिवर्तन होना धारणक समझी है। ने हिन्दी उपन्यास के भारी रूप की निश्चिन्त रूप में तो नहीं बजाते पर 'गमस मल के शब्दों से उसकी यति का निम्न प्रकार का होना बताते हैं, 'मध्यवर्गीय और व्यक्तियुत से के विरुद्ध मानव बेरी (दास्य) के विरुद्ध धीर वीर्यविक्र हो जायेंगे। ने यह भी धारा करते हैं कि प्रतीनाम्क कौशल और धारणात्मक प्रवृत्ति लेखक की धर धने उपन्यास

सामने सामने ।<sup>१</sup>

हिन्दी उपन्यास अपने जीवन का एक सुदीर्घ काल पार कर इतिहास की सामग्री बन चुका है। प्रायेण बल कर उसकी क्या रूपरेखा होगी इस विषय का—उपन्यास के भविष्य का चिन्तन हज़ बर्तमान के बल पर कर सकते हैं। प्रकाशचन्द्र मुन्ने ने इस विषय में मात्र से १८ साम पहले अपनी स्थापना की थी। उनकी बहुत-सी बातें नयनमय हो बरक के घण्टर पर खड़ी उठती हैं। उनकी और भी स्थापनाएँ मज़ीर सम्भवत एवं सखम धातोबक की दृष्टि की सुझ पर प्रापारित हैं। उन्होंने लिखा था—'कला के विकास में व्यक्ति-विरोध सहायक हो सकते हैं किन्तु उनसे बढ़कर कला का जीवन अपनी गति पर मात्र बलता ही जाता है। हम देखते हैं कि कुछ कलाकारों ने हिन्दी उपन्यास को रूप दिया है किन्तु उपन्यास की सजीवता ने भी उन्हें बनाया है। हम कह सकते हैं कि निरुक्त भविष्य में भी हिन्दी में कुछ उपन्यास लिखे जायेंगे, उनकी रूपरेखा जो कुछ भी हो ।'<sup>२</sup>

प्रेमचन्द के स्वयंरोहण के पश्चात् कतिपय विद्वानों एवं धातोबकों ने ऐसी धारणा प्रकट की थी कि कदाचित् उपन्यास का भविष्य सब पुरातः संस्कार में विधीन हो गया। सत्य तो यह है कि प्रेमचन्द के बाद कुछ समय तक तो यद्यपि उपन्यास संख्या में वृद्धि करने वाले तो हुए हैं पर उपन्यास कला की वृद्धि नहीं हुई। पर हज़र के हज़र में कतिपय धीपन्यासिक कृतियाँ कला की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण स्वीकार की गई हैं, और जिनका सन्देश हम यथास्थान पहल कर भी पाते हैं। विषय को बखर भारतीय इतिहास में बड़े महत्वपूर्ण रहे हैं। राजनीतिक दृष्टि ने जन-जीवन को जिस प्रकार म्कम्मेय तथा बाणुति के जिस स्वरूप को उपस्थित किया उसने समस्त सामाजिक बातावरण को प्रभावित किया। इस काल में सब से अधिक महत्वपूर्ण बात जो हुई है वह है विचार-स्वार्थम्य की क्षमता। मात्र का लयक सब कृषियों का दास नहीं है। उसका अपना दर्शन है उसकी समस्वार्थ है और उन समस्वार्थों के अपने ढंग के समाधान हैं।

स्वार्थम्य-संशाम की लक्ष्यता के पश्चात् जीवन के धूर्तों में परिवर्तन होना स्वाभाविक ही है। यस्तु उसी के अनुबन्ध साहित्य में भी नवीन धूर्तों की उद्भासना हुई। मात्र का उपन्यास साहित्य-जीवन के इन्हीं काला नवीन

१—सीताराम चतुर्वेदी—'समीक्षा'—पृ० ११५

२—प्रकाशचन्द्र मुन्ने—'हिन्दी उपन्यास का भविष्य'—साहित्य सङ्घ  
—उपन्यास संक-पृ० ७५

उन्मुखों से भूल है ।

### उपन्यास एक नवीन दृष्टि

प्रकृति और जीवन के नए-नए पहलुओं के सम्यक् के साथ ही साथ नवीन परिस्थितियों का जन्म होता है जो अपनी सामर्थ्य के अनुक्रम ही जीवन को परिवर्तित करती है । इस परिवर्तन को जीवन का विकास कह सकते हैं । जीवन के विकास में उदयन और पतन दोनों का धर्म था जाता है । जीवन के विकास के साथ ही साथ साहित्य का विकास होना भी बाध्यता है । कमी-कमी तो जीवन तो विकसित होकर घाबे बढ़ जाता है और साहित्य का प्रगति कार्य पिछड़ जाता है जैसा कि आधुनिक युव के आरंभ में हुआ । इससे जहाँ यह निश्चय होता है कि जीवन के विकास के साथ-साथ साहित्य का विकास स्वयमेव नहीं हो जाता वहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इस संबंध में जीवन और साहित्य के सान्द्रस्य के संबंध में साहित्य-स्रष्टा और प्रायोचक को अधिक जागरूक रहने की आवश्यकता है ।

जब सामाजिक जीवन प्रगति को एक नई मंजिल की ओर बढ़ने को उन्मुखित होता है, तब उप-साहित्य स्रष्टा और प्रायोचक ने एक नवीन दृष्टि की धारणा करनी है जो उसकी नवीन समस्याओं को समझ-समझ सके । और उनके लक्ष को निश्चित तथा पक्के प्रयत्न बना सके । धार का भाव साहित्य स्रष्टा और प्रायोचक से ऐसी ही नई दृष्टि की मांग करता है । इसका कारण है भारतीय जनता का महान् उद्देश्य और उसकी प्राप्ति के लिए उसका व्यापक धीर प्रयास ।

जैसा हम पहले कह चुके हैं—धीरे स्वातंत्र्य सपना के परचात् भारत ने मुक्ति प्राप्त की । मुक्ति प्राप्ति के साथ ही साथ भारतीय जनता और सरकार के समझ नवीन नियम समस्याओं ने जन्म लिया । जनता और सरकार ने इन समस्याओं का डट कर मुकाबला किया और धार भी यह मुकाबला चल रहा है । देश का सामूहिक विकास के लिए उसे सम्पन्न बनाने के लिये दो बार पंच-वर्षीय योजनाओं की शिपाने की गई और उनमें से प्रथम को पूरा करने के बाद द्वितीय योजना को पूरा करने का प्रयास किया जा रहा है । धार द्वितीय पंचवर्षीय योजना की शिपाने हो रही है । इसमें निम्नलिखित दो योजनाओं की मौलिक रूपों को सुधार जा रहा है । देश की आवश्यकतानुसार इसे बचन धौद्योगिक रूप न देकर दृष्टि एवं उद्योग दोनों से संबंधित करके बनाये जाने की शिपाने जा रही है । इसमें दृष्टि के लिये बड़े-बड़े ट्वंटर तथा बीबी की योजना

न सम्मिश्रित करके—देवी हस्तों को गुबारने धीरे पुराने तासकों की मरम्मत तथा नये तासकों का निर्माण करने की सोची जा रही है। 'ट्यूबवैस' के स्थान पर देवी कुर्शों की संख्या बढ़ाया सोचा गया है। बड़े-बड़े उद्योगों के स्थान पर गाँव-गाँव में छोटे कुटीर उद्योगों का बाल विद्युत देने की भी सोची जा रही है। इस प्रकार इस योजना का प्रौद्योगिक रूप न हो कर कुर्वी-द्योगिक (एप्रोप्रियेटिव) रूप होगा। इसके अतिरिक्त तटस्थ निष्पक्षता की नीति तथा 'पंचशील' के सिद्धान्त का पोषक होकर भारत ने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी विख्याति के लिए महान् प्रयास किये हैं। इस समय यह कि संसार में चारों ओर एक एक कर के देशों की प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था टूट कर फौजी शासन के अन्तर्गत जा रही है उस समय भारत द्वारा समाजवादी व्यवस्था की घोषणा करना विश्व की एक महान् घटना है।

भाष्यीय समाज की नवीन परिस्थितियाँ भावी कसाकार से नवीन दृष्टि की कामना करेंगे। हिन्दी का भावी उपन्यास इस परिस्थिति को पूर्णतया लेंगायेगा यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है। अतीत में देश की परिस्थिति का बुरा नाबू देने वाले प्रेमचन्द जैनेन्द्र और किसी र्घ्य तक 'मनीष' भी रहे। वर्तमान समय में प्रतापनारायण भीवास्तव जैनेन्द्र पद्यपाठ प्रसन्न नाबाहुँन फणीश्वरदास रैणु ने वर्तमान समाज की धारमस्यता के अनुस्प ही उपन्यास को पढ़ा और सभाय। जैनेन्द्र का 'जयबर्मन', फणी-श्वरदास रैणु की 'पत्नी', 'परिक्रमा' तथा अमृतसाध नागर का 'बूँद और समुद्र' में हिन्दी के भावी उपन्यास की पृष्ठभूमि एवं नूमिका प्रस्तुत की गई है। जैनेन्द्र नाम अरु की 'मिर्छो बीमारों' में अभिप्य से उलने नाम उपन्यास के प्राचार का चिन्तापाठ किया गया है।

उपन्यास एक और कारण से अभिप्य में प्राय के महत्त्व से कहीं अधिक महत्त्व प्राप्त करेगा। वर्तमान काल में पाकर उपन्यास में अपनी महत्ता के बल पर साहित्य के आलोचकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। अभिप्य का आलोचक यह जान कर चिन्ता कि उपन्यास में केवल व्यक्ति का ही नहीं समाज और जीवन का व्यापक और महत्ता विषय भी संभव होता है। भारतीय समाज में जो विकास के नवीन मध्य निरिचत किए गए हैं उन्हें अपनी नहीं अभिप्यति के लिए और उनके विषय नुस्साकन के लिए उपन्यास से बढ़ कर कोई दूसरा माध्यम नहीं है। नाटकों के माध्यम में उपन्यास के माध्यम की घोषा प्रयाचारवर्जा अभिप्य है किन्तु हिन्दी के रचयक के विकास के पूर्ण न होने से हिन्दी के भावी उपन्यासों पर उनका पुन विविष्ट अंतरदायित्व मानेगा।

हिन्दी के छापी जनस्यम के समुद्रसामी होन का एक निरिच्छत कारण है। श्री के राष्ट्रमाया स्वीकृत कर निये बाज के कारसु प्रब हिन्दी मे प्रांतीय भाषों के प्रच्छे-प्रच्छे जनस्यमों से अनुभाषा के बड़ी संख्या में प्रकाशित होने कारण हिन्दी उपस्यम सेबक तथा हिन्दी उपस्यम के पाठक दोनों की ही ट में ध्यानकता और उधारता का धाना अनिबार्न है। अंग्रेजी के उपर्य से ही के उपस्यम तथा अंग्रेजी माध्यम से युरोपीन उपस्यमों से सीधा परि र पहले ही से मन्व था। प्रब तो अनक क्ती और अन्य युरोपीय भाषायो के स्यमों क अनुभाषा भङ्गापड निकपने से बिद्व-जीवन का सीधा परिचय लन की संभावना बड मर है। एगिदन राइटर्स कांश्वन्म अथवा' बाई राइ ड कांश्वन्म' आदि भाषाजनों क द्वारा हिन्दी के उपस्यम ससक का संसार के स्य ललकों क साम सीधा उपर्य भी स्थापित हो गया है। हिन्दी उपस्यम बकों की संसार के भरतु का भा सीमाय्य प्राठ हान तथा है। इन सभी जनों के प्रभाव के परिणाम स्वरूप हिन्दी के भाषी उपस्यम में बिद्व-अनुस्य माय तथा अरिथ-बिभर्य एर्न बाठाबरतु अस्तुन करन में ध्यानकता एर्न उरा य का भाव अथस्य ऐया। बिभिन्न देया क उन्स्यमा के परिचय से रचना स्य पर प्रभाव पड़ना उसी प्रकार भावस्यक है तिस प्रकार किसी भी भारतीय अनुभाषा के अन्तर ईदलैन्ड निवास अथवा बिद्व भरतु का प्रभाव गहराई पड़ता है। ह्ये ईंग के भाषी हिन्दी उपस्यम युरोपीय यितर' और क्राइम ट्रेडिड क अरणीय संस्करतु होये पर साप ही साप बोटी के बिद्वान् बिस्व के आर्यौ धीनस्यमिक रचनाओं क स्तर तक पहुँचन का माधु प्रभाव करेये।

केन्द्रीय प्रकाशन के साथ ही साय सरकार के प्रचार कार्य की योजना भी जुड़ी ई है। जब तक जनता सरकार के साथ सहयोग नहीं करती तब तक सरकार किसी भी कार्य-क्रम सफल नहीं हो सकती। सरकार योजनाएँ बना सकती है, बोली नहानता से कारकाने खान सकती है, घरबों रचना बर्न कर सकती है अनु जनता में जाइति का संचार नहीं कर सकती अन्नी योजना के भाषी अर्न-अम को जन-जीवन के साथ संबद्ध करके नहीं दिखा सकती। यह कार्य आहिन्सकार का है। हिन्दी में यह कार्य भाषी उन्स्यमकार का होया। जनस्यमकार जीवन के समय अथ की प्रदर्शित कर भविष्य के पुर्न होने बाभो लेबनाओं की जनता पर पड़ने बाज अन्के प्रभावों, उपस्यम के संसार में अन्ने ही समय में प्रदर्शित कर सकता है। हिन्दी के भाषी उन्स्यमकार की लखनी सरणीय जनता के भविष्य की उन्स्यम के समय क ऐतौबिजन ईग पर पुर्न अर उन्में शक्ति और उन्साह का वृदान पैदा कर सकेयो। यह सामान्य शक्ति



की उत्सृष्टियों को व्यक्त कर उनका समाधान प्रस्तुत कर सकेगा।

इसके साथ एक बुराया प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। क्या हिन्दी का भाषी उपन्यास सरकार के प्रचार कार्य का साधन मान हीकर रह जायगा? तानाशाही के देश में अक्षय ही यह भय रहता है। उन देशों में जहाँ एक घोर तसवार के घनी नाइट्स घाब बि स्पोर्ट) एक घोर रहते हैं वहाँ बुराया घोर कलम के घनी नाइट्स घाब पेन भी होते हैं। भारत में लोकशाही के होने के कारण उपन्यासकारों को सबसे अधिक सेलन स्वातन्त्र्य रहेगा। प्रेमचन्द को हम पर उक्त भारत के मैजिम पीकी के रूप में देख सकते हैं। जिनकी कलम को ब्रिटिश रोज भी दान नहीं सका। भाषी उपन्यासकार भी सरकारी नीति का हिमायती घोर प्रचारकमान न होगा बल्कि वह जनकल्याण की योजनाओं से जन साधारण को अवगत करायेंगा तथा बुद्धिजीवी निम्न मध्यवर्ग के विचारकों के स्वप्नों को सजाकर जनशक्ति के प्रेरक रूप में अपने अपने उपन्यासों की स्वतन्त्र विचारबाज को प्रस्तुत करेगा।

जहाँ तक साहित्य में प्रचार का प्रश्न है इसका निर्णय विषय पर नहीं साहित्यकार घोर उसकी दृष्टि पर निर्भर होता है। एक ही समस्या पर दो उपन्यासकार उपन्यास लिखते हैं। एक में प्रतिभा होती है बुराये की दृष्टि बाधप्रत्य होती है। प्रचारवाद भी एक बाध ही है न फल यह होया—एक का उपन्यास उपन्यास होना घोर दूसरे का उपन्यास प्रचार। इस सम्बन्ध में प्रेमचन्द की कर्मभूमि का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। उसमें गान्धीवाद का रंज गहृय है। किन्तु क्या प्रेमचन्द गान्धीवाद का प्रचार करते दिखाई देते हैं? स्पष्टतः ऐसा नहीं है। विरह उपन्यास में मेरी स्तो का उपन्यास 'अच्छिठ टाम्स कीबिन' गुलामी प्रया का विरह विचल करते हुए भी किसी प्रकार भी गुलामी प्रया के विरोध में तिस्रो प्रचार की पुस्तक नहीं कहा जा सकता। यदि पीकी प्रेमचन्द घोर मेरी स्तो मजदूरों परधनीम जनता तथा गुलामी की दशा का विचल करते हुए भी प्रचारक से अंधे उठ कर उपन्यासकार रह सके तो हम विदवातपूर्वक कह सकते हैं कि हिन्दी का भाषी उपन्यासकार 'अयवर्धन के सेराक (वीनेत्र) की भांति योजनाओं घोर धादर्व अरिज का स्वजदृष्टा होकर भी उपन्यासकार रह सकेगा। वै विक्रम योजनाओं को जीवन से सम्बद्ध करके उपन्यास की रचना कर सके।

एक प्रश्न घोर भी उठता है। क्या प्रचारात्मक साहित्य का कोई महत्व नहीं है? प्राचीन भारतीय परम्परा में साहित्य की बहुत ऊँचा स्थान दिया

गया है। इसलिये जब हम साहित्य के समस्त प्रकार की बात कहते हैं तो बहुत उसे स्वीकार नहीं करता, किन्तु लक्ष्य होकर विचार करने पर प्रतीत होता कि प्रचारार्थक साहित्य का भी अर्थना महत्व होता है। महान् अर्थ भी लिखक ए० बी० वेल्स अपने साहित्य का 'प्रोपेगन्डा-साहित्य' कहने पर बड़ा रोष प्रकट करता था। उसका कहना था कि 'प्रोपेगन्डा का सम्बन्ध तो किसी संगठित शक्त अथवा धर्म-संस्थाओं और धर्मविद्यालय से होता है। पर धर्म तो प्रचार धर्म का प्रयोग बड़े हुए धर्म में होने लगा है। यह तो एक ऐसे अर्थ का संकेत करता है जिस की सहायता से मौलिक रूप से अथवा लिखित रूप से विज्ञापन के द्वारा अथवा बार-बार दुहरा कर दुहरा कर मनुष्यों को यह समझना है कि जैसे धीरे धीरे अचित्त और अनुचित ग्याम और धर्म्याय के सम्बन्ध में जो भी धर्म विचार हैं वही ठीक विचार हैं। सबको उन्हीं को स्वीकार करना चाहिये और उन्हीं के अनुसार आचरण भी करना चाहिये।' ए० बी० वेल्स के उपन्यास इस व्यापक अर्थ में प्रोपेगन्डा ही की मति है। पर समाज में कभी-कभी प्रचार की भी आवश्यकता होती है। वेदना यह होता है कि प्रचारार्थक साहित्य का उद्देश्य क्या है और उसमें कितना प्रचार है और कितना साहित्य। हिन्दो के मानी उपन्यास विकास-योगशास्त्रों के सम्बन्ध में प्रचारार्थक अर्थ से लिख अथवा आये। और वे विचारों की पति को दीक्षा करे।<sup>१</sup> हाँ यह सत्य है कि प्रचारार्थक उपन्यासों को प्रायः साहित्य नहीं कहा जायगा। धार्मी आचारण की स्थिति में यह स्पष्टरूप से समझ जानना कि आचारण साहित्य प्रचारार्थक ही नहीं होना चाहिये बल्कि परिस्थितियों के अनुसार यह प्रचारार्थक भी हो सकता है। यह बात दूसरी है कि उसे कुछ साहित्य में स्थान न देना जाय।

प्रचारार्थक उपन्यास साहित्यिक उपन्यासों की रचना में बाधक नहीं होना। कुछ उपन्यासकार साहित्यिक उपन्यास भी लिखेंगे। साहित्यिक उपन्यासों का अर्थना। साहित्यिक उपन्यास सर्वत्र भीषित रहे और प्रचारार्थक उपन्यास अधिक समय तक जीवित नही रह सकेंगे।

उपन्यास की बढ़ती हुई संख्या और प्रायः कुछ में प्रस्तुत किये गये नये प्रकार के उपन्यास साहित्य की सम्भावनाओं की वृद्धि के सूचक है। कविता और नाटक तथा अन्य प्राचीन साहित्यिक स्वरूप मानो अब परछाया को पहुँचे हुए रूपों तक भी नहीं पहुँच पाते पर उपन्यास में नये स्वरूप पुराने स्वरूपों से होकर तो जैसी ही अनेक आये भी जा सकते हैं। प्रोफेसर ए० सी

रेव के धर्मों में 'बी ह्व स्टिस ए लाजें टैक' याद बजिन स्वायत्त बिघोर घस' । इसलिये हिन्दी भाषी उपन्यास को घपने की ही दिशा देना है । कार्य भारम्भ होकर एक प्रकार से तो अपनी बरमावस्था में सामाजिकता की भूमि पर बढ़ा कर दिया गया है । हिन्दी उपन्यास की बहुत सी ( एक तक पत्रांत ) संभावनाएँ हैं । उनसे पूरा लाभ उठाना है ।

इस प्रसंग में यह स्मरणीय है कि वहीं एक घोर उपन्यास की पीप को उर्बर भूमि एवं अनुकूल बातावरण प्राप्त हो रहा है वहीं उससे विकास के कठिनपन घबरोपक तत्व भी दिखमान हैं । प्रायः यहू केला जाता है कि भाव-विधान में अब प्रतिघप्य करना का प्रयोग होने लगता है, यहाँ तक कि हमारी भावामक अनुभूति भी कल्पनाप्रयुत होने लगती है घोर कमाकार अपनी कृतित्व की सार्पकता बंधिभ्य-विधान में मान कर संतोप करने लगता है, तब कलाकृति हाउ हृदय के लिये पोषक सामग्री का प्राप्त होना प्राय बन्द सा ही जाता है । प्रकृतिधीमता के प्रतिघप्य उत्साह ने उपन्यास के साथ यही घपकार किया है । प्रतिरंजित कला-व्यापारों एवं भाव-व्यापारों के कारण बर्ष विदय पाठक के हृदय के साथ घेस नहीं जा पाता है । साथ ही समाज में सिनेमा रेडियो घाबि मनोरंजन के विभिन्न साधनों के उपस्थित हो जाने के कारण सामारण ब्यक्ति मनोरंजन के लिये उपन्यास का ही घामय नहीं प्रहस करता है । मन्तु यदि यत्किंचित घावधानी रखें तो उपन्यास के इन बाधक तत्वों पर भी विजय प्राप्त कर सकने हैं । मानव-हृदय की प्रकृति अनुभूतियों का उनके प्रहतिष्म में घमिर्बन्धन ही किसी भी कलाकृति की घमनियों में प्रकाहित होने बाभा बहु स्वल्प रख है जो पीटिकता घक्ति एवं घाकर्षण का हेतु बनता है । उपन्यास साहित्य हम सत्य का घपकार नहीं हो सकता है । उसके एक एक घबयष में विरत घाल-घालों का सन्धन संघित हा उठेगा—उनी घण बहु बिद्व-बिमोहक बन कर जन-जन के मानस में बिहार करने लगेगा । उपन्यासकार को इसी साधना में संलग्न होना है ।

कला कभी निरहंश्य नहीं होती है । वह जब घाकर्षण की परिधि से घोर घठ कर जन-जीवन के बोध घण करती हुई 'स्वार्-घोर तोय' के साथ ही साथ घमयन क कन की भी स्वीकार कर लेती है तब वह घल-घल स्वर्तों में घानी प्रघसित के मुनक की घविकारिणी बनती है । ऐनी कला निरघय ही  
 —————  
 माघी का घविकारण करके घपनी घस कीर्ति से जन-मानस को घा-व्यापित करती है । उपन्यास भी विरत घिन घपने हम महु उर ह्य की पुनि में लठन हाया । उनी घिन उन्घामकार की साबना सधन हीमी ।

